वैदिक नारी

लेखक की अन्य रचनाएँ

- वेदमञ्जरी [३६५ वेदमन्त्रों की भावभीनी व्याख्या]
  - समर्पण-शोध-संस्थान, नई दिल्ली
- वेदों की वर्णन-शैलियाँ
  - गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
- वेदभाष्यकारों की वेदार्थ-प्रक्रियाएँ
  - शोध-संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर
- महर्षि दयानन्द के शिक्षा, राजनीति और कलाकौशल-सम्बन्धी विचार
  - दयानन्द शोध-पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़,
- वैदिक शब्दार्थ-विचार
  - दयानन्द-शोध-पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
- यज्ञमीमांसा : अग्निहोत्रदर्पण
  - दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, नई दिल्ली
- प्रार्थना-पुष्पाञ्जलि [वैदिक निबन्ध]
  - दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, नई दिल्ली
- वैदिक सूक्तियाँ [अथर्ववेद की एक सहस्र सूक्तियाँ अर्थ सहित]
  - गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
- वैदिक वीर-गर्जना [वीररसपूर्ण १६० वेदमन्त्रों की तरंगें]
  - वेद-सदन, १/११६ फूलबाग, पंतनगर (नैनीताल)

वैदिक नारी

(वेद-वर्णित नारी का सर्वांगीण उज्ज्वल चित्र)
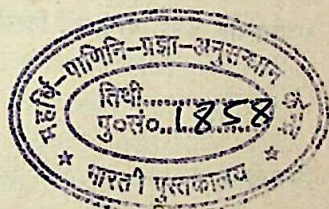
लेखक

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

एम० ए, पी-एच० डी०

पूर्व आचार्य, उपकुलपति एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसंधान-पीठ

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

समर्पण-शोध-संस्थान, नई दिल्ली

प्राक्कथन

जिन दिनों मेरा विवाह हुआ, उन दिनों मैं गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के तत्कालीन आचार्य श्री अभयदेवजी की प्रेरणा से योगी श्री अरविन्द की 'सीक्रेट ऑफ द वेद' नामक अंग्रेजी लेखमाला का 'वेद-रहस्य' नाम से हिन्दी भाषान्तर करने में संलग्न था और मेरे मानस-पटल पर वेद की 'गोमती उषा' छायी हुई थी, जिसकी श्री अरविन्द ने अपनी लेखमाला में बार-बार चर्चा की है और 'गोमती' का अर्थ 'प्रकाशवती' किया है। विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी प्रकाशवती को प्रथम पत्र में मैंने लिखा था कि "तुम्हारा नाम मुझे वेद की 'प्रकाशवती उषा' का स्मरण करा देता है और मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरे जीवन में उषा के समान ही प्रकाश बखेरोगी।" और ४३ वर्ष साथ रहने के पश्चात् जब वे महा-प्रयाण कर रही थीं तब मैंने उनसे कहा था कि मेरा विचार है तुम्हारी स्मृति में 'प्रकाशवती उषा' या किसी अन्य नाम से वैदिक नारी पर एक पुस्तक लिखूँ। यही प्रस्तुत पुस्तक के लेखन की पृष्ठभूमि है। संकल्प की पूर्ति में देर अवश्य हुई है।

हमारे देश में मध्यकाल में बहुत समय तक नारी उपेक्षित तथा अपमानित रही है। इस काल में जो साहित्य रचा गया उसमें भी नारी को निन्दनीय तथा नीचा दिखाने का प्रयत्न किया गया। उसे शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया, पति की मृत्यु पर उसके साथ सती हो जाना उसका धर्म माना जाने लगा, उस पर छल-प्रपंच, कुटिलता, क्रूरता, कामुकता, मूर्खता, पर-वंचकता आदि के दोषा-रोपण भी किये गये, उसे ताड़न का अधिकारी भी माना गया। न केवल हमारे देश का, बल्कि अन्य देशों का भी यही हाल है। वहाँ भी कोई समय था जब नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी देशों में भी स्त्रियाँ अध्ययन के अधिकार से वंचित थीं। सन् १९२० ई० तक ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में स्त्रियों को उपाधि नहीं दी जाती थी।

किन्तु आज युग बदल गया है। आज समानाधिकार का युग है। किसी को भी लिङ्ग, जाति या सम्प्रदायविशेष के आधार पर उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। तदनुसार सर्वत्र नारी-समाज में भी जागृति आयी है। महर्षि दयानन्द ने अन्य समाज-सुधारों के साथ नारी-जाति की दशा सुधारने में भी बड़ा योगदान किया था। स्त्री-सुधार के लिए उठी उनकी वाणी का अवलम्ब

पाकर अन्य सुधारकों का तथा सरकार का भी ध्यान इस ओर गया। दयानन्द के आर्यसमाज ने भी नारी को उसके अधिकार दिलाने का जी-तोड़ प्रयास किया। आज भारत की नारी प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कन्धा मिलाकर खड़ी है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि आज की नारी समस्याओं से मुक्त हो चुकी है, तो भी तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो हमारे देश की नारी ने बहुत प्रगति की है।

एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि परिस्थितियों ने नारी को कितना ही प्रताड़ित किया हो, पर नारी की स्थिति के विषय में हमारे धर्मशास्त्र क्या कहते हैं? जब हम धर्मशास्त्रों को लेते हैं तब सर्वप्रथम हमारी दृष्टि वेदों पर जाती है, क्योंकि संसार-भर के उपलब्ध साहित्य में वेद सर्वप्राचीन पुस्तक हैं, यह एक सर्व-सम्मत विचार है। फिर अधिकांश भारतीय आर्यजनों के विश्वास के अनुसार तो वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, जो अनादि-अनन्त हैं। प्रलय हो जाने पर जब सारा जगत् प्रकृति के गर्भ में समा जाता है, तब भी वेद ईश्वर के अन्दर ज्ञान-रूप में विद्यमान रहते हैं। 'क्या धर्म है' और 'क्या अधर्म है' इसके निर्णायक वेद और स्मृति माने जाते हैं; पर वेद और स्मृति में भी यदि कहीं पारस्परिक विरोध हो तब वेद का कथन ही प्रामाणिक माना जाता है, स्मृति का नहीं—**श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।** वेद स्वतःप्रमाण हैं, अन्य धर्मशास्त्रों की प्रामाणिकता वेदमूलक होने पर ही होती है। जब भारतीय धर्मशास्त्र में वेदों की इतनी अधिक महत्ता है, तब किसी भी विषय में यह देखना बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि वेद उस विषय में क्या कहते हैं। नारी के विषय में भी यही बात लागू होती है।

यह देखकर एक सुखद सन्तोष होता है कि वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त गौरवास्पद वर्णित हुई है। वेद की नारी देवी है, विदुषी है, प्रकाश से परिपूर्ण है, वीरांगना है, वीरों की जननी है, आदर्श माता है, कर्त्तव्यनिष्ठ धर्मपत्नी है, सद्-गृहिणी है, घर की सम्राज्ञी है, सन्तान की प्रथम शिक्षिका है, अध्यापिका बनकर कन्याओं को सदाचार और ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देनेवाली है, उपदेशिका बनकर सबको सन्मार्ग बतानेवाली है, मर्यादाओं का पालन करनेवाली है, जग में सत्य और प्रेम का प्रकाश फैलानेवाली है। यदि वह गुण-कर्मानुसार क्षत्रिया है तो धनुर्विद्या में निष्णात होकर राष्ट्र-रक्षा में भी हिस्सा बँटाती है। यदि उसमें वैश्य के गुण-कर्म हैं तो वह उच्चकोटि के कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि में भी योग-दान करती है और शिल्प-विद्या की भी उन्नति करती है। घर की सम्पूर्ण व्यवस्था का उत्तरदायित्व उसका है। वेदों की नारी पूज्य है, स्तुति-योग्य है, रमणीय है, आह्वान-योग्य है, सुशील है, बहुश्रुत है, यशोमयी है। वैदिक नारी के इस उज्ज्वल रूप को देखते हुए स्मृतियों तथा अन्य साहित्य में यदि कहीं नारी के विषय में हीन वचन भी मिलते हों तो वे या तो प्रक्षिप्त हैं या अपने समय की स्थिति के

सूचक हैं। वे प्रमाण-कोटि में नहीं आ सकते।

वेदों में नारी का जो स्वरूप प्रतिबिम्बित हुआ है उसी की झाँकी देने के लिए यह पुस्तक लिखी गयी है। यह तेरह परिच्छेदों में विभक्त है। प्रत्येक परिच्छेद का विषय, विषय-सूची में विस्तार से प्रदर्शित कर दिया गया है, अतः यहाँ पिष्टपेषण अनावश्यक है। प्रथम तीन परिच्छेद विचारात्मक शैली में और शेष परिच्छेद तरंगात्मक शैली में लिखे गये हैं। पहले यह विचार था कि प्रथम तीन परिच्छेदों का विषय भूमिका में दिया जाये, तथा सारी पुस्तक तरंगात्मक शैली में रहे; परन्तु बाद में उक्त विषय को पृथक् तीन परिच्छेदों में देना ही उचित प्रतीत हुआ। पुस्तक में लगभग सवा दो सौ पूरे मन्त्रों की तथा लगभग सवा सौ मन्त्रांशों की व्याख्या आ गयी है। मन्त्रों तथा मन्त्रांशों की अनुक्रमणिकाएँ पुस्तक के अन्त में दे दी गयी हैं।

तरंगात्मक शैली में जो परिच्छेद लिखे गये हैं उन सबमें पहले मन्त्र देते हुए तरंग लिखी गयी है, जिसमें प्रदत्त मन्त्रों का भावार्थ स्वतः आ गया है। तरंग के पश्चात् प्रत्येक मन्त्र का, क्रमशः संख्या डालकर कोष्ठक में संस्कृत शब्द देते हुए, सान्वय शब्दार्थ दे दिया गया है। शब्दार्थ के अनन्तर मन्त्रगत विशेष शब्दों के अर्थों पर प्रमाण, निर्वचन आदि भी दे दिये हैं। कतिपय मन्त्र ऐसे हैं, जिनका सायण, उवट, महीधर आदि भाष्यकारों ने कर्मकांडिक विनियोग का अनुसरण करते हुए भिन्न अर्थ-योजना की है, परन्तु स्वामी दयानन्द ने उनका नारी-परक अर्थ किया है। जहाँ ऐसी स्थिति है वहाँ शब्दार्थ के पश्चात् इस आशय की टिप्पणी दे दी गयी है तथा यथासम्भव दयानन्द-कृत अर्थ का आवश्यक अंश भी दे दिया है, यद्यपि वहाँ भी अर्थ में हमने उनका पूर्णतः अनुसरण नहीं किया है। कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं, जिनमें नारीपरक व्याख्या करने का संकेत तो दयानन्द-भाष्य से लिया गया है, किन्तु मन्त्रार्थ दयानन्द-कृत न लेकर अपना स्वतन्त्र किया गया है। कोई-कोई मन्त्र ऐसा भी है जिसका नारीपरक अर्थ न सायण आदि के भाष्य में है, न दयानन्द-कृत भाष्य में; उनमें नारीपरक अर्थ-योजना लेखक की अपनी है। वहाँ शब्दार्थ के बाद इस आशय की टिप्पणी दे दी गयी है। ४ से १३ तक के परिच्छेदों में जो मन्त्र आये हैं, उनमें से प्रत्येक मन्त्र का एक शीर्षक बनाकर विषय-सूची में लिख दिया गया है। यद्यपि वह शीर्षक मन्त्र के पूरे भाव को प्रकट नहीं कर पाया है, तो भी मन्त्र के विषय की एक झाँकी उससे मिल जाती है।

स्वामी दयानन्द के ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेद-भाष्य का अध्ययन करते हुए यह तथ्य सामने आया कि वेदों की देवियाँ नारी के चरित्र पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं। वेद का कवि जब प्राकृतिक उषा की छटा का वर्णन करने लगता है तब उसमें चेतनता का आरोप करके उसे मूर्तिमती चेतन देवी के रूप में वर्णित करता है। उषा एक युवति रानी है, जो रक्तिम साड़ी पहनकर मुस्कराती हुई रथ

पर बैठकर आती है। वह द्यौ की पुत्री है, उसके पास गाय, घोड़े तथा अन्य सब प्रकार का वसु है, इस वसु को वह हमें प्रदान भी करती है। वह प्रिय, मधुर, सत्य वाणी का उच्चारण करती है। वह रथों को चलाती है, पक्षियों को उड़ाती हैं, द्वेषियों को भगाती है, आह्वान को सुनती है। वह कर्म करती है, सोतों को जगाकर कार्य में तत्पर करती है। वह पुनः-पुनः जन्म लेती है। इन वर्णनों से स्पष्ट है कि वेद प्राकृतिक उषा के प्रतीक द्वारा नारी के स्वरूप को भी चित्रित करते हैं, साथ ही वे आध्यात्मिक अन्तःप्रकाश की उषा की ओर भी संकेत करते हैं। इस प्रकार एक ही उषा का प्रतीक अधिदैवत में प्राकृतिक उषा, अधिभूत में नारी तथा अध्यात्म में अन्तःप्रकाश की उषा की ओर इंगित करता है। यही स्थिति आपः, अदिति, सरस्वती, इडा, भारती, सिनीवाली, अनुमति आदि अन्य देवियों की भी है, जिनके नारीपरक अर्थ पर प्रथम परिच्छेद में प्रकाश डाल दिया गया है। वैदिक देवियाँ नारीपरक अर्थ को भी प्रस्तुत करती हैं, इस तथ्य को देखते हुए कई परिच्छेदों में नारी के मातृ-रूप, पत्नी-रूप, वीरांगना-रूप आदि को चित्रित करने के लिए विभिन्न देवियों के भी मन्त्र दिये गये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक चार मूल वेदों तक ही सीमित रही है, अर्थात् ऋग्वेद (शाकल-संहिता), यजुर्वेद (वा० भा० शुक्ल संहिता), सामवेद (राणायनीय या कौथुम संहिता) और अथर्ववेद् शौनक संहिता। शाखा, ब्राह्मण-ग्रन्थ आदि इतर वैदिक साहित्य, स्मृतिग्रन्थ तथा रामायण, महाभारत आदि को इसमें नहीं लिया गया है, क्योंकि हमारा प्रयोजन केवल वैदिक नारी का आदर्श प्रस्तुत करना ही है। प्रतिपक्षियों की ओर से वैदिक नारी पर जो कतिपय प्रमुख आक्षेप किये जाते हैं, उनका समाधान पाठकों को पुस्तक के द्वितीय परिच्छेद में प्राप्त हो सकेगा। तृतीय परिच्छेद में नारी के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द के वेदमूलक विचार दिये गये हैं। स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि आदि में तो नारी तथा नारी की विभिन्न समस्याओं पर विचार प्रकट किये ही हैं, किन्तु उनके वेदभाष्य में भी इस सम्बन्ध में उनके अनेक बहुमूल्य विचार प्राप्त होते हैं। प्रत्येक विषय में उनके वेद-भाष्य से बहुत-से उद्धरण यहाँ दिये गये हैं। उद्धरण हमने प्रायः संस्कृत-भाष्य के न देकर आर्य-भाषा-भाष्य के दिये हैं। मुद्रित वेदभाष्य में जहाँ भाषा अस्पष्ट थी, वहाँ उसे सुबोध कर दिया है। स्वामी जी के वचनों को देखने से ज्ञात होता है कि वे देश में नारी की स्थिति को सुधारने के विषय में कितने अधिक आतुर थे और नारी का कैसा उज्ज्वल रूप उनकी कल्पना में था।

पुस्तक के आरम्भ तथा अन्त में नारी-सम्बन्धी कतिपय सूक्तियाँ भी दे दी गयी हैं, जिनमें वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, मनुस्मृति, धर्मसूत्र, रामायण तथा महाभारत से भी एक-एक सूक्ति ली गयी है। एक मातृ-स्तुति शंकराचार्य की है। स्वामी दयानन्द की सूक्ति भी है। गृहाश्रम-सम्बन्धी सामग्री

इस पुस्तक में उतनी ही है, जितनी नारी के चित्रण में अनिवार्य रूप से आ गयी है। स्वतन्त्र रूप से गृहाश्रम विषय का पल्लवन नहीं किया गया है। आशा है यह कृति पाठकों के सम्मुख वैदिक नारी का उषा के समान जगमगाता हुआ उज्ज्वल रूप प्रदर्शित करने में यत्किंचित् सफल हो सकेगी।

अन्त में मैं श्री स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने समर्पण-शोध-संस्थान की ओर से इस रचना को प्रकाशित करने का अनुग्रह किया है।

पन्तनगर (नैनीताल)
२० नवम्बर १९८४

रामनाथ वेदालंकार

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसम्
उषा ददातु सुग्म्यम् ।।
ऋग्० १.४८.१३

जिसकीं तमःसंहारक भद्र अर्चियाँ
सम्मुख दिखाई दे रही हैं, वह श्रेष्ठ
प्रकाशवती उषा हमें विश्ववरणीय,
उत्कृष्ट ज्योति से जगमग,
दिव्य ऐश्वर्य प्रदान करे ।
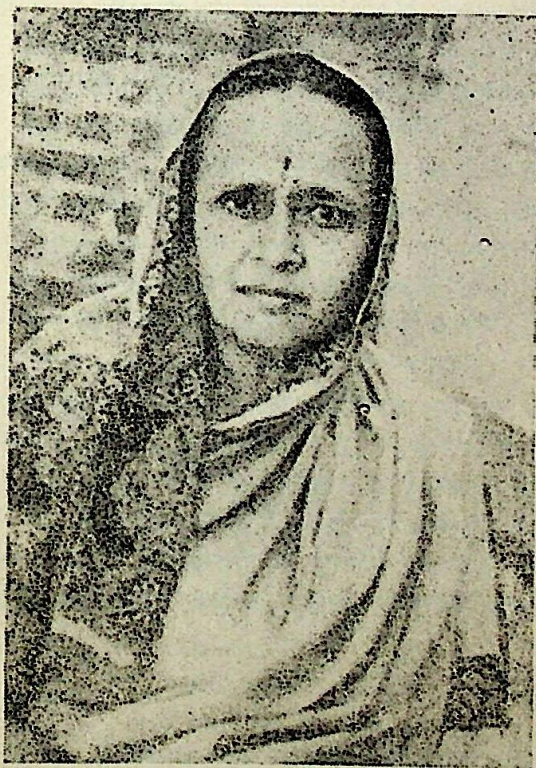
स्व० श्रीमती प्रकाशवती

जन्म : फाल्गुन शुक्ला ३, १९७९ प्रयाण : चैत्र कृष्णा १४, २०३८

जिनकी पुण्य स्मृति में इस पुस्तक की रचना हुई।

स्नेहभाजन विनोद-निर्मला-स्वस्ति, दीप्ति-अवधेश, भारती-महेन्द्र-प्रीति-उदिता 'पूजापुष्प' अर्पित करते हैं।

प्रकाशकीय

महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा कि—चारों आश्रमों में कौन-सा आश्रम तोल में भारी है? पितामह बोले कि तोलकर देख लो, सीधा-सा हिसाब है—पलड़े दो और आश्रम चार, दो दूनी चार। बस फिर क्या था, धर्म-तुला के प्रेय और श्रेयरूप दोनों पलड़ों में दो-दो आश्रम रख दिए गये, किन्तु जब तुला के काँटे को देखा गया तो महाराज चकित रह गये कि—प्रेय नामक पलड़ा भारी है और श्रेय नामक पलड़ा हल्का है। महाराज ने यह समस्या दादा के सामने रखी कि आश्रमों को बराबर बाँटने पर भी समस्या ज्यों-की-त्यों बनी है। इस पर भीष्म ने कहा—ऐसा करो कि प्रेय-पलड़े में गृहस्थ को रखो और श्रेय-पलड़े में शेष तीनों आश्रमों को। बस यही किया गया तो युधिष्ठिर के हर्ष का ठिकाना न रहा कि जब उन्होंने देखा कि तीनों आश्रमों की तुलना में एक गृहस्थ आश्रम ही बराबर है। भीष्म ने भगवान् व्यास का वचन सुनाकर इस बात को प्रमाणित कर दिया **"आश्रमाँस्तुलया सर्वान् घृतानाहुर्मनीषिणः। एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः।"** [महाभारत शा० पर्व १२।११] आश्रमों में गृहस्थाश्रम की स्थिति सर्वोपरि है। गृहस्थ की स्थिति गृह से है, गृह की स्थिति गृहिणी से है। **'गृहिणी'** नारी के विभिन्न नामों में से एक प्रतिष्ठित नाम है। भगवान् व्यास ने नारी के इस रूप की आरती इन शब्दों में उतारी है—**न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते। गृहं तु गृहिणी हीनमरण्यसदृशं मतम्॥** [महा० १२-३६४-३]

अमर होने का साधन

प्रत्येक व्यक्ति की यह बलवती इच्छा है कि वह कभी न मरे, अमर हो जाए। मनुष्य अभी तक अमर होने का कोई भी उपाय नहीं ढूंढ पाया। अमर होने का एकमात्र वैदिक उपाय है कि व्यक्ति अपने-आपको पैदा करे, और अपने-आपको पैदा करने के लिए जाया की प्राप्ति करे। यतः जाया का जायात्व इसी में है कि वह पति को पुत्ररूप में जन्म दे। जाया पुरुष का आधा भाग है, जाया को पाकर ही पुरुष पूर्ण हो पाता है। शतपथकार का कथन है कि—**अर्धो वा एष आत्मनो यज्जाया। तस्माद् यावज् जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते। असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदेव जायाँ विन्दते अथ प्रजायते। तर्हि हि सर्वो भवति।** [शतपथ

ब्राह्मण ५।२।१।१०] महाभारतकार व्यास ने इसी के स्वर में स्वर मिलाकर कहा है— **अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।** महा० १।६८।४०

भार्यां पतिः सम्प्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः।

जायाया इति जायात्वं पौराणा कवयो विदुः॥ महा० १।६८।३६

याज्ञवल्क्य और व्यास के उपर्युक्त वचनों का आधार ऋग्वेद ३।५३।४ का **जायेदस्तम्** वचन है। इस वचन का अर्थ है कि जाया ही घर है, और स्पष्ट कहें तो जाया ही वह आधार है जिसमें पति आत्मनिधि का निक्षेप करता है। ऐतरेय उपनिषद् का निम्न वाक्य मानो इस ऋग्वचन की ही व्याख्या हो—**'पुरुषेह वा अयमादितो गर्भो भवति, यदेतत्रेतस्, तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति। तद् यदा स्त्रियां सिंचत्यथैनञ्जनयति॥** [ऐ० उ०] इसी का सुपरिणाम है कि व्यक्ति तथा समाज अपने को अमर रख पाता है। विवाह-मण्डप में स्वयं प्रकृति वधूरूप में अपना साक्षात् दर्शन देती है। सब जगत् की धात्री, सर्वलोक-नमस्कृता, सबकी माता, उस देवी को नारीरूप में साक्षात् देखकर उसकी महिमा और यशोगान करने की अभिलाषा किसे न होगी! आर्यों का सारस्वत अनुवाक् उसी इच्छा की काव्यमयी अभिव्यक्ति है। इस गान में २० श्लोक हैं। उसका प्रथम ओजस्वी श्लोक आज भी विवाहवेदी पर सुना जाता है। तद्यथा—

यस्यां भूतंसमभवत् यस्यां विश्वमिदं जगत्।

तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥

पारस्कर गृह्यसूत्र १।७।२

जिसमें भूतकाल के प्राणियों ने जन्म पाया, जिसमें सारा जगत् आश्रित है, जो सबकी जननी है, वह नारी जिस उत्तम यश की पात्र है, उस यशोगाथा को आज हम गाते हैं।

यह सत्य ही है कि भूत, भविष्यत् और वर्तमान जगत् के जन्म का कारण नारी ही है। उसके उत्तम यश की आराधना भारतीय संस्कृति में भरपूर हुई है। नारी के यशोगीत भले ही मनु, व्यास, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, पारस्करादि ऋषियों ने गाए हैं परन्तु उनका मूल स्रोत तो वेद-संहिताएँ ही हैं। वैदिक संहिताओं में जो नारी का निखरा रूप वर्णित है वह अन्यत्र दुर्लभ है। नारी के इस रूप को निखारा है विद्वद्वर्य श्री पं० रामनाथ जी वेदालङ्कार ने। श्री रामनाथ जी वेद-समुद्र के सफल गोताखोर हैं जो न केवल रत्न निकाल ही लाते हैं अपितु उन्हें सान पर चढ़ाकर निखारते भी हैं, जिनकी आभा देखते ही बनती है। जहाँ सामान्य व्यक्ति केवलमात्र हाथ ही मारता रहता है, वहाँ से ऐसे-ऐसे अमूल्य हीरक ढूंढ निकालना उन जैसे कुशल निष्णात व्यक्ति का ही काम है। उनके द्वारा लिखित नूतनग्रन्थ **'वैदिक नारी'** इस बात का प्रबल प्रमाण है। हम तो इसे **'नारी का वैदिक यशोगीत'** कहेंगे।

लेखक ने ग्रन्थ का आरम्भ किस साहित्यिक शैली से किया है वह बानगी देखते ही बनती है। तो आइए कुछ पंक्तियों में लेखक-शैली का रसास्वाद लें—

"वेदों में नारी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुरुष और नारी समाज-रूप और राष्ट्र-रूप रथ के दो चक्र हैं। जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता, ऐसे ही अकेले पुरुष या अकेली नारी से समाज और राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। नर और नारी कहीं भाई और बहिन के रूप में, कहीं पुत्र और माता के रूप में, कहीं पति और पत्नी के रूप में, कहीं ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी के रूप में, कहीं आचार्य और आचार्या के रूप में, कहीं प्रचारक और प्रचारिका के रूप में, कहीं लेखक और लेखिका के रूप में समाज में अपने-अपने कार्य-कलापों को करते दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में एक इकाई दूसरी इकाई की पूरक होती है।

पुरुष द्यौ लोक है, तो नारी पृथिवी है; दोनों के सामंजस्य से ही सौर जगत् सप्राण बना है। पुरुष साम है, तो नारी ऋक् है; दोनों के सामंजस्य से ही सृष्टि का सामगान होता है। पुरुष वीणा-दण्ड है, तो नारी वीणा-तन्त्री है; दोनों के सामंजस्य से ही जीवन के संगीत की झंकार निःसृत होती हैं। पुरुष नदी का एक तट है, तो नारी दूसरा तट है; दोनों के बीच में ही वैयक्तिक और सामाजिक विकास की धारा बहती है। पुरुष दिन है, तो नारी रजनी है। पुरुष प्रभात है, तो नारी उषा है। पुरुष मेघ है, तो नारी विद्युत् है। पुरुष अग्नि है, तो नारी ज्वाला है। पुरुष आदित्य है, तो नारी प्रभा है। पुरुष तरु है, तो नारी लता है। पुरुष फूल है, तो नारी पंखुड़ी है। पुरुष धर्म है, तो नारी धीरता है। पुरुष सत्य है, तो नारी श्रद्धा है। पुरुष कर्म है, तो नारी विद्या है। पुरुष सत्त्व है, तो नारी सेवा है। पुरुष अभिमान है, तो नारी क्षमा है। दोनों के सामंजस्य में ही पूर्णता है। विवाह इसी सामंजस्य का एक प्रतीक है।"

तो पाठकवृन्द ! आपने लेखक की शैली को देखा। नारी के इन्हीं विभिन्न रूपों को निखारा गया है। वैदिक संस्कृति में व्यक्ति के दो जन्म माने जाते हैं। दो जन्म हुए बिना व्यक्ति द्विज नहीं बनता। पुरुष की भाँति नारी के भी दो जन्म होते हैं, एक शरीरतः, दूसरा विद्यातः। विद्यातः जन्म होने पर नारी का पदार्पण जैसे ही विवाह-वेदी पर होता है वैसे ही उसका कुल, व्रत, यज्ञ आदि सब-कुछ बदल जाता है। उसके नाम, काम, रिश्ते-नाते सब बदल जाते हैं। उसके दो रूप हैं—एक पितृकुल का और दूसरा पति-कुल का। वह दोनों कुलों को जोड़नेवाली कड़ी है। दोनों कुलों का उत्थान और पतन इसी के हाथ है। पितृ-कुल में नारी कन्या है, पुत्री है, भगिनी है, ननद है, बूआ है। पतिकुल में पदार्पण करते ही नारी, वधू है, गृहिणी है, पत्नी है, भार्या है, जाया है, दारा है, वीरसू है, शुश्रू है, जननी है, अम्बा है, माता है, और है श्वश्रू (सास); इन सब संज्ञाओं के अनुरूप उसके कर्तव्यों का भी अनन्त विस्तार है। वैदिक कवि ब्रह्म का वर्णन बहुत प्रकार से करते हैं—

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। उसी प्रकार प्रकृति की स्थानापन्न नारी का भी बहुत प्रकार से वर्णन किया गया है। नारी के विभिन्न रूपों का व्याख्यान इस ग्रन्थ में आपको पृष्ठ-पृष्ठ पर पदे-पदे देखने को मिलेगा।

आर्यों की सार्वभौम संस्था सार्वदेशिक सभा ने इस वर्ष को महर्षि दयानन्द-निर्वाण-शताब्दी का समापन वर्ष माना है। ऐसे अवसर पर नारी के वैदिक स्वरूप पर विचार होना आवश्यक था। महर्षि दयानन्द की चतुरस्र योजनाओं में नारी-उत्थान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः नारी-विषयक साहित्य-निर्माण न होना अपूर्णता का परिचायक होता। इस कमी को पूर्ण किया है श्री पण्डित रामनाथ जी ने **वैदिक नारी** नामक ग्रन्थ लिखकर। इस ग्रन्थ में एक अध्याय "नारी की स्थिति पर महर्षि दयानन्द के वेदमूलक विचार" पर ही अर्पित किया है जो अत्यन्त उपादेय है। महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य में अर्पित नारी के स्वरूप ने लेखक का मार्ग प्रशस्त किया है।

श्री रामनाथजी वेदालंकार ने ऐसे उत्तम ग्रन्थ का प्रणयन कर उसके प्रकाशन का दायित्व समर्पण-शोध-संस्थान को प्रदान कर गौरवान्वित किया, उसके लिए संस्थान उनका सदैव आभारी रहेगा।

ग्रन्थ का प्रकाशन इतना शीघ्र और सुन्दर न हो पाता यदि नवीन शाहदरा स्थित **अजय प्रिण्टर्स** के अधिपति और प्रिय अजय उसमें पूर्ण रुचि और मनोयोग न देते। मैं हृदय से उनको शतशः साधुवाद देता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि परिवार धन से, कीर्ति से और धर्म से उत्तरोत्तर बढ़े।

—दीक्षानन्द सरस्वती

विषय-सूची

५. वीरांगना ६८-७७

शिला के समान सुदृढ़ बन। आक्रमणकारियों को परास्त कर। तू शेरनी है। तू ब्रह्म-क्षत्र की जननी है। तू क्षात्रबल का भण्डार है। राष्ट्रभूमि को दृढ़ कर। सन्तान को वीरता का दूध पिला। तू सहस्रवीर्या है। तू कर्मशूर है। तू अदीन है। तेरे पुत्र महान् कार्यों का बीड़ा उठानेवाले हैं। तू सम्राज्ञी है, तू कान्ति से भासमान है। तू रणभूमि में शत्रुओं के छक्के छुड़ानेवाली है। शत्रुओं के हृदयों को शोक-दग्ध कर दे। एक-एक को चुनचुनकर कारागार में डाल दे। तू विष-बुझे बाण के समान रण-संहार करनेवाली है। यह घातक मुझे अबला समझे बैठा है। मैं राष्ट्र की ध्वजा हूँ, राष्ट्र का मस्तक हूँ। मैं विजेत्री हूँ। मैं शत्रुरहित हो गयी हूँ। मैंने रिपु-सेनाओं के तेज को हर लिया है।

६. वीर-प्रसवा ७८-८३

राष्ट्र को युद्ध-कुशल क्षत्रिय प्रदान कर। राष्ट्र के ज्ञान-विज्ञान में पारंगत ब्राह्मण सन्तान प्राप्त करा। राष्ट्र को अन्न, धन आदि की संग्राहक सन्तान प्राप्त करा। राष्ट्र को अश्वारोही, रथारोही वीर प्राप्त करा। राष्ट्र को समृद्ध सन्तान प्रदान कर। राष्ट्र को बलवान्, प्राणवान् सन्तान दे। राष्ट्र को दानी, यशस्वी सन्तान दे। राष्ट्र को बहुज्ञानी, अपराजेय सन्तान दे। राष्ट्र को कर्मवीर, रक्षक, शत्रु-प्रकम्पक सन्तान दे। तू ही रण-बाँकुरे पुत्रों को जन्म देती है। तू राष्ट्र को जनसेवी पुत्र प्रदान कर।

७. विद्यालंकृता ८४-९१

विदुषी नारी समाज में पवित्रता लाती है। वह सूनृता और सुमति को लाती है। वह नदी के समान ज्ञान का प्रवाह लाती है। उसका स्तन विश्रामदायक और पुष्टिकर है। वह अध्यापिका और उपदेशिका बनती है। उस पर सबका जीवन निर्भर है। वह ज्ञान और कर्म सिखाती है। वह नदी की धारा के समान विघ्नों को तोड़ती-फोड़ती आगे बढ़ती है। वह देवनिन्दक प्रवृत्तियों को नष्ट करती है। वह भद्र ही भद्र करती है। उसे सब पुकारते हैं। वह विद्युत् बनकर ज्ञान-सलिलों को बरसाती है। वह घावों पर मरहम लगाती है।

हूँ। गृहाश्रम के स्वर्ग में तुझे निमन्त्रित करता हूँ। हम दोनों एक-दूसरे की आयु का अपहरण न करें। तू इडा है, तू अदिति है, तू सरस्वती है। छिद्र को भर। सारस्वत प्रवाह तेरी रक्षा करें। हृदय और मन के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ। मेरे प्राणापान आदि की रक्षा कर। सूर्यसदृश तप के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ। तू मुझ मनु की घोड़ी है। तुम सबके लिए शिवा हो। तेरे त्याग का सब अनुकरण करें। तेरा नाम पुकारने योग्य है। तू पूनम की रात है। तेरी सुमतियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं। तू देवों की वहिन है। तू मूर्धा है, तू सम्राज्ञी है। तू यन्त्र के समान नियम-परायणा है। सब देव हमारे हृदयों को एक करें। हम पर मधु बरसे।

११. अन्नपूर्णा १२६-१३४

हमारे घर में अन्न और रस की नदियाँ वहें। हमारे धनधान्य का कोष बादल के समान अक्षय हो। हमारी गगनचुम्बी हवेली सब ऐश्वर्यों से पूर्ण हो। हमारी हवेली में बच्चों-कुमारों की रौनक हो। दूध-दही के घड़े भरे रहें। घी की धार वहे। पत्नी गाय के समान उरुधारा, पयस्वती बने। वह कामधेनु बने। वह सहस्र ऐश्वर्यों का दान करे। सारा परिवार गोदुग्ध, बल, रस से सिक्त हो। हमारा घर घी-दूध-दही की धाराओंवाला स्वर्ग-लोक बने। दूध, रस, घृत, मधु सब ऐश्वर्य हमारे घर में आये। हमारे घर में सब अन्न भरे हों। हमारा ऐश्वर्य कीर्ति का हेतु बने।

१२. सद्गृहिणी और सम्राज्ञी १३५-१४३

[वृद्ध जनों का वधू को आशीष व उपदेश]

पति की आशाओं को पूर्ण कर, दिशाओं में कीर्ति फैला। स्थिरता के साथ खड़ी हो। तू सद्गुणों से भासमान है। पतिगृह से तेरा सम्बन्ध-विच्छेद न हो। पतिव्रता रहकर अमृत बरसा। सदा ब्रह्म को स्मरण रख। गार्हपत्य अग्नि की सेवा कर। श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दे। गृहजनों का उद्धार कर। सबको सुख दे। जागरूक रह। इहलोक, परलोक दोनों को देख। तू रुद्रा भी है, चन्द्रा भी है। सब जनों को छाया दे। तेरी प्रतिष्ठा हो, तू सच्चरित्र रह। सम्पूर्ण ज्योति प्रदान कर : पतिगृह में राज कर। सबकी सम्राज्ञी बन।

संकेत-सूची

अथर्व	अथर्ववेद
उ	उणादि
ऋग्	ऋग्वेद
ऋ० भा०	ऋग्वेद-भाष्य (दयानन्द)
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
द० टी०	दयानन्द-टीका
द० भा०	दयानन्द-भाष्य
निघं०	निघण्टु कोश
निरु०	निरुक्त (यास्कीय)
प्रश्न	प्रश्नोपनिषद्
मनु	मनुस्मृति
म० भा०	महाभारत
यजु	यजुर्वेद (वा० मा० शुक्ल)
य० भा०	यजुर्वेद-भाष्य (दयानन्द)
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शां० ब्रा०	शांखायन ब्राह्मण
स० प्र०	सत्यार्थप्रकाश
समु०	समुल्लास
सं० वि०	संस्कारविधि
साम	सामवेद

ब्रह्म-पूजिका

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं
ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य
शिवा स्योना पतिलोके विराज॥

प्रत्येक कार्यारम्भ के पूर्व, पश्चात्, मध्य में, अन्त में, सब समय ब्रह्म को स्मरण रख। गृहाश्रम की आधिव्याधि-रहित देवपुरी में पहुँचकर मंगलमयी और सुखकारिणी होती हुई पतिगृह में विशेष दीप्ति से चमक।

—अथर्ववेद १४।१।६४

सम्राज्ञी

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

तू श्वशुर की दृष्टि में सम्राज्ञी हो, सास की दृष्टि में सम्राज्ञी हो, ननद की दृष्टि में सम्राज्ञी हो, देवरों की दृष्टि में सम्राज्ञी हो।

—ऋग्वेद १०-८५-४६

सुखदात्री

स्योना भव श्वशुरेभ्यः, स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे, स्योना पुष्टायैषां भव॥

श्वशुर जनों को सुख दे, पति को सुख दे, परिवार को सुख दे, सब प्रजा को सुख दे। इन सबकी यथायोग्य सेवा एवं पुष्टि करती रह।

—अथर्ववेद १४।२।२७

सूक्तियाँ

[अथर्ववेद से संकलित]

- ☐ जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ३।३०।२
  पत्नी पति से मधुर और शान्त वाणी बोले।
- ☐ चारु संभलो वदतु वाचमेताम् १४।१।३१
  पति पत्नी के प्रति मधुर और चारुभाषी हो
- ☐ इमां नारीं सुकृते दधात १४।१।५९
  इस नारी को शुभ कर्मों में लगाओ।
- ☐ स्योनं कृण्मो वधू पथम् १४।१।६३
  आओ, वधू का मार्ग सुखदायी बनायें।
- ☐ सं पत्नी प्रति भूवेह देवान् १४।२।२५
  श्रेष्ठ पत्नी बनकर देवजनों का सत्कार कर।
- ☐ सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणाम् १४।२।२६
  सुमंगली बन, गृहस्वामियों को तरा।
- ☐ सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा १४।२।३२
  हे नारी, सूर्यप्रभा के समान विश्वरूपा और महती बन।
- ☐ वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् १४।२।५१
  पत्नियों से बुना वस्त्र हमारे शरीर को सुखकर हो।
- ☐ चक्रवाकेव दम्पती १४।२।६४
  पति-पत्नी चकवा-चकवी के समान परस्पर प्रेम करें।
- ☐ प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना १४।२।७५
  हे नववधू, प्रबुद्ध हो, सुबुद्ध हो, जागरूक रह !

१

वैदिक विवाह, वैदिक देवियाँ

वेदों में नारी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुरुष और नारी समाज-रूप और राष्ट्र-रूप रथ के दो चक्र हैं। जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता, ऐसे ही अकेले पुरुष या अकेली नारी से समाज और राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। नर और नारी कहीं भाई और बहिन के रूप में, कहीं पुत्र और माता के रूप में, कहीं पति और पत्नी के रूप में, कहीं ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी के रूप में, कहीं आचार्य और आचार्या के रूप में, कहीं प्रचारक और प्रचारिका के रूप में, कहीं लेखक और लेखिका के रूप में समाज में अपने-अपने कार्यकलापों को करते दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में एक इकाई दूसरी इकाई की पूरक होती है।

पुरुष द्युलोक है, तो नारी पृथिवी है; दोनों के सामंजस्य से ही सौर जगत् सप्राण बना है। पुरुष साम है, तो नारी ऋक् है; दोनों के सामंजस्य से ही सृष्टि का सामगान होता है। पुरुष वीणा-दण्ड है, तो नारी वीणा-तन्त्री है; दोनों के सामंजस्य से ही जीवन के संगीत की झंकार निःसृत होती है। पुरुष नदी का एक तट है, तो नारी दूसरा तट है; दोनों के बीच में ही वैयक्तिक और सामाजिक विकास की धारा बहती है। पुरुष दिन है, तो नारी रजनी है। पुरुष प्रभात है, तो नारी उषा है। पुरुष मेघ है, तो नारी विद्युत् है। पुरुष अग्नि है, तो नारी ज्वाला है। पुरुष आदित्य है, तो नारी प्रभा है। पुरुष तरु है, तो नारी लता है। पुरुष फूल है, तो नारी पंखुड़ी है। पुरुष धर्म है तो नारी धीरता है। पुरुष सत्य है, तो नारी श्रद्धा है। पुरुष कर्म है; तो नारी विद्या है। पुरुष सत्त्व है, तो नारी सेवा है। पुरुष अभिमान है, तो नारी क्षमा है। दोनों के सामंजस्य में ही पूर्णता है। विवाह इसी सामंजस्य का एक प्रतीक है।

ब्रह्म और प्रकृति का विवाह

अथर्ववेद में सृष्टि की उत्पत्ति के निमित्त परमात्मा और प्रकृति के विवाह का एक सुन्दर रूपक बाँधा गया है। वहाँ प्रश्न उठाया गया है कि जब 'मन्यु' संकल्प के घर से 'जाया' को लाया, तब कन्या-पक्ष के लोग (घराती) तथा वर-पक्ष के लोग (बराती) कौन थे और ज्येष्ठ वर अर्थात् दूल्हा कौन था :

यन्मन्युर् जायाम् आवहत्, संकल्पस्य गृहादधि।
क आसं जन्याः के वराः, क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्॥ अथर्व ११।८।१

उत्तर दिया गया है कि महान् अर्णव के अन्दर तप और कर्म विद्यमान थे, वे ही क्रमशः कन्यापक्षीय घराती तथा वरपक्षीय वराती बने और ब्रह्म ज्येष्ठ वर अर्थात् दूल्हा बना।

तपश्चैवास्तां कर्म च, अन्तर् महत्यर्णवे।
त आसं जन्यास्ते वरा, ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत्॥ अथर्व ११।८।२

यहाँ 'मन्यु' ईश्वरीय ज्ञान है, वह संकल्प के घर से प्रकृति-रूप जाया को लाता है, अर्थात् ब्रह्म और प्रकृति इन दोनों का सम्बन्ध होने में ईश्वरीय संकल्प कारण बनता है। 'अर्णव' है प्रलयकालीन सूक्ष्मावस्थापन्न कारणमय जगत्-रूप समुद्र। तप हैं प्रकृति में होने वाली सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों की पारस्परिक हलचलें, वे ही कन्यापक्षीय घराती बने। कर्म अर्थात् ब्रह्म के सहयोगी जीवात्माओं के पुण्या-पुण्य कर्म-संस्कार ही वरपक्षीय वराती बने। ब्रह्म दूल्हा बना। इस प्रकार ब्रह्म और प्रकृति के परस्पर सामंजस्य-रूप विवाह होने से ही सकल सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

द्यौ और पृथिवी का विवाह

वेदों में द्यौ लोक और पृथिवी को क्रमशः हमारे पिता और माता वर्णित किया गया है। इस प्रकार ये परस्पर पति-पत्नी हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (४।२७।५-६) में इनके विवाह का भी वर्णन मिलता है। द्यौ लोक पृथिवी पर सूर्य-रश्मियों का और वृष्टि-जल का सेचन करता है। पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने से ऋतुओं का आवागमन होता है। एवं द्यावापृथिवी के संसर्ग और सामंजस्य से ही ओषधि-वनस्पति, धन-धान्य, स्वर्ण-रजत आदि की सृष्टि होती है। कहा भी है :

ऊर्ज्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां
पिता माता विश्वविदा सुदंससा।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा,
सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम्॥ ऋग् ६।७०।६

(विश्वविदा) सबमें विद्यमान, (सु-दंससा) सामंजस्य-युक्त कर्मों वाले (पिता-माता) हमारे पिता-माता-तुल्य (द्यौः च पृथिवी च) द्यौ लोक और पृथिवी (नः) हमारे लिए (ऊर्ज्जं) अन्न, रस और प्राण को (पिन्वतां) सींचें। (सं-रराणे) मिलकर एक-दूसरे का उपकार करते हुए, (विश्व-शं-भुवा) सबका कल्याण करनेवाले (रोदसी) द्यावापृथिवी (अस्मे) हमारे लिए (सनिं) सेवनीय पदार्थों को, (वाजं) बल को, तथा (रयिं) धन को (सम्-इन्वताम्) मिलकर प्रदान करें।

इस प्रकार द्यावापृथिवी का विवाह एवं पारस्परिक सम्पर्क होने से हमें सर्वविध धन-धान्य, बल, प्राण आदि प्राप्त होते हैं।

सोम और सूर्या का विवाह

ऋग्वेद और अथर्ववेद में जो वैवाहिक सूक्त[1] आये हैं, उनका उपक्रम सोम और सूर्या के विवाह से ही हुआ है। इन दोनों के विवाह के रूपक द्वारा ही मानव लिए विवाह-विषयक निर्देश दिये गये हैं। अप्रकाशित चन्द्रमा सोम है, उसका वर-कन्या के सविता की पुत्री सूर्या से विवाह होता है। सोम अपने-आप में अपूर्ण है, पूर्णता-प्राप्ति के लिए उसे वधू पाने की इच्छा होती है। द्यावापृथिवी-रूप अश्वी-युगल उसके लिए सूर्या का चुनाव करते हैं। पिता सविता इससे सहमत हो जाता है और अपनी पुत्री सोम को देता है :

सोमो वधूयुरभवद्, अश्विनाऽऽस्ताम् उभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं, मनसा सविताऽददात्॥

ऋग् १०।८५।९, अथर्व १४।१।९

चन्द्र अपने-आप में प्रकाशहीन है। सविता सूर्य की सुषुम्ण नामक रश्मि-संहति ही सूर्या है, उससे वह प्रकाशित होता है।[2] इसी प्राकृतिक घटना को वेद में सोम और सूर्या के विवाह-रूप में वर्णित किया गया है। इससे सूचित होता है कि विवाह न्यूनता को दूर कर पूर्णता लाता है। सूर्या का साहचर्य पाकर अन्धकार में प्रकाश का उदय हो जाता है, निष्प्राण चन्द्रमा चन्द्रिका से उद्भासित हो सप्राण हो उठता है और अपने सौम्य प्राण से वृक्ष-वनस्पति, समुद्र आदि को अनुप्राणित करने लगता है।

सौम्य और तैजस गुणों का साहचर्य ही विवाह है। इन्हीं सौम्य और तैजस्य गुणों को प्रश्नोपनिषद् में क्रमशः रयि और प्राण कहा गया है।[3] यह सौम्य और तैजस गुणों का साहचर्य-रूप विवाह चेतन जगत् और जड़ जगत् दोनों में हो रहा है। दोनों जगत् इससे प्राणवान्, ज्योतिष्मान् और गतिमान् होकर नवीन-नवीन सृष्टि कर रहे हैं। सौम्य तत्त्व के विना तैजस तत्त्व और तैजस तत्त्व के विना सौम्य तत्त्व अधूरे और अकिंचित्कर हैं। विरले ही वे नर या नारी होते हैं जो सौम्य तत्त्व तथा तैजस तत्त्व दोनों का अपने ही अन्दर विकास करके बिना विवाह

---

१. ऋग् १०.८५; अथर्व १४.१, २

२. अथाप्यस्य(आदित्यस्य)एको रश्मिः चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्यम्, आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति 'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। यजु० १८।४०' इत्यपि निगमो भवति।

३. प्रश्न १।४-१३

के पूर्णता पाने में समर्थ हो जाते हैं। पर दोनों तत्त्वों का आन्तरिक सम्मिलन वे भी करते हैं। वे भी शरीर और प्राणिक चेतना का समन्वय करते हैं, प्राण और मानसिक चेतना का समन्वय करते हैं, मन और बौद्धिक चेतना का समन्वय करते हैं, बौद्धिक चेतना और आत्मा का समन्वय करते हैं, सत्त्व और रजस् का समन्वय करते हैं। इस प्रकार सौम्य तत्त्व और तैजस तत्त्व अथवा स्त्री-तत्त्व और पुंस्-तत्त्व का समन्वय एक व्यापक प्रक्रिया है और इसमें दोनों ही तत्त्वों की समान महत्ता है। अतः नारी का महत्त्व पुरुष से न्यून होने का कोई प्रश्न नहीं है।

विवाह-योग्य आयु

वेद के अनुसार जब लड़का और लड़की ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर युवक और युवति हो जाते हैं, तभी उनका विवाह होना उचित है। अथर्ववेद में लिखा है कि ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण करने के पश्चात् कन्या युवा पति को प्राप्त करती है—ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् (अथर्व ११।५।१८)। युवा और युवति ही विवाह के अधिकारी हैं, इस विषय के प्रतिपादक अनेक मन्त्र वेदों में मिलते हैं। कुछ मन्त्र यहाँ दिये जा रहे हैं :

तम् अस्मेरा युवतयो युवानं
मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे
दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ऋग् २।३५।४

(अस्म-ईराः[1]) हम लोगों को प्रेरणा देनेवाली, (मर्मृज्यमानाः[2]) शरीर से शुद्ध, मन से पवित्र तथा अलंकार धारण किये हुए (युवतयः) युवावस्था को प्राप्त (आपः[3]) विदुषी गुणवती कन्याएँ (तं) स्वयंवर द्वारा चुने हुए अपने-अपने योग्य उस (युवानं) युवा पुरुष को (परि यन्ति) विवाह द्वारा प्राप्त होती हैं। (घृत-निर्णिक्[4]) तपाये हुए घृत के समान शुद्ध(सः) वह युवक (शुक्रेभिः[5]) देदीप्यमान,

---

१. याः अस्मान् ईरयन्ति ताः। अत्र पृषोदरादिना त लोपः। द० भा० (अस्मत्, ईर गतौ कम्पने च)
२. मृजू शौचालङ्कारयोः।
३. पवित्रजलानीव सकलशुभगुणव्यापिकाः कन्याः (द० भा०, यजु १२।३५) अप् शब्द नित्य बहुवचनान्त होने से यहाँ बहुवचन है, एक पुरुष का अनेक युवतियों से विवाह अभिप्रेत नहीं है।
४. घृत, णिजिर शौचपोषणयोः।
५. शुच दीप्तौ, शुचिर पूतीभावे।

पवित्र (शिक्वभिः[१]) सेचक तेजों के साथ (अप्सु) उस विदुषी युवति के सानिध्य में (रेवत्) ऐश्वर्यवान् होता हुआ (अनिध्मः) विना ही ईंधन के (दीदाय[२]) प्रज्वलित होता है, यश से प्रदीप्त होता है।[३]

> आ धेनवो धुनयन्ताम् अशिश्वीः
> सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
> नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्
> महद् देवानाम् असुरत्वम् एकम् ॥ ऋग् ३।५५।१६

(अ-शिश्वीः) जो बालिका नहीं हैं, (सबर्-दुघाः[४]) जो दूध देनेवाली गायों के समान सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली हैं, (शशयाः) जो विश्रामदायिनी हैं, (अ-प्रदुग्धाः) जिन्हें दुहा नहीं गया है, अर्थात् जो भोगी नहीं गयी हैं, प्रत्युत कुमारी हैं, (नव्याः नव्याः युवतयः भवन्तीः) जो नयी-नयी युवतियाँ हुई हैं ऐसी (धेनवः) गायों के समान मनोरथ पूर्ण करनेवाली वधुएँ (आ धुनयन्तां) विवाहित होकर पतियों को हर्ष से पुलकित करें। यह (देवानां) विद्वान् पतियों का (एकं) एक (महत्) महान् (असुरत्वं) प्राणवत्त्व है, अर्थात् सब विद्वान् युवक युवति पत्नी को प्राप्त करके प्राणवान् होते हैं।[५]

एक मन्त्र में उषा द्वारा देदीप्यमान सूर्य को प्राप्त किये जाने की उपमा युवा पति को प्राप्त करनेवाली युवति से दी गयी है :

> कन्येव तन्वा शाशदानाँ
> एषि देवि देवम् इयक्षमाणम् ।
> संस्मयमाना युवतिः पुरस्ताद्
> आविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ ऋग् १।१२३।१०

(इव) जिस प्रकार (तन्वा) शरीर से (शाशदाना) यौवन की अभिव्यक्ति को प्राप्त करती हुई, (सं स्मयमाना) मुस्कराती हुई (युवतिः कन्या) युवावस्था को प्राप्त कन्या (इयक्षमाणं) गृहाश्रम-यज्ञ को करने के इच्छुक (देवं) यौवन से देदीप्यमान युवक को (एति) प्राप्त करती है, और (विभाती) शारीरिक कान्ति,

---

१. सेचनैः अत्र शीकृधातोः क्वनिपि वा छन्दसीति आद्यचो ह्रस्वत्वम् (द० भा०)
२. दीदयति ज्वलति (निघं० १।१६)
३. द्रष्टव्य : द० भा०, भावार्थ—यथा सम्प्राप्तयौवनाः स्त्रियो ब्रह्मचर्येण कृत-विद्यान् हृद्यान् पूर्णविद्यान् यूनः पतीन् संपरीक्ष्य प्राप्नुवन्ति तथा पुरुषा अप्येताः प्राप्नुवन्ति ।
४. सर्वान् कामान् प्रपूरिकाः (द० भा०)
५. द्रष्टव्य : द० भा०, भावार्थ—प्रथमे वयसि वर्तमाना अधीतविद्या अबाला ब्रह्मचारिण्यः स्वसदृशान् पतीन् उपनीयाऽऽनन्दन्ति ।

विद्या आदि से विभासित होती हुई [पति के सम्मुख] (वक्षांसि) वक्षःस्थलों को (आविः कृणोति) खोल देती है, उसी प्रकार (देवि) हे प्रकाशमयी उषा, (तन्वा) विस्तार के साथ (शाशदाना) व्यक्त होती हुई (संस्मयमाना) मुस्कराती हुई-सी तू (इयक्षमाणं) सौर-जगत्-संचालन-रूप यज्ञ को करनेवाले (देवं) देदीप्यमान सूर्य को (एषि) प्राप्त करती है, और (विभाती) जगमगाती हुई (वक्षांसि) अपने रूपों को (आविः कृणुषे) प्रकट कर देती है।[1]

कतिपय अन्य मन्त्रों में श्लेष, उपमा आदि का आश्रय लेकर युवा और युवति के विवाह की सूचना दी गयी है। यथा :

☐ आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् (ऋग् १।१६७।६) : युवक ऐसी युवति कन्या को वधू रूप में अपने सम्मुख स्थापित करें, जिसने शुभ गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करने के लिए पूर्ण सुशिक्षा प्राप्त कर ली हो और जो धर्म-मार्ग पर चलनेवाली हो।

☐ न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः (ऋग् ३।५४।१४) : जब युवतियाँ विवाह करके माँ बनती हैं तब वे किसी को कष्ट नहीं देतीं।

☐ कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे (ऋग् ५।२।१) : युवति माता कुमार को गर्भ में धारण किये हुए है, पिता को नहीं दे रही।

☐ उत मेऽरपद् युवतिर् ममन्दुषी (ऋग् ५।६१।९) : युवति कन्या ने आनन्दित होकर मेरे सम्मुख स्पष्टतः अपने विवाह का प्रस्ताव किया है।

☐ उप यमेति युवतिः सुदक्षम् (ऋग् ७।१।६) : युवति श्रेष्ठ बली युवक को प्राप्त करती है।

☐ अग्र एति युवतिरह्रयाणा (ऋग् ७।८०।२) : जैसे युवति स्वाभाविक लज्जा को त्याग कर वर के आगे-आगे चलती है, वैसे ही युवति उषा सूर्य के आगे-आगे चल रही है।

☐ एवेद् यूने युवतयो नमन्त (ऋग् १०।३०।६) : जैसे युवतियाँ युवा वर के प्रति झुक जाती हैं।

☐ युवा ह यद् युवत्याः क्षेति योनिषु (ऋग् १०।४०।११) : जब युवा वर युवति वधू के घरों में निवास करता है।

कन्या और पुरुष किस आयु में विवाह-योग्य युवति और युवा हो जाते हैं, इसके लिए आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र दोनों का मन्तव्य है कि यह आयु कन्या के लिए न्यून से न्यून १६ वर्ष तथा पुरुष के लिए न्यून से न्यून २५ वर्ष है। स्वामी दयानन्द

---

१. द्रष्टव्य : द० भा०, भावार्थ—यथा (युवतिः चतुर्विंशतिवार्षिकी) विदुषी ब्रह्मचारिणी पूर्णां विद्यां शिक्षां स्वसदृशं हृद्यं पतिं च प्राप्य सुखिनी भवति तथान्याभिरप्याचरणीयम्।

ने सोलहवें वर्ष से लेकर चौवीसवें वर्ष तक कन्या का और पच्चीसवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह-समय उत्तम माना है। स्वामीजी के समय बाल-विवाह का अत्यधिक प्रचलन था, जिसका उन्होंने युक्ति-प्रमाण-पुरस्सर खण्डन किया।[1] आज तो शिक्षित-वर्ग में बाल-विवाह की समस्या नहीं है, यद्यपि बाल-विवाह-विरोधी कानून बन जाने पर भी अशिक्षित-वर्ग में कहीं-कहीं अब भी छोटी आयु में विवाह होते हैं। अनुमान है कि देश में प्रतिवर्ष लगभग एक लाख विवाहकानून द्वारा निर्धारित आयु से पूर्व हो जाते हैं।

स्वयंवर विवाह

वेद के अनुसार कन्या के लिए वर और वर के लिए वधू के चुनाव का उत्तर-दायित्व स्वयं वर-कन्या का, आचार्य-आचार्या का तथा पिता-माता आदि का सम्मिलित रूप से है। जिन्होंने जीवन-भर साथ-साथ निर्वाह करना है, उन वर-कन्या की उपेक्षा करके किया गया चुनाव वैदिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से वांछनीय नहीं है। कन्या द्वारा पुरुष के और पुरुष द्वारा कन्या के स्वयंवर का समर्थन करता हुआ वेद कहता है :

कियती योषा मर्यतो वधूयोः, परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
[2]भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः, स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्॥

ऋग् १०।२७।१२

(कियती) कितनी ही **(योषा)** स्त्रियाँ **(वधूयोः)** वधू की कामनावाले **(मर्यतः)** मनुष्य से **(वार्येण पन्यसा)** वरणीय स्तुति के साथ **(परिप्रीता)** पसन्द की जाती हैं। इसी प्रकार **(यत्)** जो **(भद्रा)** भद्र गुणोंवाली, और **(सु-पेशाः)** सुन्दर रूपवाली **(वधूः)** वधू **(भवति)** होती है, **(सा)** वह **(जने चित्)** जन-समुदाय में **(स्वयं)** अपने-आप **(मित्रं)** साथी **(वनुते)** चुन लेती है।

एक अन्य प्रसंग में कहा है कि युवति कन्या अपने योग्य युवक को देखकर स्वयं स्पष्ट रूप से उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव रख देती है।

उत मेऽरपद् युवतिः ममन्दुषी, प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्, विप्राय दीर्घयशसे॥

ऋग् ५।६१।९

---

१. अधिक विस्तार के लिए द्रष्टव्य : स० प्र०, समु० ३ तथा ४; सं० वि०, वेदारम्भ और विवाह-संस्कार का आरम्भिक भाग। प्रस्तुत ग्रन्थ का परिच्छेद ३, बाल-विवाह-निषेध प्रकरण।

२. यत् या वधूः भद्रा कल्याणी, सुपेशा शोभनरूपा च भवति सा द्रौपदी-दमयन्त्यादिका वधूः स्वयम् आत्मनैव जने चित् जनमध्येऽवस्थितमिति मित्रं प्रियम् अर्जुननलादिकं पतिं वनुते याचते। —सायण

(युवतिः) यौवन को प्राप्त कन्या (प्रति ममन्दुषी) प्रमुदित होती हुई (श्यावाय) चित्र-विचित्र गुणोंवाले (पुरु-मीळ्हाय) बहुत वीर्यवान् (दीर्घ-यशसे) दीर्घ यशवाले (विप्राय) ज्ञानी युवक को पाने के लिए (वर्तनिम्) मार्ग को, विवाह के प्रस्ताव को (मे) मुझे (अरपत्) स्पष्ट रूप से कह देती है। तदनुसार (रोहिता) विवाह-सम्बन्ध को प्रादुर्भूत अर्थात् पक्का करनेवाले माता-पिता (वि येमतुः) वर-पक्ष से विशेष रूप से याचना करते हैं।[1]

वर-कन्या द्वारा किया गया चुनाव गुणकर्मानुसार ठीक हो, इसके लिए उनके अभिभावक उनकी सहायता करते हैं। इसीलिए ऋग्वेद और अथर्ववेद के विवाह-सूक्तों में जहाँ सूर्या और सोम को एक-दूसरे को चाहनेवाला कहा गया है, वहाँ उनके अभिभावक 'अश्विनौ' (द्यावापृथिवी) का भी उल्लेख है, जो त्रिचक्र रथ से जाकर आवश्यक पूछताछ करते हैं और सभी देव जब इस सम्बन्ध को श्लाघ्य बताते हैं, तभी वे अपनी सहमति देते हैं और तभी सूर्या का पिता सविता अपनी पुत्री सोम को देता है।[2]

स्वयंवर-विधि की वैदिकता को देखते हुए स्वामी दयानन्द ने भी इस पर बहुत बल दिया है तथा इसमें क्या-क्या सतर्कताएँ बरती जानी चाहिएँ इसका भी उल्लेख किया है। उनके विचार हमने तृतीय परिच्छेद में 'वर-वधू का चुनाव' शीर्षक के अन्तर्गत दिये हैं।

वैदिक देवियाँ

वेदों में देवों के समान अनेक देवियों का भी वर्णन मिलता है, जिन्हें स्वामी दयानन्द से पूर्व प्रायः या तो अमानुष देवी-विशेष माना जाता था अथवा उनकी प्रकृति-परक व्याख्याएँ कर ली जाती थीं, जैसे उषा और सरस्वती या तो प्रभात-वेला और नदी की अधिष्ठात्री कोई चेतन देवियाँ मानी जाती थीं अथवा इन्हें प्राकृतिक उषा और सरस्वती नामक नदी मान लिया जाता था। किसी-किसी देवी को किसी शक्ति या गुण का मूर्तरूप भी कल्पित कर लिया गया था, जैसे सरस्वती को विद्या की देवी भी माना जाता था। इसी प्रकार शची वीरता की देवी समझी गयी थी। स्वामी दयानन्द ने अनेक स्थलों पर विभिन्न देवियों की या तो केवल नारी-परक अर्थ-योजना की है अथवा श्लेष या वाचकलुप्तोपमा अलंकारों का

---

१. रोहिता रोहितौ। रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च। येमतुः, यम याचनार्थक, निघ० ३।१९। सायण का अर्थ है कि जो मार्ग युवति बताती है उसी मार्ग पर जाने के लिए घोड़े रथ में जोते जाते हैं—"रोहिता रोहितवर्णौ अश्वौ वि येमतुः घृतवन्तौ।"

२. द्रष्टव्य : ऋग् १०।८५।९,१४; अथर्व १४।१।९,१५

आश्रय लेकर इतर अर्थों के साथ नारी-परक अर्थ प्रदर्शित किया है। यहाँ हम वेद-वर्णित कतिपय प्रमुख देवियों के विषय में यह देखेंगे कि उनका नारी अर्थ कैसे हो जाता है तथा वेद उन देवियों के वर्णन से नारी-परक किन सूचनाओं, कर्त्तव्यों आदि को व्यक्त करता है।

अदिति

'दिति' को दैत्यों की माता और उसके विपरीत 'अदिति' को आदित्यों की माता समझा जाता रहा है। यौगिक अर्थ की दृष्टि से देखें तो जिसका अवखण्डन, पराजय या विनाश न हो सके वह अदिति[1] है। इससे नारी का यह गुण सूचित होता है कि वह विघ्न-बाधाओं, दैवी विपत्तियों, काम-क्रोध आदि आन्तरिक शत्रुओं तथा मानव रिपुओं से हार न मानकर सदा आगे बढ़ती चले। अपने आत्मा-रूप से अखण्डित[2] होने के कारण भी नारी अदिति कहलाती है। निरुक्त[3] में अदिति का अर्थ अदीना किया गया है। अदीन का या तो लोक-प्रचलित लाक्षणिक अर्थ दैन्य-रहित ले सकते हैं अथवा क्षयार्थक दीङ् धातु से निष्पन्न होने के कारण यौगिक अर्थ 'अक्षीण' भी लिया जा सकता है, क्योंकि नारी आत्म-स्वरूप से अक्षीण[4] होती है।

वैदिक कोश निघण्टु के अनुसार अदिति शब्द पृथिवी, वाणी और गाय का वाचक है।[5] निरुक्त में इसे अग्नि का वाची भी कहा गया है। निरुक्त इसे देवमाता भी कहता है। स्वामी दयानन्द ने उक्त अर्थों के अतिरिक्त अखण्डित विद्या, अखण्डित प्रकृति, राजसभा, सूर्यदीप्ति, अखण्डित नीति, नाशरहित विद्युत् आदि अर्थ भी किये हैं। समाज में उनके अनुसार अदिति विदुषी माता[6], पत्नी[7], विदुषी स्त्री[8], अध्यापिका[9] तथा राजपत्नी[10] है। उनके भाष्य से नारीपरक अर्थ के तीन

---

१. न विद्यते अवखण्डनं पराजयो विनाशो वा यस्याः सा अदितिः (दो अवखण्डने)
२. अदितिः स्वस्वरूपेण अखण्डिता देवी विदुषी स्त्री (द० भा०, ऋग् ७।४०।२)
३. अदितिः अदीना देवमाता (निरु० ४।२२)
४. (अदिते) हे आत्मस्वरूपेण अविनाशिनि [पत्नि] (द० भा०, यजु ८।४३)
५. निघ० १।१; १।११; २।११
६. द० भा० ऋग् २।२९।३; यजु १०।९; २८।२५
७. द० भा० यजु ८।४३
८. द० भा० ऋग् ६।५१।५ अखण्डितज्ञानैश्वर्ये [विदुषि स्त्रि]
९. द० भा०, यजु ११।६१
१०. द० भा०, यजु ९।३४

उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं :

यूयं नो मित्रावरुणाऽदिते च
स्वस्तिम् इन्द्रामरुतो दधातन ॥ ऋग् २।२९।३

"हे (मित्रावरुणा) प्राण-अपान के तुल्य प्रियकारी अध्यापक और उपदेशक (च) और (अदिते) विदुषि माताः! (यूयम्) तुम लोग (नः) हमारे लिए (स्वस्तिम्) कल्याण को तथा (इन्द्रामरुतः) बिजुली और वायुओं को (दधातन) धारण करो।"

इड एहि अदित एहि सरस्वत्येहि। यजु ३८।२

"हे (इडे) सुशिक्षित वाणी के तुल्य स्त्रि! तू मुझको (एहि) प्राप्त हो। हे (अदिते) अखण्डित आनन्द को देनेवाली स्त्रि! तू अखण्डित आनन्द को (एहि) प्राप्त हो। हे (सरस्वति) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्रि! तू विद्वान् को (एहि) प्राप्त हो।"

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः
सधस्थेऽङ्गिरस्वत् खनत्ववट। यजु ११।६१

"हे (अ-वट)[1] बुराई और निन्दा से रहित बालक! (विश्वदेव्यावती) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदितिः) अखण्ड विद्या पढ़ाने हारी (देवी) विदुषी स्त्री (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुभ स्थान में (त्वा) तुझको (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान (खनतु) जैसे भूमि को खोद के कूप-जल निष्पन्न करते हैं वैसे विद्यायुक्त करे।"

चारों वेदों में विशुद्ध रूप से अदिति देवतावाले वेदमन्त्र लगभग १५ ही हैं, किन्तु किन्हीं अन्य देवों के साथ इतर मन्त्रों में भी अदिति का नाम आया है। वेदों में अदिति के निम्नलिखित प्रमुख विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, जो नारी के कर्त्तव्यों को सूचित करते हैं :

अरिष्टभर्मा (ऋग् ८।१८।४)—नारी ऐसा भरण-पोषण करनेवाली हो, जिसे कोई क्षतिग्रस्त न कर सके। **पुरुप्रिया** (वही)—ऐसा व्यवहार करे जिससे वह सबको अतिशय प्यारी लगे। **अद्वयाः** (वही, ६)—उसका आचरण दुभाँति अर्थात् प्रकट में प्रेम किन्तु मन में कपटवाला न हो। **सदावृधा** (वही)—स्वयं सदा उन्नतिशील तथा सन्तानों को भी उन्नति करानेवाली हो। **सुमृडीका** (८।६७।१०)—सबको उत्कृष्ट सुख प्रदान करे। **उग्रपुत्रा** (वही, ११)—अपने पुत्रों को पाप तथा पापियों के प्रति उग्र बनाये। **अनेहाः** (वही, १२)—कभी पापकर्म में लिप्त न हो, न सन्तानों को पाप में लिप्त होने दे। **उरुव्रजा** (वही)—अत्यधिक ज्ञानवती तथा कर्मवती हो। **मातरं सुव्रतानाम्** (यजु २१।५)—सुव्रती पुत्रों की माता बनने

१. (अवट) अपरिभाषित अनिन्दित [वट परिभाषणे] द० भा०

का गौरव प्राप्त करे। **ऋतस्य पत्नीम्** (वही) सत्यशील पति की पत्नी तथा सत्य की संरक्षिका हो; **तुविक्षत्राम् अजरन्तीम्** (वही)—अतिशय क्षत्र बल और वीरता से युक्त हो, कष्टों, चोटों से त्राण करनेवाली हो; विघ्न और शत्रु उसे जर्जर न कर सकें। **मातरं महीम्** (अथर्व ७।६।४)—पूज्या माता बने।

अदिति देवों (विद्वानों) की माता है, अतः विशेषतः उसे नारी के मातृत्व रूप का द्योतक माना जा सकता है। अदिति-सम्बन्धी मन्त्रों में आये वेदवाक्यों से माता के निम्न कर्तव्य सूचित होते हैं :

अदितिः पात्वंहसः—(ऋग् ८।१८।६)पाप से गृह-जनों की रक्षा करती रहे। **ददाशोऽनागास्त्वम् अदिते सर्वताता** (१।९४।१५)—सब व्यवहारों और कर्मों में निरपराधता प्रदान करे। **सा शंताति मयस्करद् अप स्रिधः**(वही, ७)—कल्याण-कारी सुख व आरोग्य देवे, हिंसावृत्तियों व हिंसकों को दूर करे। **कृधि तोकाय जीवसे** (८।६७।१२)—सन्तान को जीवन से अनुप्राणित और जागरूक बनाये। **सुविते दधातु** (यजु २९।४)—सदाचार, सन्मार्ग व कीर्तिजनक कर्मों में प्रेरित करे। **सा नः शर्म त्रिवरूथं नियच्छात्** (अथर्व ७।६।४)—ऐसी शिक्षा दे जो आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों कष्टों का निवारण कर सके।

सरस्वती

निघण्टु कोश में सरस्वती वाणी तथा नदी के वाचक शब्दों में पठित है[1]। इसे विद्या की देवी भी माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण में नारी को भी सरस्वती कहा गया है[2]। स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में सरस्वती के अर्थ विदुषी स्त्री[3], प्रशस्त-ज्ञानयुक्ता पत्नी[4], विदुषी शिक्षिता माता[5], प्रशस्तविद्यासुशिक्षायुक्ता वाङ्मती स्त्री[6], विज्ञानयुक्ता अध्यापिका स्त्री[7] आदि किये हैं। उनके वेदभाष्य से यहाँ तीन उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर् वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ऋग् ६।६१।४

---

१. निघ० १।११; १।१३
२. योषा वै सरस्वती। श० ब्रा० २।५।१।११
३. प्रशस्तं सरो विज्ञानं विद्यते यस्याः सा [विदुषी स्त्री]
४. यजु १९।८२
५. वही, २०।६४
६. वही, २१।५३
७. (सरस्वतीम्) बहुविधं सरो वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्याः तां विज्ञान-युक्तां अध्यापिकां स्त्रियम्। वही, ९।२७

"पदार्थ—हे सन्तानो ! जो (देवी) विदुषी (वाजेभिः) अन्नादिकों के साथ विद्यमान (वाजिनीवती) प्रशस्त विज्ञान वा क्रिया से युक्त (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी से समृद्ध [माता] (नः) हमारी (धीनाम्) बुद्धियों की (अवित्री) रक्षा करने-वाली होकर (प्र अवतु) अच्छे प्रकार रक्षा करे, उसको तुम स्वीकार करो।

भावार्थ—माता-जनों को चाहिए कि अपने सन्तानों को बाल्यावस्था में अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् कर उनके साथ अतुल सुख भोगें।"

त्वं देवि सरस्वति, अवा वाजेषु वाजिनि।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ऋग् ६।६१।६

"पदार्थ—हे (देवि) कामना करनेवाली, (वाजिनि) प्रशस्त विज्ञानयुक्त (सरस्वति) विदुषी स्त्री ! (त्वम्) तू (नः) हमारी (सनिम्) सत्य और असत्य के विभाग करनेवाली बुद्धि को (वाजेषु) प्राप्तव्य पदार्थों में (पूषा इव) भूमि के समान (अवा) पाल और (रदा) विशेषता से लिख।

भावार्थ—हे वरानने ! तुम पृथिवी के समान सबका कल्याण करो और प्रज्ञा देओ।"

चोदयित्री सूनृतानां, चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ यजु २०।८५

"पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! जैसे (सूनृतानाम्) सुशिक्षित वाणियों को (चोदयित्री) प्रेरणा करने हारी, (सुमतीनाम्) शुभ बुद्धियों को (चेतन्ती) अच्छे प्रकार ज्ञापन करती (सरस्वती) उत्तम विज्ञान से युक्त मैं (यज्ञम्) यज्ञ को (दधे) धारण करती हूँ, वैसे यह यज्ञ तुमको भी करना चाहिए।

भावार्थ—जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे, जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो।"

विशुद्ध रूप से सरस्वती के लगभग ६० मन्त्र वेदों में आये हैं। अन्यत्र प्रासंगिक रूप से चर्चा है। वेदों में प्रयुक्त सरस्वती के कतिपय विशेषण इस प्रकार हैं, जो विदुषी नारी के गुणों एवं कर्त्तव्यों का बोध कराते हैं :

पावका (ऋग् १।३।१०)—शारीरिक, मानसिक, सामाजिक पवित्रता उत्पन्न करे। **वाजिनीवती** (वही)—ज्ञानवती तथा क्रियामयी हो। **धियावसुः** (वही)—बुद्धि का उपयोग निवासक कार्यों में करे। **ऋतावरी** (२।४१।१८)—मन, वचन, कर्म से सत्यमयी हो। **जुजुषाणा**(५।४३।११)—उसके अन्दर सेवाभाव हो। **घृताची** (वही)—यज्ञाग्नि में घृत की आहुति देनेवाली हो। **वीरपत्नी** (६।४९।७) वीर पति की पत्नी हो। **पारावतघ्नी** (६।६१।२)—नदी जैसे दोनों ओर के तटों को तोड़ती चलती है, ऐसे ही बाधक विघ्नों को तोड़ती-फोड़ती हुई आगे बढ़नेवाली हो। **घोरा** (वही, ७)—दुष्टताओं व दुष्टों के प्रति घोर हो। **वृत्रघ्नी** (वही)—शत्रुओं के उन्मूलन में सशक्त हो। **हिरण्यवर्तनिः** (वही)—स्वर्णिम व्यवहार-

वाली हो। **अकवारी** (६।९६।३)—अकुत्सित आचरणवाली हो। **यशोभगिनी** (यजु २।२०)—कीर्ति को बहिन के समान सहचरी बनाये।

सरस्वती के विषय में कहे गये निम्नलिखित वेदवाक्य भी विदुषी नारी के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालते हैं :

यज्ञं वष्टु (ऋग् १।३।१०)—यज्ञ की कामना करे अर्थात् यज्ञ करने-कराने वाली हो। **प्रशस्तिम् अम्ब नस्कृधि** (२।४१।१६)—श्रेष्ठ माँ बनकर सन्तानों की प्रशस्ति कराये। **सरस्वति देवनिदो निबर्हय** (१।६१।१३)—देवनिन्दा की प्रवृत्तियों को दूर करे, नास्तिकों (देव-निन्दकों) को आस्तिक बनाये। **धीनाम् अवित्री अवतु** (वही, ४)—ज्ञानों और कर्मों की संरक्षिका बनकर संतानों की रक्षा करे। **भद्रम् इद् भद्रा कृणवत् सरस्वती**(७।९६।३)—भले गुण, कर्म, स्वभाववाली होकर सबका भला ही करे। **अनमीवा इष आ धेह्यस्मे** (१०।१७।८) ऐसे अन्न-रस खिलाये, जिनसे रोग उत्पन्न न हों। **रायस्पोषं यजमानेषु धेहि**(वही, ९)—देवपूजा, संगतिकरण, दानरूप यज्ञ करनेवालों को पुष्ट धन प्रदान करे। **शिवा नः शन्तमा भव सुमृळीका सरस्वति**(अथर्व ७।६८।३)—सबके लिए शिवा, शान्तिदायकयिनी तथा सुखदायिनी हो। **रशं सरस्वती सह धीभिरस्तु** (१९।११।२)—श्रेष्ठ ज्ञानों और श्रेष्ठ कर्मों की शिक्षा देकर सबका कल्याण करे।

उषा

उषा निरुक्त में मध्यमस्थानीय तथा उत्तमस्थानीय देवों में पठित है, अतः इसका अर्थ प्रायः मेघवर्ती विद्युत् और प्रभातकालीन उषा किया जाता रहा है। उषा शब्द को निरुक्तकार ने 'उच्छी विवासे' तथा 'वश कान्तौ' धातु से निष्पन्न किया है।[1] उणादि कोश में इसे 'उष दाहे' धातु से बनाया गया है।[2] उषा सूर्य की पत्नी है[3], अतः मानव पति-पत्नी भी सूर्य और उषा कहलाते हैं।

वेद में उषा को नारी[4], माता[5] और श्वेत साड़ी पहने मुस्कराती हुई युवति[6] कहा गया है। स्पष्ट ही वेद का कवि प्राकृतिक उषा के साथ-साथ मानवी नारी का भी चरित्र चित्रित कर रहा है। पर उषा के मन्त्रों में व्यापक रूप से नारी का

---

१. उषा उच्छतीति सत्याः, रात्रेः परः कालः। निरु० २।१८। उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः, उच्छतोरितरा माध्यमिका। निरु० १२।५
२. उषः किच्च, उ० ४।२३४ से असि प्रत्यय, उसके किद्वत् होने से गुणाभाव।
३. सूर्यस्य योषा, ऋग् ७।७५।५
४. ऋग् १।९२।३
५. वही, १।९२।१, १।११३।१९
६. वही, १।११३।७; १।१२३।१०

दर्शन करनेवाले प्रथम व्यक्ति स्वामी दयानन्द थे। उन्होंने उषा के मन्त्रों को कहीं केवल प्राकृतिक उषा के पक्ष में, कहीं केवल नारी के पक्ष में और कहीं श्लेष या वाचक-लुप्तोपमा का आश्रय लेकर प्राकृतिक उषा और नारी दोनों पक्षों में व्याख्यात किया है। यहाँ हम उनके वेदभाष्य से केवल एक उदाहरण दे रहे हैं जिसमें स्त्री-विषय को उषा के प्रसंग से कहा गया है :

'यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः, सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती।
सुमङ्गलीर् बिभ्रती देववीतिम्, इहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥

ऋग् १।११३।१२

पदार्थ—"हे (उषः) उषा के तुल्य वर्तमान विदुषी स्त्री! (यावयद्-द्वेषाः) जिसने द्वेषयुक्त कर्म दूर किये ऐसी, (ऋतपाः) सत्य की रक्षक, (ऋतेजाः) सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध, (सुम्नावरी) जिसमें प्रशंसित सुख विद्यमान हैं ऐसी, (सुमङ्गलीः) जिनमें शुभ मंगल होते हैं उन (सूनृताः) वेदादि सत्य शास्त्रों की सिद्धान्तवाणियों को (ईरयन्ती) शीघ्र प्रेरणा करती हुई (श्रेष्ठतमा) अतिशय उत्तम गुण, कर्म स्वभाव से युक्त, (देववीतिं बिभ्रती) विद्वानों की विशेष नीति को धारण करती हुई तू (इह) यहाँ (अद्य) आज (व्युच्छ) दुःख को दूर कर।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे प्रभातवेला (उषा) अन्धकार का निवारण कर, प्रकाश का प्रादुर्भाव करा, धार्मिकों को सुखी और चोरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है, वैसे ही विद्या और धर्म से प्रकाशवती, शमादि गुणों से युक्त विदुषी उत्तम स्त्रियाँ अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके, अच्छी शिक्षा से अविद्यान्धकार को छुड़ा, विद्यारूप सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें।"

अब हम उषा-सूक्तों में प्रयुक्त उषा के कतिपय विशेषण नीचे दे रहे हैं, जिनसे नारी के कर्त्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है :

विभावरी (ऋग् १।३०।२०)—जैसे उषा प्रकाश से युक्त है, ऐसे ही नारी विद्या, धर्म आदि के प्रकाश से युक्त हो। **दास्वती** (१।४८।१)—उषा के समान धनादि का दान करनेवाली हो। **अश्वावती** (वही, २)—जैसे उषा व्याप्तिमती तथा प्राण-रूप अश्ववाली है, वैसे ही नारी भी हो। **गोमती** (वही)—जैसे उषा प्रशस्त किरणरूप गौओं वाली है, वैसे ही नारी प्रशस्त वाणी वाली, प्रशस्त गायों की स्वामिनी तथा प्रशस्त इन्द्रिय-रूप गौओं वाली हो। **सूनरी** (वही, ५)—उषा के समान शुभ नेतृत्व करनेवाली हो। **प्रभुञ्जती** (वही)—उषा के समान प्रकृष्ट रूप से पालन करनेवाली हो। **जरयन्ती वृजनम्** (वही)—जैसे उषा अन्धकार को नष्ट करती है, ऐसे ही उषा पाप को नष्ट करे। **वाजिनीवती** (वही, ६)—उषा के समान क्रियाशील हो। **सुभगा** (वही, ७)—उषा के समान श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाली तथा सौभाग्यवती हो। **चित्रामघा** (वही, १०)—उषा के समान चित्र-विचित्र धन-

धान्यादि सम्पत्ति से भरपूर हो।

अर्जुनी (ऋग् १।४९।३)—शुभ्र उषा के समान सत्त्वगुणमयी हो। **नेत्री सूनृतानाम्** (१।९२।७)—जैसे उषा मनुष्यों को जगाकर मधुर सत्य वाणियों को प्रवृत्त कराती है, वैसे ही नारी परिवार में मधुर सत्य वाणियों को प्रवृत्त कराये; परिवार में कोई कटुभाषी तथा असत्यभाषी न हो। **रुशद्वत्सा** (१।११३।२)—जैसे उषा दिन-रूप चमकीले वत्स को जन्म देती है, वैसे ही नारी सद्गुणों से उज्ज्वल सन्तान को जन्म दे। **अजरा, अमृता** (१।११३।१३)—जैसे उषा प्रवाह-रूप से अजर अमर है, ऐसे ही नारी आत्म-रूप से अजर-अमर है, इस तथ्य को समझे। **चेकिताना** (वही, १५)—उषा के समान प्रबोधदायिनी हो। **सर्ववीरा** (वही, १८)—जैसे उषा की सब किरणें वीर होती हैं, ऐसे ही नारी अपनी सब सन्तानों को वीर बनाये। **यज्ञस्य केतुः** (वही, १९)—यज्ञ की पताका बने, यज्ञों का प्रसार करे। **प्रशस्तिकृत्**(वही)—सन्तानों को प्रशस्ति प्रदान करे। **विश्ववारा** (वही)—सम्पूर्ण भद्र का वरण और अभद्र का निवारण करनेवाली हो। **अनवद्या** (१।१२३।८)—निन्दा की पात्र न बने। **संस्मयमाना**(वही, १०)—उषा के समान मुस्कराती रहे। **ज्योतिर् वसाना** (१।१२४।३)—चेहरे और शरीर पर ज्योति खिली हो, विद्या और सत्कर्म कीं ज्योति से भी भासमान हो। **समना** (वही)—पति के साथ समान मनवाली हो। **नव्यसी** (वही, ९)—उषा के समान नित्य नवीनतर प्रतीत हो। **सुदिना** (वही)—श्रेष्ठ दिनों को लानेवाली हो। **प्रचेताः** (३।६१।१)—जैसे उषा प्रकृष्ट रूप से चेतानेवाली है, ऐसे ही नारी प्रकृष्ट चित्त-वाली हो। **मघुधा** (वही, ५)—जीवन में मिठास घोलनेवाली हो। **रेवती** (४।५१।४)—निर्धन न हो, धनाढ्य हो। **अभिष्टिद्युम्ना** (वही, ७)—प्रशंसित यशरूप धनवाली हो। **सुनीथा** (४।७९।२)—उत्तम नीतियों पर चलने-चलाने-वाली हो।

इसके अतिरिक्त उषा-सूक्तों में आये निम्नलिखित वाक्य और वाक्यांश भी विभिन्न नारी-कर्त्तव्यों के निर्देशक हैं :

अस्मे रयिं निधारय (ऋग् १।३०।२२)—धन की निधियाँ भर दे। **उषा उच्छद् अप स्रिधः** (१।४८।८)—हिंसावृत्तियों और हिंसकों को दूर करे। **विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे** (वही, १०)—सब सन्तानों का प्राण और जीवन तुझ पर निर्भर है। **वह सुकृतो अध्वराँ उप** (वही, ११)—सब गृहवासियों को सुकर्मा बनाकर यज्ञ में ले जाए। **उषो भद्रेभिरागहि**(१।४९।१)—भद्र गुण, कर्म, स्वभावों के साथ परिवार और समाज के बीच आये। **बाधते कृष्णम् अभ्वम्** (१।९२।५)—निराशा के काले विशाल अन्धकार को दूर करे। **उषा उच्छन्ती वयुना कृणोति** (१।९२।७)—जैसे उषा आविर्भूत होकर परोपकार के कार्य करती है, वैसे नारी भी करे। **अमिनती दैव्यानि व्रतानि** (१।९२।१२)—सर्वजनोपयोगी कर्मों को भंग

न करे। **दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्षे** (१।११३।५)—जैसे उषा अल्पदर्शियों को बहुदर्शी बनाती है, वैसे ही नारी अदूरदर्शियों को दूरदर्शी तथा अल्पश्रुतों को बहुश्रुत बनाये। **परायतीनाम् अन्वेति पाथः** (१।११३।८)—जैसे उषा प्राचीन उषाओं के मार्ग का अनुसरण करती है, वैसे नारी भी प्राचीन विदुषियों के मार्ग का अनुसरण करे। **चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय** (१।१२३।१)—चिकित्साशास्त्र को जाने, जिससे आतुरों की यथायोग्य चिकित्सा कर सके। **भद्रा नाम वहमाना उषासः** (वही, १२)—नारियाँ भद्र नामों[1] और भद्र कीर्तियों को धारण करें। **अनुव्रतं चरसि विश्ववारे** (३।६१।१)—ग्रहण किये व्रतों का पालन करे।

गातुं कृण्वन्नुषसो जनाय (ऋग् ४।५१।१)—लोगों के लिए मार्गदर्शन करे। **प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तम्** (वही, ५)—सोतों को जगाये। **व्यावर् ज्योतिषा तमः** (४।५२।६)—सद्गुणों की ज्योति से दुर्गुण-रूप अन्धकार को दूर करे। **सुगान् पथः कृण्वती** (५।८०।२)—उत्तम शिक्षा देकर कर्त्तव्य-मार्गों को सुगम बनाये। **अमा सते वहसि भूरि वामम्** (६।६४।६)—घर में रहनेवालों को बड़ी मात्रा में सेवनीय ऐश्वर्य प्राप्त कराये। **उरुगायम् अधि धेहि श्रवो नः** (वही)—सन्तानों को बहुत प्रशंसनीय यश प्राप्त कराये। **याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन** (वही)—सर्वांग-सुन्दर रथ से यात्रा करे। **अभयं कृधी नः** (७।७७।४)—सन्तान को निर्भय बनाये। **यत् ते दिवो दुहितर् मर्तभोजनं तद् रास्व** (७।८१।५)—मनुष्यों के खाने योग्य भोजन सन्तान को खिलाये।

आपः

निघण्टु कोश में 'आपः' अन्तरिक्षवाची और जलवाची[2] हैं। निरुक्त में 'आपः' पद व्याप्ति अर्थवाली 'आप्लृ'[3] धातु से निष्पन्न बताया गया है। मूल शब्द 'अप्' है, जो नित्य बहुवचनान्त है; उसके प्रथमा-बहुवचन में 'आपः' रूप बना है। ब्राह्मणग्रन्थों में 'आपः' से शान्ति, श्रद्धा आदि भी अभिप्रेत माने गये हैं।[4] वेदों में इनका मातृरूप में भी चित्रण मिलता है।[5] स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में 'आपः' की अधिकतर जल-परक और प्राण-परक व्याख्या की है। तो भी कई स्थलों पर नारी-परक व्याख्या भी मिलती है। यथा—

१. मनु ने अभद्र नामवाली कन्या से विवाह तक का निषेध किया है (मनु ३।९)। द्रष्टव्य : सं० वि०, विवाह-संस्कार।
२. निघ० १।३; १।१२
३. आपः आप्नोतेः। निरु० ९।२६
४. शान्तिः आपः। श० ब्रा० १।२।२।११, श्रद्धा वा आपः। तै० ब्रा० ३।२।४।१
५. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु। ऋग् १०।१७।१०

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत (यजु १२।३५) में 'आपः' का अर्थ पवित्र जलों के तुल्य सकल शुभ गुणों में और विद्याओं में व्याप्त बुद्धिवाली कन्याएँ अर्थ लेते हुए व्याख्या की है कि हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम वैसी तथा सुन्दर रूप और स्वभाववाली कन्याओं से स्वयंवर-विधि से विवाह करो।[1]

ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युः (ऋग् ४।१८।८) में 'आपः' का जलों के समान वर्तमान माताएँ अर्थ लेकर व्याख्या की है कि ऐसी माताएँ शिशु को सुख दें।[2]

सधमादो द्युम्निनीराप एताः···अपां शिशुर् मातृतमास्वन्तः (यजु १०।७) में 'आपः' का अर्थ 'जल के समान शान्तियुक्त विदुषी स्त्रियाँ' और 'अपाम्' का अर्थ 'विद्याओं में व्याप्त स्त्रियाँ' किया है।[3]

देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत (यजु ८।२६) में 'देवीः आपः' का अर्थ 'समस्त शुभ गुण, कर्म और विद्याओं में व्याप्त होनेवाली अति शोभायुक्त स्त्रियाँ' किया है।[4]

देवीरापः शुद्धा वोढ्वम् (यजु ६।१३) में 'आपः देवीः' का 'श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त सद्विद्या के प्रकाश से युक्त स्त्रियाँ' अर्थ किया है।[5]

'आपः' के निम्नलिखित विशेषण वैदिक नारी के गुण-धर्मों पर प्रकाश डालते हैं :

अम्बयः (ऋग् १।२३।१६)—नारी श्रेष्ठ माताएँ बनें, प्रेममय व्यवहार करनेवाली हों[6], उत्कृष्ट अध्यापन व सदुपदेश करें।[7] **जामयो अध्वरीयताम्** (वही)—यज्ञ-प्रेमियों से वह्नि के समान स्नेह करनेवाली हों। **विश्वभेषजीः** (१।२३।१०)—सब रोगों का इलाज जानती हों। **शतपवित्राः** (७।४७।३)—सैकड़ों पवित्र भावों से भरपूर हों। **स्वधया मदन्तीः** (वही)—अन्न के भोजन अर्थात् शाकाहार में आनन्द माननेवाली हों। **मधुश्चुतः** (७।४९।३)—मधुर व्यवहारवाली हों। **मयोभुवः** (१०।९।१)—सुखदायिनी तथा आरोग्यदायिनी हों। **रेवतीः** (१०।३०।

---

१. (आपः) पवित्रजलानीव सकलशुभगुणव्यापिकाः कन्याः। (देवीः) दिव्यरूप-सुशीलाः। (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकुर्वीत।
२. (आपः) जलवद् वर्तमाना मातरः।
३. (आपः) जलानीव शान्ताः [स्त्रियो विदुष्यः]। (अपाम्) व्याप्तविद्यानां स्त्रीणाम्।
४. (देवीः) देदीप्यमाना विदुष्यः। (आपः) सर्वशुभगुणकर्मविद्या व्यापिन्यः।
५. (देवीः) सद्विद्याप्रकाशवत्यः। (आपः) आप्नुवन्ति सद्गुणान् यास्ताः [विदुष्यः सत्स्त्रियः]।
६. (अम्ब) अमति प्रेमभावेन प्राप्नोति [अम गत्यादिषु]। द० भा० ३।६६
७. अबि शब्दे। या अम्बते अध्यापयति सम्यगुपदिशति वा सा।

१४)—लक्ष्मीवती हों। जीवधन्याः(वही)—धन्य जीवन वाली हों। उशतीः (वही, १५)—स्नेह करनेवाली हों। अग्रेगुवः (यजु १।१२)—अग्रगामिनी हों। अग्रेपुवः(वही)—आगे होकर प्रत्येक काम में पवित्रता रखें। मधुमतीः(१।२१)—जीवन में माधुर्य हो। ऊर्जं वहन्तीः (२।३४)—बल और प्राणशक्ति को धारण करने-करानेवाली हों। देवश्रुतः (६।३०)—विद्वानों की बात सुननेवाली हों। घृतश्चुतः (अथर्व १।३३।४)—गृह-सदस्यों तथा अतिथियों के लिए घृत बहानेवाली हों। शक्वरीः (३।१३।७)—शक्ति से भरपूर हों। कर्मण्याः(६।२३।२)—कर्मण्य हों। अयक्ष्मंकरणीः (१९।२।५)—आरोग्यकारिणी हों। जीवलाः (१९।६९।४) जीवन से अनुप्राणित हों।

'आपः' के मन्त्रों में आये निम्न वाक्य और वाक्यांश भी नारी के गुणों और कर्त्तव्यों का निर्देश करते हैं:

ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् (ऋग् १।२३।१७)—यज्ञ में स्वयं आयें तथा अन्यों को यज्ञार्थ प्रेरित करें। आपः पृणीत भेषजम् (वही, २१)—आतुरों की चिकित्सा करें। इदमापः प्रवहत यत् किञ्च दुरितं मयि (वही, २२)—पाप को दूर करें। देवीर् देवानाम् अपि यन्ति पाथः (७।४७।३)—विद्वानों के बताये मार्ग पर चलें। ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि (वही)—ईश्वरीय नियमों तथा राज-नियमों को न तोड़ें। यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः (वही, ४)—सदा सबका कल्याण करें। पुनाना यन्त्यनिविशमानाः (७।४९।१)—सबको पवित्र करती हुई अथक परिश्रम करती रहें। वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टः (वही, ४)—सर्वहितसंपादन की अग्नि उनके हृदय में जलती रहे। विश्वं हि रिप्रं प्र वहन्ति देवीः(१०।१७।१०)—विदुषी बनकर सब दोषों को दूर करें। श्रुष्टीवरीर्[1] भूतनास्मभ्यम् आपः (१०।३०।११)—फुर्तीली हों। घृतं पयांसि बिभ्रतीर् मधूनि (वही, १३)—घी, दूध, मधु से भरपूर हों। हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः (अथर्व १।३३।१)—ज्योतिष्मती, पवित्र तथा पवित्रतादायिनी हों। शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः(वही, ४)—सबको भली आंख से देखें। विश्वेषां देवानां भागधेयीः स्थ (यजु ६।२४)—सब देवों (अतिथि, वानप्रस्थ, संन्यासी, राजा आदि) को उन-उनका भाग दें।

अनुमति और राका

'अनुमति' शब्द अनु पूर्वक मन् धातु से और 'राका' शब्द दानार्थक रा धातु से सिद्ध होता है।[2] निरुक्त में लिखा है कि याज्ञिक सम्प्रदाय के मत में अनुमति

१. (श्रुष्टीवरी) शीघ्रतावाली, फुर्तीली। श्रुष्टि=शीघ्र(निरु० ६।१३)
२. अनुमतिः अनुमननात् (निरु० ११।२९)। राका रातेः दानकर्मणः (निरु० ११।३०)

और राका क्रमशः पूर्वा पौर्णमासी तथा उत्तरा पौर्णमासी के नाम हैं, किन्तु नैरुक्तों के मत में ये देवपत्नियाँ हैं।[1] देवपत्नी से विद्वान् की पत्नी अभिप्रेत समझें तो पति, परिवार, समाज, राष्ट्र आदि के प्रति अनुकूल चिन्तन करनेवाली नारी अनुमति है, और दान-परायणा अथवा पूर्णिमा के समान उज्ज्वल गुणोंवाली नारी राका है। वेदों में अनुमति के प्रमुख मन्त्र केवल ७ तथा राका के केवल २ हैं। दोनों के एक-एक मन्त्र का नारी-परक अर्थ यहाँ दिया जा रहा है, जिससे इनके क्रमशः अनुकूल चिन्तन तथा दान के गुण भी सूचित हैं।

[2]अन्विदनुमते त्वं मंससे, शञ्च नस्कृधि।
जुषस्व हव्यं आहुतं, प्रजां देवि ररास्व नः॥

अथर्व ७।२०।२

(अनुमते) हे अनुकूल चिन्तन करने वाली विदुषी, (त्वं) तू (इत्) निश्चय ही (अनु मंससे) अनुकूल चिन्तन कर, (च) और (नः) हमारे लिए (शं) शान्ति और सुख (कृधि) कर। (आहुतं) आहुति दिये हुए (हव्यं) हव्य को (जुषस्व) सेवन कर। (देवि) हे दिव्य गुणों से प्रकाशित विदुषी, (नः) हमें (प्रजां) प्रजा (ररास्व) प्रदान कर।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो, याभिर् ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर् नो अद्य सुमना उपागहि, सहस्रपोषं सुभगे रराणा॥

ऋग् २।३२।४; अथर्व ७।४८।२

इस मन्त्र का दयानन्द-भाष्य इस प्रकार है—

"**पदार्थ**—हे (राके) [पूर्ण प्रकाशित चन्द्रमा से युक्त] रात्रि के समान सुख देनेवाली! (याः) जो (ते) आपकी (सुपेशसः) सुन्दर रूपवाली दीप्ति, और (सुमतयः) उत्तम बुद्धि हैं, जिनसे आप (दाशुषे) देनेवाले पति के लिए (वसूनि) धनों को (ददासि) देती हो, उनसे (नः) हम लोगों को (अद्य) आज (सुमनाः) प्रसन्नचित्त हुई (उपागहि) समीप आओ। हे (सुभगे) सौभाग्ययुक्त स्त्री! (रराणा) उत्तम देनेवाली होती हुई, हम लोगों के लिए (सहस्रपोषम्) असंख्य प्रकार से पुष्टि को देओ।

भावार्थ—यदि सुलक्षणा विदुषी स्त्री श्रेष्ठ विद्वान् जन की पत्नी हो तो धन की और सुख की बहुत प्रकार प्राप्ति हो।"

---

१. अनुमतिः राका इति देवपत्न्यौ इति नैरुक्ताः, पौर्णमास्यौ इति याज्ञिकाः। या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिः, या उत्तरा सा राकेति विज्ञायते।

(निरु० ११।३०)

२. इस मन्त्र का दयानन्द-भाष्य उपलब्ध नहीं है।

सिनीवाली और कुहू

यास्क के अनुसार याज्ञिकों के मत में पूर्वा अमावास्या सिनीवाली है और उत्तर अमावास्या कुहू है, किन्तु नैरुक्तों के मत में ये दोनों देवपत्नियाँ हैं।[1] सिनीवाली की व्युत्पत्ति यास्क ने यह की है कि 'सिन' का अर्थ अन्न होता है और 'वाल' का अर्थ पर्व है, अतः पर्वों पर उत्तमोत्तम भोजन तैयार करने की पाकविद्या में कुशल देवपत्नी सिनीवाली है।[2] दयानन्द 'सिनी' का अर्थ प्रेमबद्ध तथा 'वाली' का अर्थ बलकारिणी करते हैं।[3] कुहू शब्द को यास्क ने गुह धातु से अथवा क्व-भू, क्व-ह्वेञ्, क्व-हु से बनाया है। जो गोपनीय बातों को गुप्त रखती है, अथवा जिसकी योग्यता देखकर यह प्रश्न किया जाता है कि इसने कहाँ जन्म लिया है, अथवा जो कहीं भी हो उसे बुलाया जाता है, अथवा जो कहीं भी हो हवन अवश्य करती है, वह देवपत्नी कुहू कहलाती है।[4] सिनीवाली वेदों में कुल १२ मन्त्रों में आयी है और कुहू के केवल दो ही मन्त्र हैं। नारी-अर्थ में दोनों का एक-एक मन्त्र यहाँ प्रस्तुत है :

सिनीवालि पृथुष्टुके, या देवानाम् असि स्वसा।
जुषस्व हव्यम् आहुतं, प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ ऋग् २।३२।६

इसका दयानन्द-भाष्य इस प्रकार है—

"पदार्थ—हे (पृथुष्टुके) मोटी-मोटी जंघाओंवाली (सिनीवालि) अति प्रेम से युक्त देवी ! जो तू (देवानाम्) विद्वानों की (स्वसा) बहिन (असि) है, सो तू, मैंने जो (आहुतम्) सब ओर से होमा है उस (हव्यम्) देने योग्य द्रव्य को (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर। हे (देवि) कामना करती हुई स्त्री ! तू हमारी (प्रजाम्) प्रजा को (दिदिड्ढ) दे।

भावार्थ—जो विद्वानों के कुल की कन्या, विद्वानों की बहिन, ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुई प्रकाशमती हो, उसे पत्नी बनाकर विधि से इसमें सन्तानों को जो उत्पन्न करता है, वह पुरुष और वह स्त्री दोनों सुखी होते हैं।"

---

१. सिनीवाली कुहूरिति देवपत्न्याविति नैरुक्ताः अमावास्ये इति याज्ञिकाः, या पूर्वा अमावास्या सा सिनीवाली, या उत्तरा सा कुहूरिति विज्ञायते। (निरु० ११।३१)

२. सिनम् अन्नं भवति, सिनाति भूतानि (षिञ् बन्धने), वालं पर्व वृणोतेः, तस्मिन् अन्नवती (वही)।

३. सिनी प्रेमबद्धा चासौ बलकारिणी च। द० भा०, यजु ३४।१०

४. कुहूः गूहतेः क्व अभूत् इति वा, क्व सती हूयते इति वा, क्व आहुतं हविर् जुहोतीति वा। निरु० ११।३२

[1]कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसम्,
अस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद्,
ददातु वीरं शतदायम् उक्थ्यम्॥ अथर्व ७।४७।१

मैं (देवीं) दिव्य गुणोंवाली, (सुकृतं) शुभकर्म करनेवाली, (विद्मन-अपसम्) प्रख्यात कर्मों वाली, (सु-हवां) शुभ आह्वान के योग्य (कुहूं) पत्नी को (अस्मिन् यज्ञे) इस गृहाश्रम-यज्ञ में (जोहवीमि) बार-बार बुलाता हूँ। (सा) वह (नः) मुझे (विश्व-वारम्) सबसे वरणीय (रयिं) धन (नि यच्छात्) प्रदान करे, और (शतदायम्) सैकड़ों वस्तुओं का दान करनेवाला, (उक्थ्यम्) प्रशंसा के योग्य (वीरम्) वीरपुत्र (ददातु) देवे।

इन उल्लिखित देवियों के अतिरिक्त पृथिवी, इडा, यमी, भारती, उर्वशी, गौरी, सरण्यू, शची आदि देवियाँ भी वेदों में वर्णित हुई हैं। ये सब भी अन्य अर्थों के अतिरिक्त नारी-अर्थ को भी सूचित करती हैं। साथ ही प्रत्येक देव से सम्बद्ध उसकी अपनी-अपनी पत्नी भी है, यथा—इन्द्र की इन्द्राणी, अग्नि की अग्नायी, अश्विनों की अश्विनी, रुद्र की रुद्राणी, वरुण की वरुणानी पत्नी वेद में आती हैं। इन्द्र का अर्थ यदि हम राजा लें, तो उसकी वीरांगना राजरानी इन्द्राणी है। अग्नि का अर्थ यदि विद्वान् पुरुष लें, तो उसकी विदुषी पत्नी अग्नायी है। रुद्र का अर्थ वीर सेनापति लें, तो उसकी वीर पत्नी रुद्राणी है। जिस-जिस गुणवाला जो देव है, उस-उस गुणवाली उसकी पत्नी है।

देवियों की नारी-परक व्याख्या करने की स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदर्शित वेद-व्याख्या-पद्धति को ग्रहण कर लेने पर वेदों में नारी और गृहाश्रम के सम्बन्ध में इतनी अधिक सामग्री उपलब्ध हो जाती है कि उसके आधार से नारी-मनोविज्ञान, नारी के विविध रूप, नारी का घर में और बाहर स्थान आदि विषयक पुष्कल सूचनाओं को देनेवाला पूरा एक शास्त्र तैयार हो सकता है। यहाँ हमने दिग्दर्शन-मात्र किया है।

---

१. इस मन्त्र पर दयानन्द-भाष्य उपलब्ध नहीं है।

२

वेदों में नारी की स्थिति

वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त उच्च, गौरवमयी और पूजास्पद है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वेदों में जैसी गौरवास्पद स्थिति नारी को प्राप्त है, वैसी संसार के अन्य किसी धर्मग्रन्थ में नहीं मिलती। वेद में उसे पति के समकक्ष रखा गया है। जैसे पत्नी के लिए पति आदर और स्नेह के योग्य है, वैसे ही पत्नी भी पति के लिए सम्मान और स्नेह की पात्र है। वेद की दृष्टि में पत्नी ही वस्तुतः घर है।[1] वेद में पति और पत्नी दोनों को दम्पती (दम-पति अर्थात् घर के स्वामी) कहा गया है। 'वैदिक इण्डैक्स' के लेखक मैकडानल और कीथ इस शब्द के विवरण में लिखते हैं कि द्विवचनान्त रूप में पति-पत्नी दोनों के लिए 'द्वम्पती' शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि ऋग्वेद के समय तक पत्नी को बहुत उच्च स्थान प्राप्त था।

वेद के अनुसार वधू पति-गृह में दासी बनकर नहीं, प्रत्युत सम्राज्ञी बनकर आती है।[2] वह केवल पति की दृष्टि में ही नहीं, अपितु सास, श्वसुर, देवर, ननद सबकी दृष्टि में सम्राज्ञी होती है।[3] पति उसकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखता है। वह उसके प्रति अपना उत्तरदायित्व समझता हुआ कहता है कि तुम मेरे साथ रहती हुई सन्तान और धन किसी भी दृष्टि से कष्ट अनुभव नहीं करोगी।[4] तुम मेरी आयु का अपहरण मत करना, मैं तुम्हारी आयु का अपहरण नहीं करूँगा।[5] तुम गृहाश्रम को पूर्ण बनाना, इसमें पैदा होनेवाले छिद्रों को भरना और अविचल

---

१. जाया इद् अस्तम्। ऋग् ३।५३।४। तुलनीय : न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। म० भा० १२।१४५।६

२. त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य। अथर्व १४।१।४३

३. सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ ऋग् १०।८५।४६;
अथर्व १४।१।४४ भी द्रष्टव्य।

४. मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च। अथर्व १४।१।४६

५. मा म आयुः प्रमोषीर् मो अहं तव। यजु ४।२३

होकर रहना।[1] मैं तुम्हें हृदय में रखने के लिए ग्रहण करता हूँ, मन में बसाने के लिए ग्रहण करता हूँ।[2] पत्नी को वह सत्य की विधात्री मानता है।[3] वह कामना करता है कि सब देव हम दोनों को एक कर दें, हम दोनों के हृदय ऐसे एक हो जाएँ जैसे पानी में मिलकर पानी एक हो जाता है।[4] इस प्रकार पतिग्रह में प्रत्येक सदस्य की दृष्टि में नव-वधू उच्च सिंहासन पर आसीन है।

समाज का भी नव-वधू को आशीर्वाद है कि वह मंगलमयी और सुखमयी होती हुई पति-गृह में विशेष शोभा को प्राप्त करे।[5] समाज उसे यशोमयी, कर्मण्य और सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का आदर्श मानता है।[6] वेद में नारी की अपनी उक्तियाँ भी उसे दीन-हीन नहीं, अपितु गृहाश्रम की पताका, गृहाश्रम-रूप शरीर का मस्तक[7] और शत्रुओं से लोहा लेनेवाली वीरांगना सिद्ध करती हैं।[8] अगले प्रकरणों में जो सामग्री दी गयी है, उससे भी वैदिक नारी अत्यन्त उज्ज्वल, प्रतापमयी, पति और सन्तानों के जीवन को ऊँचा उठानेवाली, सौहार्दमयी और यशोमयी के रूप में प्रकट होती है।

एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि वेदों में जो पृथिवी, उषा, नदी और गाय के वाची नाम हैं, वे प्रायः नारी के वाचक भी हैं। वे सब भी नारी की उच्चता और विविध गुण-गरिमा पर प्रकाश डालते हैं, यथा—पृथिवीवाची[9] नामों में गौ, क्षमा, क्षिति, अवनि, उर्वी और मही शब्द नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः नारी की गमनशीलता (कर्मण्यता), क्षमाशीलता, निवासक शक्ति, रक्षक शक्ति, विशालता और पूज्यता को सूचित करते हैं। उषावाची[10] नामों में विभावरी, सूनरी, चित्रामघा, अर्जुनी, वाजिनी, सुम्नावरी और सूनृता नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः उसकी ज्ञानज्योतिर्मयता, शुभ नेतृत्व-क्षमता, अद्भुत ऐश्वर्य-शालिता, सत्त्वगुणप्रधानता, बलवत्ता, सुखदायकता और सत्यमधुरभाषिता को

---

१. लोकं पृण छिद्रं पृण, अथो सीद ध्रुवा त्वम्। यजु १२।५४
२. हृदे त्वा मनसे त्वा। यजु ६।२५
३. वेधा ऋतस्य। ऋग् १।८६।१०
४. समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। ऋग् १०।८५।४७
५. शिवा स्योना पतिलोके विराज। अथर्व १४।१।६४
६. यशस्वतीः अपस्युवो न सत्याः। ऋग् १।७९।१
७. अहं केतुरहं मूर्धा। ऋग् १०।१५९।२
८. असपत्ना सपत्नघ्नी। ऋग् १०।१५९।५
९. निघं० १।१
१०. वही, १।८

व्यक्त करते हैं। नदीवाची[1] नामों में स्रोत्या, एनी, धुनि, रुजाना, सरित्, हरित्, अग्रु, हिरण्यवर्णा, पयस्वती, सरस्वती, तरस्वती और माता नाम नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः उसकी कुलीन स्रोत से उत्पत्ति, गतिमयता, शत्रु-प्रकम्पकता, विघ्न-भञ्जकता, निरन्तर प्रवहमानता, दोषहरणशीलता, अग्रगामिता, ज्योतिर्-मयता, प्रशस्त-दुग्धता, विविध विद्यारसमयता, वेगशालिता तथा मातृत्व-महिमा को सूचित करते हैं। गायवाची[2] नामों में अघ्न्या, उस्रिया, मही, अदिति, इडा, जगती और शक्वरी शब्द नारी के भी वाचक होते हुए उसकी अहन्तव्यता (अपीडनीयता), ऐश्वर्य-प्रवाहकता, पूज्यता, अपराजेयता, सम्मानार्हता-स्तोतव्यता, जंगमशीलता और सामर्थ्यशालिता को द्योतित करते हैं।

यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र का उव्वट एवं महीधर ने कात्यायन-श्रौत-सूत्र के विनियोगानुसार गाय-परक व्याख्यान किया है, किन्तु स्वामी दयानन्द ने मन्त्र का देवता पत्नी मानकर पत्नी-परक व्याख्या की है :

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥

यजु ८।४३

इस मन्त्र में पठित नामों से स्वामीजी ने विदुषी पत्नी के विविध गुणगृहीत किये हैं। इडा नाम से उसकी स्तुति-योग्यता, रन्ति नाम से रमणीयता, **हव्या** से आह्वान-योग्यता, **काम्या** से कमनीयता **चन्द्रा** से आह्लाद-कारकता, **ज्योता** से सुशीलतादि से द्योतमानता **अदिति** से आत्म-रूप अविनाशिता, **सरस्वती** से प्रशस्त-विज्ञान-शालिता, **मही** से पूज्यता, **विश्रुति** सेव हुश्रुतता और **अघ्न्या** से तिरस्कार की अनौचित्यता ग्रहण की है।

इस प्रकार वेद की नारी विविध गुण-गणों से विभूषित, सम्मान और स्नेह की पात्री, कर्त्तव्य-परायणा, यशस्विनी और अतिशय गरिमामयी है।

क्या पुत्री-जन्म वेद को अवांछित है ?

कुछ आलोचकों का कथन है कि वेदों में नारी को हीन दृष्टि से देखा गया है। इसकी पुष्टि में वे एक तर्क यह प्रस्तुत करते हैं कि वेदों में सर्वत्र पुत्र ही मांगे गये हैं, पुत्रियों की कामना कहीं दिखाई नहीं देती। परन्तु वस्तुतः यह स्थापना सही नहीं है। हमें इस तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि वैदिककोश निघण्टु के अनुसार अपत्य-वाची १५ शब्द इस प्रकार हैं—

१. निघं० १।१३
२. वही, २।११

तुक् । तोकम् । तनयः । तोक्म । तक्म । शेषः ।
अप्नस् । गयः । जाः । अपत्यम् । यहुः । सूनुः ।
नपात् । प्रजा । बीजम् ।। इति पञ्चदश अपत्यनामानि (निघं० २।२)

यह प्रत्येक संस्कृतज्ञ जानता है कि अपत्य का अर्थ सन्तान होता है, जिसमें पुत्र और पुत्री दोनों सम्मिलित हैं। इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त शब्दों से जहाँ सन्तान-प्राप्ति की प्रार्थना वेदों में मिलती है, वह पुत्र और पुत्री दोनों के लिए है। यह भी द्रष्टव्य है कि सन्तान की सर्वाधिक वैदिक प्रार्थनाएँ 'प्रजा' शब्द से हैं और प्रजा से पुत्र-पुत्री दोनों का ग्रहण होता है, इससे संस्कृत का प्रत्येक विद्यार्थी परिचित है। निघण्टु का प्रमाण हमारे सम्मुख न भी होता, तो भी 'प्रजा' से केवल पुत्र का अर्थ कोई गृहीत नहीं करता। वेदों में प्रजा की कतिपय प्रार्थनाएँ निम्नलिखित हैं :

सं माग्ने वर्चसा सृज सं **प्रजया** समायुषा, ऋग् १।२३।२४, ज्योग् जीवन्तः **प्रजया** सचेमहि १।१३६।६, प्र जायेमहि रुद्र **प्रजाभिः** २।३३।१, आप्यायमानाः **प्रजया** धनेन १०।१८।२, इह प्रियं **प्रजया** ते समृध्यताम् १०।८५।२७, आ नः **प्रजां** जनयतु प्रजापतिः १०।८५।४३, मा हास्महि **प्रजया** मा तनूभिः १०।१२८।५, समहमायुषा सं वर्चसा सं **प्रजया**, यजु ३।१९, सुप्रजाः **प्रजाभिः** स्याम् ३।३७, **प्रजया** च बहुं कृधि १७।५०, अग्निः **प्रजां** बहुलां मे करोतु १९।४८, **प्रजां** देवि दिदिड्ढि नः ३४।१०, मा व्यथिष्ठा मया सह **प्रजया** च धनेन च, अथर्व १४।१।४८, सूर्यामिव परिवत्तां **प्रजया** १४।१।५३, इमां नारीं **प्रजया** वर्धयन्तु १४।१।५४, इह **प्रजां** जनय पत्ये अस्मै १४।२।३१, **प्रजयैनौ** स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् १४।२।६४।

इसके अतिरिक्त वेदों में कई स्थलों पर स्पष्ट भी कन्या या पुत्री की कामना मिलती है, यथा—**मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्**(ऋग् १०।१५९।३)' मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हों और पुत्री भी विशेष तेजस्विनी हो। **पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः**(ऋग् ८।३१।८)यज्ञ करनेवाले पति-पत्नी, पुत्रों और कुमारियों वाले होते हैं। **अविता नो अजाश्वः पूषा यामनि यामनि। आभक्षत् कन्यासु नः ।।** (ऋग् ९।६७।१०) प्रति प्रहर हमारी रक्षा करनेवाला पूषा परमेश्वर हमें कन्याओं का भागी बनाये अर्थात् कन्याएँ प्रदान करे।[1] यजुर्वेद की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय प्रार्थना "**आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्**' (यजु २२।२२)में जहाँ यह इच्छा व्यक्त

---

१. सायण ने भी तात्पर्य तो यही लिया है कि पूषा हमें कन्याएँ प्रदान करे, पर उसे वे कन्याएँ पत्नी-रूप में अभिप्रेत प्रतीत होती हैं, न कि पुत्री रूप में—
"कन्यासु कमनीयासु अभिमतासु स्त्रीषु नः अस्मान्
आभक्षत् आभजतु, अस्मान् कन्याः प्रयच्छतु इत्यर्थः।"
इसपर तो 'जाकी रही भावना जैसी' की ही उक्ति चरितार्थ होती है।

की गयी है कि हमारे राष्ट्र में विजयशील, सभ्य, वीर युवक पैदा हों, वहाँ साथ ही बुद्धिमती नारियों (पुरंधिः योषाः) के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना है।

एक अन्य स्थान पर खड़ाऊँ पहनकर खुटर-खुटर करती हुई दो नन्हीं कन्याओं से उपमा देता हुआ वेद कहता है—**कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके। बभ्रू यामेषु शोभेते** (ऋग् ४।३२।२३) अर्थात् ये टप-टप चलती हुई घोड़ियाँ अपनी चालों में ऐसी शोभित हो रही हैं, जैसे लकड़ी की खड़ाऊँ पहनकर घर के आँगन में खुटर-खुटर चलती हुई दो कन्याएँ शोभित होती हैं। **'यथा यशः कन्यायाम्'** (अथर्व १०।३।२०) जैसा यश कन्या में होता है, वैसा यश मुझे प्राप्त हो। इस प्रकार के वैदिक वर्णन कन्याओं की स्पृहणीयता को ही सूचित करते हैं।

वेद कहता है—**'जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते** (अथर्व ६।८२।३) अर्थात् हे शचीपति इन्द्र! मैं पत्नी का इच्छुक हूँ, मुझे पत्नी प्रदान करो। यदि वेद कन्या-जन्म को अवांछित मानता है, तो फिर यह पत्नी माँगने की बात कैसे संगत होगी? वेदों में इन्द्र, वरुण आदि प्रत्येक देव की अपनी-अपनी पत्नी होना, कई देवों का दुहिता को जन्म देना, विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान होना आदि वर्णनों को देखते हुए भी यह स्थापना करना कि कन्या-जन्म वेदों को अवांछित है एक दुस्साहस-मात्र है।

अथर्ववेद के दो स्थलों की परीक्षा

कन्या-जन्म वेद को अवांछित है इस पक्ष में अथर्ववेद के दो स्थल प्रायः उद्धृत किये जाते हैं। पहला है—**'स्त्रैषूयम् अन्यत्र दधत् पुमांसम् उ दधदिह'** (अथर्व ६।११।३), अर्थात् स्त्री का जन्म कहीं अन्यत्र हो, इस गर्भ से तो पुरुष सन्तान ही हो। जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसमें कुल तीन मन्त्र हैं। प्रकरण यह प्रतीत होता है कि किसी नारी के केवल कन्याएँ ही उत्पन्न होती हैं, उसकी चिकित्सा का इसमें वर्णन है। शमी वृक्ष के ऊपर पीपल उग आया हो, उस पीपल की जड़, छाल, पत्र, फल आदि के समुचित प्रयोग से उस नारी का उक्त दोष दूर हो सकता है, इसका संकेत इस सूक्त में है। उक्त प्रयोग से यह नारी पुत्र को प्रसव करे, कन्या-जन्म अन्यत्र वहाँ हो जो कन्या को चाहते हैं, यह उद्धृत पंक्ति का तात्पर्य निकलता है। इससे कन्या की अवांछनीयता सिद्ध नहीं होती।

दूसरा स्थल है—**पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्** (अथर्व ८।६।२५)। पूर्वपक्ष इसका अर्थ यह करता है कि हे पति, उत्पन्न होनेवाले पुत्र की रक्षा करो, उसे स्त्री न बनाओ। सायण ने इसके दो अर्थ दिये हैं, दूसरा अर्थ उक्त अर्थ से मिलता-जुलता है। यह मन्त्र गर्भ-रक्षा के प्रकरण का है। 'पिङ्ग' पति के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु ओषधि-विशेष है। सायण के अनुसार यह 'श्वेत सरसों' है। पिङ्ग ओषधि के प्रयोग से गर्भविनाशक (आण्डाद) रोग-

कृमियों को नष्ट किया जा सकता है, यह मन्त्र में वर्णित किया गया है। पूरा मन्त्र और उसका अर्थ इस प्रकार है—

पिङ्ग रक्ष जायमानं, मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।
आण्डादो गर्भान् मा दभन्, बाधस्वेतः किमीदिनः॥

(पिङ्ग) हे पिंग ओषधि, तू (जायमानं) उत्पन्न होनेवाले शिशु की (रक्ष) रक्षा कर। (आण्डादः) गर्भांड को खा जानेवाले रोग-कृमि (पुमांसं स्त्रियं) गर्भ में चाहे पुत्र हो चाहे कन्या हो, उसे (मा क्रन्) पीडित न कर सकें। वे (गर्भान्) गर्भों को (मा दभन्) नष्ट न कर पायें। (इतः) यहाँ से, गर्भाशय से (किमीदिनः) गर्भ-भक्षक रोम-कृमि-रूप राक्षसों को (बाधस्व) दूर कर।

सायण का भी पहला[1] अर्थ यही है। इस सही अर्थ को देकर फिर वैकल्पिक रूप में दूसरा अशुद्ध अर्थ देने की न जाने क्यों उसने आवश्यकता समझी। 'मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्' का 'गर्भस्थ पुरुष को स्त्री मत बना देना' यह अर्थ संगत भी नहीं है, क्योंकि गर्भ में यदि वस्तुतः पुत्र है तो उसे कन्या भला कौन बना सकता है? अगले मन्त्र में नारी-गर्भाशय के दोष बताये गये हैं—'अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम्' (मन्त्र २६), अर्थात् गर्भ स्थित न होने के कारण सन्तान न होना अथवा मृत सन्तान होना। ये दोष उचित चिकित्सा से पिंग ओषधि द्वारा दूर किये जा सकते हैं, यह तात्पर्य है।

नारी की हीन स्थिति के तथाकथित दो मन्त्र

वेदों में नारी की स्थिति हीन सिद्ध करने के लिए पूर्वपक्ष की ओर से ऋग्वेद के दो मन्त्र प्रायः प्रस्तुत किये जाते हैं। पहला है:

इन्द्रश् चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम्॥ ऋग् ८।३३।१७

इस मन्त्र का उनकी ओर से यह अर्थ किया जाता है—"स्वयं इन्द्र ने कहा है कि स्त्री के मन पर शासन नहीं किया जा सकता और उसकी बुद्धि तुच्छ होती है।" सायण को भी यह अर्थ अभिप्रेत प्रतीत होता है।[2] पर खेद है कि मन्त्र का अर्थ सर्वथा विपरीत किया गया है। वास्तविक अर्थ तो यह है कि स्त्री के मन पर शासन या अंकुश नहीं रखा जाना चाहिए, पुरुष के समान उसे भी विचारों की

---

१. "हे पिंग गौर सर्षप, त्वं जायमानम् उत्पद्यमानं शिशुं रक्ष। जायमानम् इति सामान्येन अभिधाय विशेषमाह—जायमानं पुमांसं, जायमानां स्त्रियं वा, मा क्रन् मा कुर्वन्तु पीडायामिति शेषः"—सायण।

२. "स्त्रियाः मनः चित्तम् अशास्यं पुरुषेण अशिष्यं शासितुमशक्यं प्रबलत्वादिति॥ उतो अपि च स्त्रियाः क्रतुं प्रज्ञां रघुं लघुम् आह"—सायण।

स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसके अन्दर भी जो वैचारिक शक्ति है उसका परिवार, समाज और राष्ट्र को लाभ मिलना चाहिए। दूसरी बात मन्त्र में यह कही गयी है कि स्त्री का ऋतु 'रघु' होता है। ऋतु शब्द वैदिक कोश निघण्टु में कर्म और बुद्धि का वाचक है।[1] रघु शब्द वेदों में कहीं भी तुच्छ के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है, भले ही लौकिक संस्कृत में इसका एक अर्थ छोटा या तुच्छ भी होता है। प्रस्तुत स्थल के अतिरिक्त वेदों में यह शब्द विभिन्न विभक्तियों में तथा समस्त-रूप में कुल मिलाकर ३७ बार और प्रयुक्त हुआ है। भाष्यकारों ने, जिनमें सायण भी सम्मिलित हैं, उन स्थलों में कहीं भी इसका अर्थ तुच्छ नहीं किया हैं, अपितु फुर्तीला, वेगवान् या क्रियाशील ही किया है। यथा :

> **अच्छा गमेम रघवो न वाजम्।** ऋग् ४।५।१३
> **अत्यो न वाजी रघुरज्यमानः।** वही, ५।३०।१४
> **रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छ।** वही, ५।४५।६
> **अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवः।** वही, ८।१।६
> **अहं हरी वृष्णा विव्रता रघू।** वही, १०।४६।२

इन स्थलों में वेगशील घोड़े, वाज पक्षी और जल-धाराओं के विशेषण रूप में रघु शब्द आया है। जब अन्य किसी भी स्थल में रघु का अर्थ तुच्छ नहीं है, तो फिर नारी के प्रकरण में ही 'तुच्छ' अर्थ किया जाना क्या वेद और नारी दोनों के प्रति ही अन्याय नहीं है? **'उतो अह ऋतुं रघुम्'** का सही अर्थ यह होगा कि नारी का ऋतु अर्थात् उसकी बुद्धि और क्रियाशीलता बहुत तीव्र होती है। इस प्रकार नारी की हीनता के लिए प्रस्तुत किया गया यह मन्त्र वस्तुतः नारी की हीनता का द्योतक नहीं, प्रत्युत उसकी गरिमा का ही द्योतक है।

दूसरा स्थल जो नारी को वेद की दृष्टि में हीन सिद्ध करने के लिए प्रतिपक्ष की ओर से प्रस्तुत किया जाता है इस प्रकार है—**"न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता"** (ऋग् १०।९५।१५) अर्थात्, स्त्रियों से मित्रता करना अच्छा नहीं होता, उनकी मित्रताएँ लक्कड़बग्घों के हृदय के समान क्रूर होती हैं। प्रथम दृष्टि में यह वाक्य स्त्री-निन्दा-परक ही प्रतीत होता है, परन्तु यदि प्रकरण को देखें तो हमारा समाधान हो जाता है। यह मन्त्र पुरूरवा-उर्वशी-संवाद का है। पुरूरवा अत्यधिक कामासक्त है। उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए स्वयं उर्वशी की ओर से यह वचन कहा गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि स्त्रियों के साथ बहुत अधिक कामासक्तियाँ ठीक नहीं होतीं, अन्ततः यह कामासक्तियाँ लक्कड़बग्घों के हृदय-जैसी क्रूर और विघातक सिद्ध होती हैं। स्त्री स्वयं अपनी निन्दा भला क्यों करेगी?

---

१. निघ० २।१, ३।९

वेद की दृष्टि में तो न नारी निन्दनीय है, न पुरुष निन्दनीय है। नारी या पुरुष के अवगुण ही उन्हें निन्दनीय बनाते हैं। इसीलिए वेद कहता है—

उत त्वा स्त्री शशीयसी, पुंसो भवति वस्यसी। अदेवत्रादराधसः॥
वि या जानाति जसुरिं, वि तृष्यन्तं वि कामिनम्। देवत्रा कृणुते मनः॥

ऋग् ५।६१।६, ७

(अदेवत्रात्) जो देवयज्ञ नहीं करता और विद्वानों की रक्षा नहीं करता और (अराधसः) जो धनादि का दान नहीं करता या किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं करता, ऐसे(पुंसः) पुरुष से (उत) तो (त्वा)एक (स्त्री) स्त्री (वस्यसी) अधिक अच्छी है, जो (शशीयसी) प्रशंसनीय[1] और उद्यमी[2] होती है, (या) जो (जसुरिं[3]) आपत्तियों से प्रताड़ित को (वि जानाति) जानती है, (तृष्यन्तं) प्यासे को (वि जानाति) जानती है, (कामिनं) धनादि की अभिलाषावाले को (वि जानाति) जानती है [और उसकी सहायता करती है] तथा जो (देवत्रा) परमात्म-देव, पति-देव, सास-श्वसुर आदि देव व अतिथि आदि देवों की सेवा में (मनः कृणुते) मन लगाती है।

उत घा नेमो अस्तुतः, पुमाँ इति ब्रुवे पणिः।
स वैरदेय इत् समः॥ ऋग् ५।६१।८

(उत) इसके विपरीत (घ) निश्चय ही (नेमः) कोई (अस्तुतः) अप्रशंसित (पणिः) कृपण मनुष्य (पुमान् इति ब्रुवे) मैं पुरुष हूँ ऐसा कहता है अर्थात् अपने पुरुष होने का अभिमान करता है, तो (सः) वह (वैर-देये[1] इत्) शत्रु के ही (समः) समान है।

बहुपत्नी-प्रथा

कुछ आलोचकों का कथन है कि वैदिक काल में बहुपत्नी-प्रथा प्रचलित थी। वे ऋग्वेद १०।१४५ तथा अथर्ववेद ३।१८ का हवाला देते हुए कहते हैं कि वैदिक काल में एक पुरुष की कई पत्नियाँ हुआ करती थीं और पत्नियों का सारा समय प्रायः इसी बात में व्यतीत हो जाता था कि वे कैसे अपनी सौतों को नष्ट करके पति की मुख्य कृपापात्र बन सकें। परन्तु यह स्थापना सही नहीं है। वेदों पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करनेवाले विद्वान् भी यह मानने के लिए वाध्य हुए

---

१. सायण ने एक पक्ष में तो 'शशीयसी' यह रानी का नाम माना है, दूसरे पक्ष में इसका अर्थ 'प्रशस्य' किया है—शशीयसी इत्येतत् महिष्या नाम। यद्वा... स्त्रीषु सैव प्रशस्या इत्यर्थः।

२. शश प्लुतगतौ। प्लुत गति करनेवाली अर्थात् अतिशय उद्यमी।

३. जसु हिंसायाम्, जासु ताडने।

हैं कि वेद बहुपत्नीत्व के समर्थक नहीं हैं। उदाहरणार्थ जर्मन विद्वान् त्सिमर[1] का विचार है कि ऋग्वेद के समय तक बहुपत्नीत्व की प्रथा समाप्त हो चली थी और उसके स्थान पर एकपत्नीत्व की प्रथा आरम्भ हो गयी थी।

ऊपर ऋग् और अथर्व के जिन दो सूक्तों का उल्लेख किया गया है, वे दोनों सूक्त शब्दों के तथा मन्त्र-क्रम के कुछ सामान्य परिवर्तन के साथ दोनों वेदों में एक-से ही हैं, यद्यपि ऋषि और देवता में अन्तर है। ऋग्वेद में ऋषि इन्द्राणी है और देवता सपत्नीबाधन उपनिषत्, किन्तु अथर्ववेद में ऋषि अथर्वा है और देवता वनस्पति। ऋग्वेद में इस सूक्त को उपनिषत् कहना इस बात का ज्ञापक है कि इसमें आध्यात्मिक रहस्य का वर्णन हुआ है। तो भी इस विस्तार में न जाकर सपत्नियों (सौतों) के निवारण-पक्ष में ही हम सूक्तों का आशय देखते हैं। दोनों सूक्तों में यह कहीं नहीं कहा कि एक पत्नी की अनेक सौतें हो चुकी हैं, और उन वर्तमान सब सौतों को नष्ट करके कोई एक पत्नी स्वयं पति की कृपापात्र बनना चाहती है। असल में सौतें विद्यमान नहीं हैं; पत्नी को यह आशंका है कि यदि मुझसे सन्तान न हुई तो कहीं पति दूसरा विवाह करके सौत को न ले आयें। इसलिए वह कह रही है कि मैं अमुक ओषधि को खोदकर लाती हूँ तथा उसका सेवन करती हूँ, जिससे मैं सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो सकूँ तथा घर में सपत्नी न आने पावे। अथर्व-सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है :

इमां खनाम्योषधिं, वीरुधां बलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधते, यया संविन्दते पतिम्॥

अर्थात् मैं इस ओषधि को खोदती हूँ, जो सन्तानोत्पादन का सामर्थ्य देनेवाली ओषधियों में सबसे अधिक बलवती है, जिसके प्रयोग से कोई नारी सौत आने को रोक सकती है तथा जिसके प्रभाव से वह पति को जीत लेती है। सायण ने ऋग् और अथर्व दोनों में ही इन सूक्तों की व्याख्या में आपस्तम्ब-गृह्यसूत्र तथा कौशिक सूत्र से सौत को मारने के टोटके उद्धृत किये हैं तथा ओषधि का नाम पाठा लिखा है। ये टोटके तथा सायण की तदनुकूल व्याख्या ही भ्रम उत्पन्न करने में कारण बने हैं।

ऋग्वेद में एक और सूक्त (१०।१५९) है, जिसके अन्तिम दो मन्त्रों को सौतों पर विजय पाने के रूप में व्याख्यात किया जाता है। इसमें शची या इन्द्राणी आत्म-परिचय दे रही है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (९।९) में इसे भी विद्यमान सौतों को मारने की क्रिया में विनियुक्त किया है, जिसे सायण ने सूक्त-व्याख्या के आरम्भ में उद्धृत भी किया है। शची का अर्थ निघण्टु के अनुसार 'कर्म' है, एवं कर्मवती नारी ही शची है। 'इन्द्राणी' शब्द से उसका वीरांगना होना सूचित होता है। इन्द्र

१. द्रष्टव्य : वैदिक इण्डेक्स में पति-पत्नी शब्द।

वीर पुरुष है, उसकी पत्नी इन्द्राणी कहलाती है। सारे सूक्त में उस वीरांगना के वीरता-भरे उद्‌गार हैं। अन्तिम मन्त्र इस प्रकार है:

समजैषम् इमा अहं, सपत्नीरभिभूवरी।
यथाहम् अस्य वीरस्य, विराजानि जनस्य च॥

इसमें 'सपत्नी' शब्द अवश्य आया है, जिसका एक अर्थ सौत भी होता है। परन्तु यहाँ 'सपत्नी' का अर्थ शत्रु-सेना है। वीरांगना कह रही है कि मैं पराजेत्री हूँ, मैंने इन सब शत्रु-सेनाओं को जीत लिया है, जिससे मैं अपने वीर पति की तथा जन-साधारण की दृष्टि में विशेष तेजस्विनी गिनी जाऊँ। मन्त्र का सौत-परक अर्थ संगत भी नहीं है, क्योंकि इन्द्राणी की कोई सौत भी थी ऐसा वर्णन वेदों में कहीं नहीं आता। और फिर सौत हो भी तो उसे मार डालने में वीरता की क्या बात है, वह तो एक जघन्य कार्य है।

कुछ लोग वेदों में बहुपत्नीत्व की पुष्टि के लिए यजुर्वेद २३वें अध्याय के मन्त्र २४ से ३१ तक की ओर संकेत करते हैं, जिनमें महीधर की व्याख्या के अनुसार राजा की चार पत्नियाँ महिषी, वावाता, परिवृक्ता और पालागली क्रमशः ब्रह्मा, उद्‌गाता, होता और क्षत्ता नामक ऋत्विजों से हास-परिहास करती हैं। पर वस्तुतः मन्त्रों में इन पत्नियों का कहीं नाम नहीं है। यह व्याख्याकारों की अपनी कपोल-कल्पना है। वास्तविक अर्थों के परिज्ञान के लिए उक्त मन्त्रों पर स्वामी दयानन्द का भाष्य देखना चाहिए।

वेद की दृष्टि में एकाधिक पत्नियों का होना कैसा विकट है यह निम्नलिखित उपमा से सूचित होता है—उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानो अन्तर्योनेव चरति द्विजानिः (ऋग् १०।१०१।११) अर्थात् रथ में दोनों धुरों के बीच में जुता हुआ, कष्ट से हिनहिनाता हुआ घोड़ा ऐसे चल रहा है, जैसे घर में दो पत्नियों वाला पुरुष दोनों ओर से खींचा जाता हुआ, कष्ट में वकझक करता हुआ दिन व्यतीत करता है। एक और प्रकरण देखिए। कूप-पतित त्रित ऋषि कह रहा है कि ये कुएँ में चारों ओर लगी ईंटें मुझे ऐसे संतप्त कर रही हैं, जैसे सौतें पति को संतप्त करती हैं—सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः (ऋग् १।१०५।८, १०।३३।२)। एक और मन्त्र है—जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः[1] (ऋग् ७।२६।३), अर्थात् इन्द्र ने समस्त शत्रु-पुरियों को ऐसे ही मिटा डाला, जैसे

---

१. 'वैदिक इंडैक्स' में मैकडानल ने यह विचार व्यक्त किया है कि वेदकालीन भारतीय एकाधिक पत्नियाँ रख सकते थे। इसके समर्थन में टिप्पणी में जिन मन्त्रों का पता दिया है, उनमें यह मन्त्र भी है (द्रष्टव्य : 'पति-पत्नी' शब्द का विवरण)। पर वस्तुतः इस मन्त्र को एक पति की अनेक पत्नियाँ अभीष्ट नहीं हैं, यह स्पष्ट है।

कई पत्नियों का समान पति उन पत्नियों को बर्बाद कर देता है। वेद इन उपमाओं द्वारा यह सूचित करता है कि एकाधिक पत्नियों से विवाह करने में न पति को सुख मिल पाता है न ही पत्नियों को। इस प्रकार परीक्षा से यह स्पष्ट है कि वेद बहुपत्नीत्व के समर्थक नहीं हैं।

बहुभर्तृत्व-प्रथा

कुछ वेदमन्त्रों में नारी या पत्नी का वाचक शब्द एकवचनान्त प्रयुक्त हुआ है तथा पुरुषवाचक शब्द बहुवचनान्त है यथा—**आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणुष्व** (अथर्व १४।१।६१), अर्थात् हे सूर्या, तू अमृतमय सोम-लोक में जा और विवाह को पतियों के लिए सुखकारी बना। यहाँ वधू अकेली सूर्या है, किन्तु पति शब्द में बहुवचन है। इसीप्रकार '**आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजम् अस्याम्** (अथर्व १४।२।१४), अर्थात् यह उर्वरा नारी आयी है, हे पुरुषो, इसमें बीजारोपण करो। यहाँ भी नारी एक है तथा बीजारोपण करनेवाले पुरुष अनेक हैं।

वस्तुतः प्राकृतिक सोम (चन्द्रमा) और सूर्या (सूर्यप्रभा) के विवाह के प्रतीक को लेकर अथर्ववेद १४ श० काण्ड के दोनों सूक्तों में विवाह का वर्णन है। प्रथम मन्त्रांश का आशय यह होगा कि हे सूर्या, तू अमृत के लोक सोम को प्राप्त हो और अपने विवाह को अन्य पतियों के लिए भी सुखकर बना अर्थात् तेरे विवाह के अनुरूप अन्य पति भी योग्य वधुओं को प्राप्त करते रहें। द्वितीय मन्त्रांश का अभिप्राय यह समझना चाहिए कि हे पुरुषो! तुममें से प्रत्येक को अपनी-अपनी नारी (पत्नी) प्राप्त हुई है, उसमें बीजारोपण करो। यह भी द्रष्टव्य है कि इन मन्त्रों से पूर्ववर्ती तथा पश्चाद्वर्ती सब मन्त्रों में पति के लिए एकवचन ही प्रयुक्त हुआ है। यदि एक नारी अनेक पुरुषों को दी जा रही होती तो प्रारम्भ से अन्त तक 'पति' के लिए सर्वत्र बहुवचन का ही प्रयोग होना चाहिए था।

मैकडॉनल ने भी 'वैदिक इंडैक्स' में 'पति-पत्नी' शब्द के विवरण में अपना यह मत व्यक्त किया है कि बहुभर्तृत्व की प्रथा वैदिक नहीं है। उसने वेबर का यह दृष्टिकोण भी दिया है कि पतियों में बहुवचन का प्रयोग केवल उनकी ऐश्वर्या-भिव्यक्ति के लिए है।

विधवा की स्थिति

वेद में विधवा के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण प्रदर्शित किया गया है। पति के मृत हो जाने पर उसके पास बैठकर या उसके ऊपर गिरकर उसका विलाप करना स्वाभाविक है। ऐसे समय पतिगृह का देवर आदि कोई व्यक्ति उसे सम्बोधन करता हुआ कहता है कि यहाँ से उठो, जीवित जनों के बीच में आओ,

धीरज धारण करो और इस पति से तुम्हारी जो सन्तान है उसे देखकर अपना मन बहलाओ। यदि विधवा की आयु विवाह योग्य है तो उसके पुनर्विवाह की भी स्वीकृति वेद देता है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद, काण्ड १८ के तीन मन्त्र हम यहाँ दे रहे हैं। प्रथम मन्त्र में मृत पुरुष के प्रति कहा जा रहा है कि पूर्वकाल से चले आ रहे नारी-धर्म के अनुसार तेरी पत्नी को हम पतिगृह में ही रखेंगे, अतः तू अपनी सन्तान और सब सम्पत्ति इसे प्रदान कर। यद्यपि जिसका प्राणान्त हो चुका है वह अब अपने हाथ से कुछ भी प्रदान नहीं कर सकता, तो भी यह कहने की एक शैली है। अभिप्राय यह है कि तेरी सन्तान और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी यही होगी :

इयं नारी पतिलोकं वृणाना, निपद्यत उप त्वा मर्त्यं प्रेतम्।
धर्मं पुराणम् अनुपालयन्ती, तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१॥

(मर्त्य) हे मरणधर्मा पुरुष, (पुराणं धर्मम् अनुपालयन्ती) पुरातन धर्म का अनुपालन करती हुई (पतिलोकं[1] वृणाना) रहने के लिए पतिगृह को ही पसन्द करती हुई (इयं नारी) यह नारी, तेरी पत्नी (प्रेतं त्वा) तुझ मृत के (उप)समीप (नि पद्यते) नीचे भूमि पर बैठी हुई है। (तस्यै) उसे (प्रजां) संतान (द्रविणं च) और सम्पत्ति (इह) यहाँ (धेहि) सौंप।

इस मन्त्र से यह ध्वनि निकलती है कि पति की मृत्यु के पश्चात् यदि पत्नी पतिगृह में ही रहती है, अर्थात् उसी घर में देवर के साथ उसका विवाह हो जाता है या बिना विवाह किये उसी घर में जीवन व्यतीत करती है तो पति की सन्तान तथा उसकी सम्पत्ति की वह अधिकारिणी होती है। किन्तु यदि वह अन्यत्र विवाह कर लेती है तो पूर्वपति की सन्तान और सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसे नहीं मिलता।

सायण के समय विधवा के सती होने की प्रथा प्रचलित थी। अतः उससे प्रभावित होकर उसने इस मन्त्र का सहमरण-परक अर्थ किया है, जो हास्यास्पद प्रतीत होता है। सायण का अर्थ इस प्रकार है—"स्मृति, पुराण आदि में प्रसिद्ध सहमरण-रूप धर्म का परिपालन करती हुई यह नारी पतिलोक, को अर्थात् जिस लोक में पति गया है उस स्वर्गलोक को, संभजन करना चाहती हुई तुझ मृत के पास पहुँच रही है। अगले जन्म में तू इसे पुत्रपौत्रादि प्रजा और धन प्रदान करना।" पुराण-धर्म के प्रतिपादन के लिए उसने एक स्मृति-वचन भी दिया है, जिसका भाव है कि जो नारी पति के साथ अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है वह पति

---

१. पतिलोक शब्द वेद में पतिगृह के लिए, तथा पितृलोक शब्द मायके के लिए प्रयुक्त हुआ है। द्रष्टव्य : अथर्व १४।१।६४, १४।२।५२

का उद्धार कर देती है।[1] परन्तु वेदों के बाद लिखे गये स्मृति-पुराणादि का हवाला वेद कैसे दे सकता है, अतः यहाँ पुराण-धर्म का अभिप्राय है अनादि काल से चला आ रहा शिष्टजनसम्मत धर्म। फिर सायण का यह अर्थ उसी के द्वितीय मन्त्र के अर्थ से भी विरुद्ध पड़ता है, जिसमें नारी को मृत पति के पास से उठकर जीव-लोक में आने के लिए कहा गया है। अगले जन्म में पति-पत्नी को संतान और धन कैसे देगा, इसका समाधान सायण यह करते हैं कि सहमरण के प्रभाव से जन्मान्तर में भी पत्नी को वही पति मिलेगा। यह भी एक क्लिष्ट कल्पना है।

द्वितीय मन्त्र में पत्नी को मृत पति के पास से उठने के लिए कहा जा रहा है :

उदीर्ष्व[2] नार्यभि जीवलोकं, गतासुम् एतम् उप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं, पत्युर्जनित्वम् अभि सं बभूथ ॥२॥

(नारि) हे नारी, तू (गतासुम् एतम्) इस निष्प्राण पति के (उपप्र) पास (शेषे) पड़ी हुई है। (एहि) आ, (जीवलोकम् अभि) जीवितों के लोक में आने के लिए (उदीर्ष्व) उठ। (तव हस्तग्राभस्य) तेरा पाणिग्रहण करनेवाले, तथा (दधिषोः) तेरा धारण-पोषण करनेवाले (पत्युः) पति की (इदं जनित्वम्) यह सन्तान (अभि संबभूथ) तू पा चुकी है [इसी के पालन-पोषण में मन लगा][3]।

तृतीय मन्त्र उस मृतपतिका (विधवा) के विषय में है जो अभी युवति है तथा जिसने सम्बन्धी-जनों के आग्रह पर दूसरा विवाह करना स्वीकार कर लिया है :

अपश्यं युवतिं नीयमानां, जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत्, प्राक्तो अपाचीम् अनयं तदेनाम् ॥३॥

मैंने (युवतिं) विधवा युवति को (जीवां) जीवित, (मृतेभ्यः नीयमानाम्) मृतों के बीच से अर्थात् श्मशान-भूमि से ले जाई जाती हुई, तथा (परिणीयमानाम्) पुनर्विवाह की जाती हुई (अपश्यम्) देखा है। (यत्) क्योंकि, यह (अन्धेन तमसा) पतिविरह-जन्य दुःखरूप घोर अन्धकार से (प्रावृता आसीत्) प्रावृत थी, (तत्) इस कारण (एनाम्) इसे (प्राक्तः) पूर्वपत्नीत्व से हटाकर (अपाचीम्) दूसरा पत्नीत्व (अनयम्) मैंने प्राप्त करा दिया है।[4]

---

१. भर्तारम् उद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्।
व्यालग्राही यथा सर्पं बलाद् उद्धरेत विलात् ॥

२. यह मन्त्र ऋग् १०।१८।८ में भी है, वहाँ 'दिधिषोः' पाठ है।

३. इस मन्त्र का सायणकृत अर्थ भी यही है। मन्त्र की उत्थानिका में वह लिखता है कि सती होने के लिए मृत पति के पास लेटी हुई पत्नी यदि बाद में जीवित रहने की इच्छा करने लगे तो उसे यह मन्त्र बोलकर उठाये।

४. सायण ने यह मन्त्र गाय द्वारा मृत पुरुष की परिक्रमा करने में घटाया है, जो गाय प्रेत को स्वर्ग पहुँचायेगी।

मन्त्र का पूर्वार्ध पुनर्विवाह के प्रत्यक्षदर्शी की ओर से कहा गया है तथा उत्तरार्ध पुनर्विवाह करवानेवाले की ओर से। जिसने पुनर्विवाह की व्यवस्था की है वह कह रहा है कि इसके पतिविरह के दुःख को दूर करने के लिए मैंने इसका पुनर्विवाह करा दिया है। यहाँ युवति शब्द द्रष्टव्य है। यदि विधवा नारी युवति है तो उसका दूसरा विवाह हो जाना ही अच्छा है, यह इससे ध्वनित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद विधवाओं के सुख-सुविधापूर्ण तथा सम्मानित जीवन-यापन के लिए सतर्क है तथा वे चाहें तो उन्हें पुनर्विवाह की भी अनुमति देता है। सती-प्रथा या सह-मरण का समर्थन किसी भी वेद में नहीं है। 'वैदिक इंडैक्स' में पति-पत्नी शब्द के विवरण में मैकडानल लिखते हैं कि अथर्ववेद में सती-प्रथा है, किन्तु ऋग्वेद में नहीं है, प्रत्युत उसका देवर[1] के साथ विवाह होना वर्णित है। अथर्ववेद में सती-प्रथा का होना उन्होंने केवल ऊपर उद्धृत एक मन्त्र (१८।३।१) के आधार पर माना है, जिसका सायण ने सती-प्रथापरक अर्थ किया है, जिसका खण्डन हम अभी कर चुके हैं। मध्यकाल में बंगाल के कुछ पण्डितों ने **'आरोहन्तु जनयो योनिम् अग्रे'** (ऋग् १०।१८।७) मन्त्र में 'अग्रे' के स्थान पर 'अग्ने:' पढ़कर सती-प्रथा को वैदिक सिद्ध करना चाहा, परन्तु यह उनका छल ही था, क्योंकि वास्तविक पाठ 'अग्रे' ही है। मन्त्र का आशय है कि गृह-प्रवेश में पत्नियाँ आगे-आगे चलें। 'अग्ने:' पाठ प्रचारित करके वे यह अर्थ करने लगे कि पत्नियाँ चिता की अग्नि में आरोहण करें।

दासी-प्रथा

कुछ आलोचकों का आक्षेप है कि वेदों में दासी-प्रथा का भी उल्लेख आता है। ऋग्वेद में राजा लोग अपने परिजनों और पुरोहितों को दासियों से भरे अनेक रथ आदि प्रदान कर देते हैं, यथा—राजा स्वनय कक्षीवान् को वधुओं से भरे दस रथ देता है। पुरुकुत्स का पुत्र राजा त्रसदस्यु सोभरि ऋषि को ५० वधुओं का दान करता है।

वस्तुस्थिति यह है कि ऋग्वेद में कई राजाओं की दान-स्तुतियाँ आती हैं। कात्यायन ने अपनी सर्वानुक्रमणी में ऐसी २२ दान-स्तुतियों का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक पक्षवाले इन राजाओं को ऐतिहासिक व्यक्ति-विशेष मानते हैं, परन्तु यौगिक पक्ष के अनुसार ये ऐतिहासिक नाम न होकर गुणवाची नाम हैं। राजा किन गुणोंवाले हों तथा वे सत्पात्रों को कैसा-कैसा दान करें, यह शिक्षा इन दान-

---

१. को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ (ऋग् १०।४०।२)।" को वां शयने विधवेव देवरम् ? देवरः कस्माद् ? द्वितीयो वर उच्यते (निरु० ३।१४)

स्तुतियों से प्राप्त होती है। पूर्वोक्त दोनों प्रसंगों पर हम मन्त्र देते हुए विचार करते हैं:

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ताः, वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः।
षष्टिः सहस्रम् अनु गव्यम् आगात्, सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥
ऋग् १।१२६।३

(स्व-नयेन दत्ताः) राजा स्वनय से दिये हुए, **(वधूमन्तः)** वधू-युक्त **(दश)** दस **(श्यावाः)** रंग-विरंगे **(रथासः)** रथ **(मा उप अस्थुः)** मेरे समीप उपस्थित हो गये। **(षष्टिः सहस्रम्)** एक हजार साठ **(गव्यम्)** गौओं का समूह **(अनु आगात्)** उसके साथ प्राप्त हुआ। ये सब वस्तुएँ **(कक्षीवान्)** मुझ कक्षीवान् ने **(अह्नाम् अभिपित्वे)** शुभ दिनों के आने पर **(सनत्)** प्राप्त कीं।

अदान् मे पौरुकुत्स्यः, पञ्चाशतं त्रसदस्युर् वधूनाम्।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥ ऋग् ८।१९।३६

(मंहिष्ठः) अतिशय दानी, **(अर्यः)** प्रजाओं के स्वामी, **(सत्पतिः)** श्रेष्ठों के रक्षक **(पौरुकुत्स्यः त्रसदस्युः)** पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु राजा ने **(मे)** मुझे **(वधूनां पञ्चाशतम्)** पचास वधुएँ **(अदात्)** प्रदान कीं।

प्रथम उदाहरण में राजा 'स्वनय' है। 'स्वनय'[1] का अर्थ है अपनी विशेष दान आदि-की नीति से सम्पन्न। दान का ग्रहीता 'कक्षीवान्' है जिसका अर्थ है छात्रों की कक्षाओं को पढ़ानेवाला आचार्य। दान में मिले हैं दस रथ, जो वधूमान् हैं। एक रथ में एक वधू बैठीं हो, शेष रथ खाली हों या अन्य सामान से भरे हों, तो भी उनको 'वधूमान् दस रथ' कहा जायेगा, जैसे एक वधू साथ होने पर वराती वधू-मान् कहलाते हैं। पर हम मान लेतेहैं कि दसों रथों में वधुएँ बैठी हैं। एक-एक रथ में कम-से-कम पाँच और अधिक-से-अधिक दस भी बैठी हों तो पचास या सौ हो जाती हैं। दूसरी वस्तु दान में मिली है एक हजार साठ गो-समूह। एक-एक समूह में तीन-तीन भी गौएँ हों तो कुल गौएँ हों जाती हैं तीन हजार कए सौ अस्सी। ये सब वस्तुएँ कक्षीवान् आचार्य को नीतिवित् राजा से दान में मिली हैं। दूसरे उदाहरण में राजा है 'पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु'। जो बहुत-से वज्रादि शस्त्रास्त्रों का वेत्ता है, उसकी सन्तान पौरुकुत्स्य कहलाती है।[2] 'त्रसदस्यु' वह वीर है, जिससे दस्युजन भयभीत हों।[3] ग्रहीता 'सोभरि'[4] शिष्यों का साधु प्रकार से भरण-पोषण

---

१. स्वः स्वकीयः नयः विशिष्टा दानादिनीतिर्यस्य स स्वनयः।
२. पौरुकुत्स्यस्य बहुवज्रादिशस्त्रास्त्रविदोऽपत्यस्य (द० भा० ऋग् ५।३३।८)। पुरु बहु (निघं ३।१), कुत्सः वज्रः (निघं २।२०)
३. त्रसदस्युः त्रस्यन्ति दस्यवो यस्मात् सः (द० भा० ऋग् ४।३८।१)
४. सुष्ठु बिभर्ति शिष्यान् इति सुभरिः, स एव सोभरिः।

करनेवाला आचार्य है। दान में मिली हैं पचास वधुएँ।

अब यह सोचने की बात है कि आचार्य इतनी सारी वधुओं का और इतनी अधिक गौओं का क्या करेगा ? असल में राजा ने आचार्य के स्नातक शिष्यों का विवाह किया है और उन वरों के लिए तथा गुरुकुल की गोशाला के लिए गौएँ दी हैं। यह वैसा ही भाषा-प्रयोग है, जैसे कहा जाय कि 'जनक ने दशरथ को चार वधुएँ दीं'। क्रिया में भूतकाल का प्रयोग कथानक का रूप देने के लिए किया गया है। अतः इस प्रकार के वर्णनों से यह उद्भावना करना कि दासी के रूप में अनेक वधुएँ दी जाती थीं, न्याय्य नहीं है।

नारी का यज्ञ में अधिकार

वेद के अनुसार नारी का यज्ञ में अधिकार होना वस्तुतः विवाद का विषय नहीं है, अपितु विद्वत्सम्प्रदाय का यह प्रायः सर्वसम्मत विचार है। तो भी मध्यकाल के कतिपय अवेदज्ञ पण्डितों ने नारी को वेदों के अध्ययन और यज्ञ से वंचित कर दिया तथा अपना यह कार्य वेदानुमोदित ठहराया। याज्ञिकों में कोई-कोई सम्प्रदाय नारी का स्थान यज्ञवेदि से बाहर है, ऐसा कहने लगे[1], जबकि याज्ञवल्क्य ने यह उद्घोषित किया था कि बिना पत्नी के पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं है।[2] मनुस्मृति तक में मिलावट कर दी गयी और इस आशय का श्लोक प्रक्षिप्त कर दिया गया कि कन्या और युवति अग्निहोत्र की होता नहीं बन सकतीं।[3] मध्यकालीन साहित्य में क्योंकि नारी के यज्ञाधिकार के सम्बन्ध में अधिकतर विरोधी विचार मिलते हैं, इस विषय में वेद की स्थिति स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। नारी-यज्ञ के पक्ष में हम प्रथम उन वैदिक प्रमाणों को लेंगे, जिनमें सायण, उव्वट एवं महीधर भी नारी का यज्ञ में अधिकार वर्णित मानते हैं।

ऋग् १।१४६।३ में ऐसी दो धेनुओं का वर्णन है, जो दोनों एक ही बछड़े की ओर दौड़ती हैं—**समानं वत्सम् अभि संचरन्ती विष्वग् धेनू विचरतः सुमेके।** इसकी व्याख्या में सायण लिखते हैं कि यजमान और उसकी पत्नी ही दो धेनुएँ हैं और बछड़ा यज्ञाग्नि है।[4] ऋग् ५।२८।१[5] का सायण ने यह अर्थ किया है—

---

१. अयज्ञिया वै पत्न्यो बहिर्वेदिहिताः। शां० ब्रा० २७।४

२. अयज्ञियो वैष योऽपत्नीकः। शां० ब्रा० ३।३।३।१

३. न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा॥ मनु ११।३६

४. समानम् एकमेव वत्सं वत्सस्थानीयं पुत्रवद् हर्षहेतुम् अग्निम् अभिमुखं संचरन्ती संचरन्त्यौ द्वे धेनू अग्निहितकरणेन प्रीणयन्त्यौ पत्नीयजमानलक्षणौ धेनू विष्वग् विचरतः संचरतः—सायण

५. समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसम् उर्विया विभाति।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर् देवाँ ईडाना हविषा घृताची॥

"अग्नि प्रदीप्ति हो गइ है, आकाश में तेज फैल रहा है, अग्नि उषा के अभिमुख हो विस्तीर्ण रूप से भासित हो रही है। ऐसे समय स्तोत्रों से इन्द्रादि देवों की स्तुति करती हुई, पुरोडाश आदि हवि से युक्त घृतभरी स्रुवा को साथ लेकर विश्ववारा (समस्त पाप-रूप शत्रुओं की वारयित्री इस नाम की नारी) प्राङ्मुख होकर अग्नि में आहुति देने के लिए उसके पास पहुँचती है।"[1] ऋग् ८।३१।५।८[2] में यज्ञ की स्तुति करते हुए कहा गया है कि जो पति-पत्नी समान मनवाले होकर यज्ञ में सोम-रसको अभिषुत करते हैं, उसे गोदुग्ध के साथ मिलाते हैं, हवि के योग्य अन्नादि को एकत्र करते हैं, यज्ञ में स्थित हो देवों को उनका भाग देते हैं, उन्हें अन्न, पुत्र, हिरण्य आदि की कमी नहीं रहती। सायण ने भी इन मन्त्रों का ऐसा ही अर्थ किया है। ऋग् १०।११४।३[3] में एक चार जूड़ोंवाली सुन्दर युवति की चर्चा है, जिसके ऊपर वर्षा करने वाले दो सुपर्ण बैठे हुए हैं और जहाँ सब देव अपना-अपना भाग प्राप्त करते हैं। सायण ने इसकी एक व्याख्या यह की है कि यह सुन्दर युवति अलंकृत यज्ञ-वेदि है, जिसे चतुष्कोण होने के कारण चार जूडों वाली कहा गया है और इसपर बैठे हुए दो सुपर्ण याज्ञिक पति-पत्नी हैं, जिनके आहुति देने से सब देवों को उनका भाग प्राप्त होता है।[4] ऋग् १०।८५।४७ 'समञ्जन्तु विश्वे देवाः' आदि मन्त्र को विवाह-यज्ञ में वर-वधू दोनों उच्चारण करते हुए एक-दूसरे का हृदय-स्पर्श करते हैं। सायण ने भी इस मन्त्र के विषय में आश्व० गृह्यसूत्र का प्रमाण देते हुए लिखा है कि यह ऋचा वर के दधि-प्राशन में अथवा वर-वधू के हृदय-स्पर्श में विनियुक्त है।

---

१. नमोभिः स्तोत्रैः देवान् इन्द्रादीन् ईडाना स्तुवती हविषा पुरोडाशादिलक्षणेन युक्तया घृताची घृताच्या स्रुचा सहिता विश्ववारा सर्वमपि पापरूपं शत्रुं वारयित्री एतन्नामिका प्राची प्राङ्मुखी सती एति, एवं भूतम् अग्निं प्रति गच्छति"—सायण

हमारे पक्ष में विश्ववारा नारी का नाम नहीं है, प्रत्युत यौगिक अर्थ मात्र अभिप्रेत है।

२. या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः। देवासो नित्ययाशिरा॥
प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यंचा बर्हिराशाते। न ता वाजेषु वायतः॥ आदि

३. चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुः यत्र देवा दधिरे भागधेयम्॥

४. "चतुष्कपर्दा चतुष्कोणा युवतिः स्त्रीरूपा सुपेशाः शोभनालंकारा घृतप्रतीका घृतप्रमुखहविष्का एतादृशी वेदिः···तस्यां वेद्यां वृषणा वृषणौ हविषां वर्षितारौ सुपर्णा सुपतनौ जायापती यजमानब्राह्मणौ वा निषेदतुः निषण्णौ भवतः"—सायण

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के अन्य कई प्रसंग भी यज्ञ में भी नारी का अधिकार सिद्ध करते हैं, यद्यपि सायण ने उनका भिन्न आशय ग्रहण किया है। ऋग् १।७२।५ में कहा गया है कि विद्वान् लोग पत्नीसहित यज्ञ में बैठते हैं और नमस्करणीय को नमस्कार करते हैं।[1]—ऋग् २।६।५ में कहा है कि यदि यज्ञ करती हुई माता के पास घृत लेकर उसकी बहिन भी आ जाती है, तो अध्वर्यु ऐसे ही प्रमुदित हो जाता है जैसे वर्षा होने पर जौ की खेती लहलहा उठाती है।[2] ऋग् ५।४४।५ में अग्नि को कहा है कि यज्ञ में पत्नियों से जीवित होकर तू पत्नियों को बढ़ा।[3] ऋग् ७।१।६ में कहा गया है कि हवि से युक्त और घृत से युक्त युवति अग्नि के समीप आती है। ऋग् ३।२६।३ में अग्नि के लिए वर्णन है कि क्रन्दन करते हुए घोड़े के समान अग्नि स्तोताओं तथा उनकी पत्नियों से प्रदीप्त किया जाता है।[4]

अब यजुर्वेद पर आते हैं। उव्वट और महीधर ने वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता का भाष्य कर्मकाण्ड-परक किया है तथा उसमें प्रायः कात्यायन श्रौतसूत्र का अनुसरण किया है। तदनुसार 'आधत्त पितरो गर्भम्' (२।३३) मन्त्र पढ़कर पुत्र की कामनावाली पत्नी यज्ञ में भात के मध्यम पिण्ड का भक्षण करती है। "प्रघासिनो हवामहे' (३।४४) आदि मन्त्र प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् यजमान पत्नी से पढ़वाता है। 'यद् ग्रामे यदरण्ये' (३।४५) आदि मन्त्र पढ़कर पत्नी या पति-पत्नी दोनों करम्भ पात्रों को दक्षिणाग्नि में होम करते हैं। 'अक्रन् कर्म कर्मकृतः' (३।४७) आदि मन्त्र भी पत्नी से पढ़वाया जाता है। 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्' (३।६०) आदि मन्त्र कुमारी द्वारा पढ़ा जाता है, जिसमें पति-प्राप्ति की प्रार्थना है। 'युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः' (११।५) में द्विवचनान्त 'वाम्' पद से यजमान और यजमान-पत्नी का ग्रहण किया गया है। तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्-

---

१. संजानाना उपसीदन् अभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्। सायण के अनुसार पत्नीवाले विद्वान् लोग नहीं, अपितु इन्द्रादि देवता हैं।

२. "यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित। तासाम् अध्वर्युरागतौ यवो वृष्टवी मोदते।" सायण माता से यज्ञवेदिरूप भूमि और 'स्वसा' से उसकी जुहूरूप बहिन का आशय लेते हैं।

३. "वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे।" सायण ने पत्नी का अर्थ किया है ओषधियाँ या ज्वालाएँ—पातयित्रीः ओषधीः ज्वाला वा।

४. अश्वो न क्रन्दन् जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर् युगे-युगे।" सायण ने पत्नीवाची 'जनय' का अर्थ घोड़ियाँ किया हैं। जैसे घोड़ियाँ स्तन्य-पान आदि द्वारा घोड़े को पुष्ट करती है, वैसे अग्नि को स्तोता प्रदीप्त करते हैं। पर यदि 'जनयः' का अर्थ घोड़ियाँ लेना भी हो तो श्लेष से घोड़ियाँ तथा पत्नियाँ दोनों अर्थ लेने चाहिएँ।

भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः'(१५।५०)' में कहा गया है कि हम पत्नियों, पुत्रों, भाइयों और सुवर्णादि द्रव्यों के साथ अग्नि का अनुसरण करें।

अथर्ववेद पर दृष्टिपात करें तो वहाँ भी नारी या पत्नी को अग्निहोत्र और यज्ञ करने की प्रेरणा की गयी है। ३।२८।६ में पत्नी को कहा गया है कि तूने उस लोक में पदार्पण किया है जो अग्निहोत्र करनेवालों का लोक है।[1] विशेष रूप से अग्निहोत्र की चर्चा करना इस बात का द्योतक है कि उसे भी इस पतिलोक में आकर अग्निहोत्र करना है। ३।३०।६ में स्पष्ट रूप से परिवार के लोगों को प्रेरणा की गयी है कि तुम मिलकर अग्निहोत्र किया करो।[2] इस सूक्त में ऊपर पत्नी की चर्चा भी आ चुकी है। विवाह सूक्त में स्पष्ट शब्दों में चार स्थलों पर नव-वधू का अग्निहोत्ररूपी कर्त्तव्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। कहा गया है कि तू गृहाश्रम में गार्हपत्य अग्नि की पूजा किया करना(१४।२।१८)[3], मृग-चर्म पर चटाई विछाकर उसपर बैठकर अग्निहोत्र करना (१४।२।२३)[4], मृग-चर्म पर बैठकर अग्निहोत्र करना, क्योंकि अग्नि सब रोगादि राक्षसों को मार देता है(१४।२।२४)[5], सुमंगली होती हुई तू अग्नि के समीप बैठना (१४।२।२५)।[6] इस सब विवेचन से स्पष्ट है कि मध्यकाल में भले ही नारी को यज्ञाधिकार से वंचित करने का प्रयास किया गया हो, किन्तु वेदों में यज्ञ करना उसके कर्त्तव्यों में सम्मिलित है।

उपसंहाररूप में हम कह सकते हैं कि वेद का नारी-जीवन अत्यन्त पवित्र, श्लाघ्य, सुन्दर और गौरवपूर्ण है, उसमें कहीं कालिमा की रेखा तक नहीं है। वेद की नारी अतिशय शिष्ट, साध्वी, विनम्र, शीलवती, प्रकाशवती, लक्ष्मीवती, मेधामयी, श्रद्धामयी, तपोमयी, स्नेहमयी, संकल्पनिष्ठ, व्रतनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, राष्ट्रसेविका होने के साथ-साथ शौर्यवती, वीरप्रसवा, विजेत्री, पापासुरसंहारिणी एवं दैत्यदलविमर्दिनी भी है। इसीलिए वेद ने उसे 'ब्रह्मा'[7] की सर्वोच्च पदवी प्रदान की है।

---

१. यत्रा सुहार्दां सुकृताम् अग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः। तं लोकं यमिन्यभि सं बभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च॥
२. सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यत।
३. स्योनेमम् अग्निं गार्हपत्यं सपर्य।
४. उप स्तृणीहि बल्वजम् अधि चर्मणि रोहिते। तत्रोपविश्य सुप्रजा इमम् अग्निं सपर्यतु॥
५. आ रोह चर्मोपसीद-अग्निम्, एष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
६. सुमंगल्युपसीद-इमम् अग्निम्, संपत्नी प्रति भूषेह देवान्।
७. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। ऋग् ८।३३।१९

३

नारी की स्थिति पर स्वामी दयानन्द के वेदमूलक विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जहाँ अपने समय में भारत में प्रचलित विविध कुरीतियों, अन्ध-विश्वासों तथा मिथ्या धारणाओं के उन्मूलन का बीड़ा उठाया, वहाँ स्त्री-जाति को दयनीय स्थिति से उबारकर समाज में उचित स्थान दिलाने का भी भरसक प्रयास किया। उस समय स्त्रियों की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। स्त्री-शिक्षा का प्रसार नाम को भी नहीं था। स्त्रियों को शिक्षित करना सर्वथा अनावश्यक समझा जाता था। घरों में उनका सम्मान भी नहीं होता था, अपितु वे ताडन की ही अधिकारिणी समझी जाती थीं। बाल-विवाह प्रचलित थे, जिनके परिणाम-स्वरूप अनेक स्त्रियाँ बाल-विधवा हो जाती थीं। विधवाओं का मांगलिक उत्सवों में भाग लेना अच्छा नहीं समझा जाता था, बल्कि भद्र कार्यों में उनका दर्शन तक अशुभ माना जाता था। विधवाएँ या तो मृत पति के साथ 'सती' हो जाती थीं, या जीवनभर कष्ट भोगती रहती थीं और समाज से अपमानित होती रहती थीं। नारियों को वेद पढ़ने के अधिकार से भी वंचित रखा गया था। वे बाहर नहीं निकलती थीं; घर में भी उन्हें पर्दे में रहना पड़ता था। नारी के विदुषी और अध्यापिका बनने की बात कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। स्वामीजी ने नारी के विषय में प्रचलित समाज के इन हीन विचारों को परिवर्तित करने के लिए और समाज में नारियों को उच्च स्थान दिलाने के लिए वेदों को आधार बनाकर अपनी लेखनी और वाणी को प्रवृत्त किया।

बाल-विवाह का निषेध

स्वामीजी ने जब देखा कि छोटी-छोटी बालिकाओं के विवाह हो जाते हैं, तब देश के इस अधःपतन को देखकर उनका हृदय नारी-जाति के प्रति दयार्द्र हो उठा। 'उपदेशमञ्जरी' (पूना-प्रवचन) के १२वें प्रवचन में वे कहते हैं—"यदि इस समय हम लोगों में बाल-विवाह प्रचलित न होता तो विधवाओं की संख्या कभी इतनी न होती और न इतने गर्भपात और इतनी भ्रूणहत्याएँ होतीं।" उस समय

के पण्डित लोग पाराशरी और शीघ्रबोध ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए कहते थे कि आठ वर्ष की कुमारी 'गौरी', नौ वर्ष की 'रोहिणी', दस वर्ष की 'कन्या' और दस वर्ष से ऊपर 'रजस्वला' कहलाती है। आठवें वर्ष विवाह कर देना सबसे अच्छा है, उसके बाद नवें वर्ष और उसके बाद दसवें वर्ष। दसवें वर्ष के पश्चात् जो कन्या को अविवाहित देखते हैं वे माता, पिता और ज्येष्ठ भ्राता नरक में गिरते हैं। स्वामीजी ने इन पण्डितों की भर्त्सना करते हुए कहा कि जिन ग्रन्थों को तुम प्रमाणरूप में प्रस्तुत कर रहे हो उन्हें बने अभी अस्सी वर्ष भी व्यतीत नहीं हुए हैं। उन्होंने मनु तथा वेदों का प्रमाण देकर बताया कि तुम्हारे श्लोक कपोल-कल्पित हैं। मनु ने लिखा है कि कुमारी ऋतुमती होना आरंभ होने के तीन वर्ष पश्चात् विवाह करे—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम्॥ मनु ९।९०

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास तथा संस्कारविधि के विवाह-प्रकरण में स्वामीजी ने कई वेदमन्त्र[1] यह प्रमाणित करने के लिए दिये हैं कि युवा और युवति का ही विवाह होना चाहिए। यथा—

युवा सुवासाः परिवीत आगात्।
स उ श्रेयान् भवति जायमानः॥ ऋग् ३।८।४

अर्थात् यज्ञोपवीतधारी, उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए जो ब्रह्मचारी युवा पुरुष गृहाश्रम में आता है, वह आचार्य से विद्याजन्म प्राप्त करके श्रेष्ठ बना होता है। अभिप्राय यह है कि प्रथम जन्म माता-पिता से होता है, द्वितीय जन्म विद्या पढ़ चुकने के पश्चात् आचार्य से होता है। जो ब्रह्मचर्यपूर्वक आचार्याधीन रहकर विद्या पढ़कर युवा हो जाता है, वही गृहाश्रम में प्रवेश का अधिकारी है। स्वामीजी के अनुसार स्त्री-पुरुष की विवाह-योग्य आयु इस प्रकार है[2]—

स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष
१६ वर्ष	२५ वर्ष	२१ वर्ष	४२ वर्ष
१७ "	३० "	२२ "	४४ "
१८ "	३६ "	२३ "	४६ "
१९ "	३८ "	२४ "	४८ "
२० "	४० "		

१. स० प्र०, समु० ४ में तीन वेदमन्त्र (ऋग् १।१७९।१; ३।८।४; ३।५५।१६) तथा सं० वि० में पाँच वेदमन्त्र (ऋग् २।३५।४—६; ५।३७।३; ५।४१।७) अर्थसहित दिये गये हैं। मन्त्र तथा उनके स्वामीजीकृत अर्थ पाठक वहीं देखें। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में हम वेदमन्त्रों से युवा-युवति का विवाह सिद्ध कर चुके हैं।

२. द्रष्टव्य : स० प्र०, समु० ३; सं० वि०, वेदारम्भ।

स्वामीजी लिखते हैं—"४८वें वर्ष से आगे पुरुष और २४वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिए, परन्तु यह नियम विवाह करनेवाले पुरुष और स्त्रियों का है और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें, परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है।"[1]

स्वामीजी बाल-विवाह की हानि और युवा-विवाह के लाभ बताते हुए लिखते हैं—"सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह-समय उत्तम है।...जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्यविद्याभ्यास अधिक होता है, वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्यविद्याभ्यास-रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है।" "जो ब्रह्मचर्य-धारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये बिना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं, वे स्त्री-पुरुष नष्ट-भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते।"[2]

स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के अतिरिक्त अपने वेदभाष्य में भी अनेक वेदग्रन्थों की व्याख्या में युवा-विवाह पर बल दिया है तथा इसी प्रकार स्त्री-पुरुष और उनके सन्तान सुखी हो सकते हैं और देश समृद्ध हो सकता है ऐसा माना है।[3]

वर-वधू का चुनाव

स्वामी दयानन्द ने देखा कि लड़के-लड़कियों को सर्वथा अनजान रखकर, उन्हें एक-दूसरे को पसन्द कराये बिना और योग्य-अयोग्य की समुचित परीक्षा भी न करके उनके सम्बन्धी जन विवाह निश्चित कर देते हैं, परिणामतः अधिकतर विवाह बेमेल होते हैं। अतः उन्होंने इसके विरोध में भी आवाज उठायी। स० प्र०, समु० ४ में 'विवाह करना माता-पिता के आधीन होना चाहिए व लड़का-लड़की के आधीन?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे लिखते हैं—'लड़का-लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें, तो भी लड़का-लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए, क्योंकि एक-दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं।" लड़के-लड़की की सहमति से जो विवाह होता है उसे स्वामीजी ने स्वयंवर कहा है। परन्तु

---

१. स० प्र०, समु० ३

२. स० प्र०, समु० ४

३. यथा, द० भा० ऋग् १।४५।१; १।११२।१९; १।११३।७; १।११६।१०; ५।२।२।३; यजु २३।३६

परस्पर सहमति का अभिप्राय उनके अनुसार यह नहीं है कि वे केवल एक-दूसरे का रूप-रंग देखकर विवाह का निश्चय कर लें। स्वामीजी इसके लिए पूर्ण सतर्क हैं कि यह चुनाव गुण-कर्म के आधार पर होना चाहिए।

चतुर्थ समुल्लास में ही वे लिखते हैं—"जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता।" "विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए।" "यह गुण-कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या, शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिए।"

वहीं चुनाव में अध्यापक-अध्यापिकाओं के सहयोग के विषय में लिखा है—"जब कन्या व वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिविम्ब अर्थात् जिसको फ़ोटोग्राफ़ कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें। जिस-जिस का रूप मिल जाय उस-उस के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मँगवा के देखें। जब दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव सदृश हों, तब जिस-जिस के साथ जिस-जिस का विवाह होना योग्य समझें उस-उस पुरुष और कन्या का प्रतिविम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ, नहीं तो कन्या के मातापिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता-पिता आदि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिख के एक-दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।"

एक-दूसरे की परीक्षा कराने के सम्बन्ध में संस्कारविधि के विवाह-प्रकरण में लिखते हैं—"जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावें।"

यह दयानन्द-सम्मत स्वयंवर का स्वरूप है। दयानन्द स्वयंवर-रीति से विवाह का इतना अधिक महत्त्व समझते हैं कि अपने वेदभाष्य में भी मन्त्रों के भावार्थ में

अनेक स्थलों पर उन्होंने इसका उल्लेख किया है। यथा—

"जैसी विद्या, गुण, कर्म और स्वभाववाले पुरुष हों उनकी स्त्री भी वैसी ही होनी ठीक हैं, क्योंकि जैसा तुल्य रूप, विद्या, गुण, कर्म स्वभाववालों को सुख का सम्भव होता है वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता। इससे स्त्री अपने समान पुरुष व पुरुष अपने समान स्त्रियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवरविधान से विवाह करके सब कार्यों को सिद्ध करें।" (ऋ० भा० १।२२।११)।

"वेद की आज्ञा से एक-से रूप, स्वभाव और एक-सी विद्या तथा युवावस्था-वाले स्त्री और पुरुषों की परस्पर इच्छा से स्वयंवर-विधान से विवाह होने योग्य है।" (ऋ० भा० १। ३०।१३)

"सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ ब्रह्मचर्य में संस्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उनको ग्रहण करा पूर्ण विद्या वाले, परस्पर प्रसन्न पुत्र व कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें, जिससे जब तक जीवित रहें तब तक आनन्दित रहें।" (ऋ० भा० १।१६७।३)

"जो वधू और वर स्वयंवर विवाह से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं, वे सूर्य और उषा के समान गृहाश्रम को उत्तम आचार से अच्छे प्रकार प्रकाशित कर सर्वदा आनन्दित होते हैं।" (ऋ० भा० ६।६४।६)

"स्त्री और पुरुष विवाह से पहले परस्पर एक-दूसरे की परीक्षा करके अपने समान गुण, कर्म, स्वभाव, रूप, बल, आरोग्य, पुरुषार्थ और विद्या से युक्त होकर स्वयंवर-विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों।" (य० भा० ८।६)।

"हे कुमारियो, तुम ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त करके, युवति होकर अपने अभीष्ट, स्वयं परीक्षित, वरने योग्य पतियों को स्वयं वरो (य० भा० ३४।१०)।"

स्वयंवर विवाह की वैदिकता के सम्बन्ध में हम प्रथम परिच्छेद में विचार कर चुके हैं।

कन्या और वर के विवाहोचित गुण

कैसी कन्या से विवाह करे और कैसी से न करे, इस विषय में मनु ने अध्याय ३, श्लोक ४-१० में कुछ विचार व्यक्त किये हैं। उन श्लोकों को स्वामीजी ने भी स० प्र०, समु० ४ में उद्धृत किया है। उनसे केवल इतना ज्ञात होता है कि कन्या मातृकुल की छह पीढ़ियों में और पिता के गोत्र की नहीं होनी चाहिए। साथ ही उस कुल की भी नहीं होनी चाहिए जिसमें सत्क्रिया एवं वेदाध्ययन आदि न होता हो या जिस कुल में कोई विशेष रोग चला आता हो। पीले वर्ण वाली, अधिकांगी, रोगिणी, अलोमा, बहुलोमा, वाचाल, नदी-वृक्ष-पक्षी-साँप-दास आदि नामोंवाली,

भयंकर नामवाली कन्या से भी विवाह वर्जित किया है। इसके विपरीत सरलांगी, सौम्यनाम्नी, हंसगामिनी, गजगामिनी, पतले लोम, केश, दाँतोंवाली, मृद्वङ्गी कन्या विवाहयोग्य कही गयी है। इनमें जो अनुचित नामोंवाली कन्या को वर्जित किया गया है, वह उत्कृष्ट नाम रखने की प्रेरणा के लिए समझना चाहिए। अन्य सब अनुकूलताएँ हों तो उनका नाम परिवर्तित करके उनसे विवाह किया जा सकता है।

विवाह-योग्य कन्या की विशिष्ट योग्यताएँ स्वामीजी के वेद-भाष्य में उल्लिखित हैं। उनमें से कतिपय स्थल यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:

"हे पुरुषो! जो कन्या अपने सदृश, विदुषी, शुभ गुण-कर्म-स्वभाववाली होवें, वे ही पत्नी होने के लिए स्वीकार करने योग्य हैं (ऋ० भा० ४।५१।३)।"

"हे ब्रह्मचारी जनो! जो ब्रह्मचारिणी, मेघ के सदृश गम्भीर भाषिणी, थोड़ा बोलने वाली, पवित्र और विदुषी होवें, वे ही पहले उत्तम परीक्षा करके विवाहने योग्य हैं (ऋ० भा० ४।५१।२)।"

"हे मनुष्यो! जो शिक्षित, रूप-लावण्य आदि उत्तम गुणों से युक्त, विदुषी, ब्रह्मचारिणी कन्या होवें, उन्हीं को यथायोग्य विवाहो (ऋ० भा० ४।५१।८)।"

"जो कभी द्वेष और द्वेष करनेवाले का संग नहीं करती और सत्यभाषिणी तथा प्रशंसायुक्त है, वही स्त्री श्रेष्ठ है (ऋ० भा० ४।५२।४)।"

"यदि सुन्दर, प्रिय, उत्तम लक्षणों से युक्त, अद्भुत रूपवाली, पतिव्रता स्त्री पुरुष को प्राप्त होवे, तो वह उषा के सदृश कुल को प्रकाशित करती हुई और सन्तानों को उत्तम शिक्षा देती हुई सबको आनन्द देती है (ऋ० भा० ४।१४।३)।"

"हे मनुष्यो! जो उषा के समान वर्तमान, सत्यशास्त्रश्रवणादियुक्त, बलिष्ठ, विचक्षण, धन और ऐश्वर्य को बढ़ानेवाली, रक्षा में तत्पर, विदुषी स्त्रियाँ हों, उनके बीच से अपनी-अपनी प्रिया भार्या को सब ग्रहण करें।"

(ऋ०भा० ६।६५।३)

"जो स्त्री विद्याशिक्षायुक्त वाणी को ग्रहण करती है वह अनादिभूत वेदविद्या को जानने योग्य होती है। वह जिसके साथ विवाह करे उसका अहोभाग्य होता है (ऋ० भा० ६।६१।१)।"

"जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमायुक्त, आकाश के समान अक्षोभ्य और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करनेवाली होती है (य० भा० १४।२२)।"

"जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करनेवाली, क्रूरता आदि दोषों से रहित, बहुत प्रशंसित, दूसरों के भी दोषों का निवारण करनेहारी है, वही घर के कार्यों में योग्य होती है (य० भा० ३५।२१)।"

जैसे वर-पक्ष के लिए कन्या के गुणों का विचार किया जाता है, वैसे ही कन्या-

पक्ष के लिए वर के गुणों का विचार आवश्यक होता है। वर और कन्या अनुरूप गुणोंवाले होने चाहिएँ। इसीलिए स्वामीजी लिखते हैं :

"अति उत्तम विवाह वह है जिसमें तुल्य रूप और स्वभाव युक्त कन्या-वर का सम्बन्ध होवे। परन्तु कन्या से वर का बल और आयु दूना वा डयोढ़ा होना चाहिए (ऋ० भा० १।५६।३)।"

"ब्रह्मचारिणी कन्या प्रसिद्ध कीर्तिवाले, सत्पुरुष, सुशील, उत्तम रूप और गुणों से युक्त, प्रीति करनेवाले को पति रूप से ग्रहण करने की इच्छा करे(ऋ०भा० ५।३२।११)।"

"स्त्री ऋतुगामी, ऊर्ध्वरेता, सुशील, विद्वान्, प्रसिद्ध यशवाले जन को पतित्व के लिए ग्रहण करे (ऋ० भा० ५।३२।१२)।"

"विवाह की कामना करने वाली युवति स्त्री को चाहिए कि जो छल-कपट आदि आचरणों से रहित, सत्य भाव का प्रकाश करनेवाला, एक स्त्रीव्रती, जितेन्द्रिय उद्योगी, धार्मिक, दाता, विद्वान् पुरुष हो उसके साथ विवाह करके आनन्द में रहे (य० भा० ८।२)।"

"जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़कर परस्त्री का सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है, और जो संयमी, अपनी ही स्त्री को चाहनेवाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगेगा। इससे सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें, अन्य का नहीं (य० भा०८।३)।"

पत्नी के कर्त्तव्य

स० प्र०, समु० ४ में स्वामीजी मनु का श्लोक उद्धृत करते हुए पत्नी के कर्तव्य बताते हैं—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥ मनु ५।१५०

"स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई बर्ते। सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे। सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो ओषधिरूप होकर शरीर व आत्मा में रोग को न आने देवें। जो-जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रख के पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर-चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।"

सं० वि० की गृहाश्रमविधि में अथर्ववेद के मन्त्र उद्धृत करते हुए स्वामीजी ने पत्नी के निम्नलिखित कर्तव्य निर्दिष्ट किये हैं—

"हे वरानने ! तू अच्छे मंगलाचरण करने तथा दोष और शोकादि से पृथक

रहनेहारी, गृहकार्यों में चतुर और तत्पर रहकर उत्तम सुखयुक्त हो के पति, श्वशुर और सासु के लिए सुखकर्त्री और स्वयं प्रसन्न हुई इन घरों में सुखपूर्वक प्रवेश कर (अथर्व १४।२।२६)।"

"हे वधू ! तू श्वशुरादि के लिए सुखदाता, पति के लिए सुखदाता और गृहस्थ सम्बन्धियों के लिए सुखदायिनी हो; और इस सब प्रजा के अर्थ सुखप्रद और इनके पोषण के अर्थ तत्पर हो (अथर्व १४ २।२७)।"

स्वामीजी के वेदभाष्य से पत्नियों के निम्नलिखित प्रमुख कर्तव्य ज्ञात होते हैं—

"स्त्रियों को चाहिए कि अपने-अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति, श्रेष्ठ रीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें (ऋ० भा० १।१२३।५)।"

"जो कन्या विद्या को पढ़कर गृहाश्रम को प्राप्त हों वे सत्कार करने योग्यों का सत्कार कर और तिरस्कार करने योग्यों का तिरस्कार कर पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ावें (ऋ० भा० २।१७।७)।"

"हे स्त्रियो ! जैसे प्रातर्वेला सम्पूर्ण प्राणियों को जगाकर कार्यों में प्रवृत्त करती है, वैसे ही पतिव्रता होकर पतियों के साथ अनुकूलता से वर्त प्रशंसित होओ (ऋ० भा० ३।६१।१)।"

"वही स्त्री बहुत सुख को प्राप्त होती है जो विद्या, विनय और उत्तम स्वभाव आदिकों से अपने पति को नित्य प्रसन्न करती है (ऋ० भा० ४।५२।७)।"

"जो स्त्री पति को पुरुषार्थी, धार्मिक, लोभी और कामातुर जानकर दोषों के निवारण और गुणों के ग्रहण करने के लिए प्रेरणा करती है वही पति आदि की कल्याण करनेवाली होती है (ऋ० भा० ५।६१।७)।"

"जैसे प्रभातवेला अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती है, वैसे ही विद्यायुक्त स्त्रियाँ अपने उत्तम स्वभाव से दोषों का निवारण करके उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि से सबकी उत्तम प्रकार रक्षा करें (ऋ० भा० ४।५२।६)।"

"जो स्त्रियाँ विदुषी होकर सत्य, धर्म और उत्तम स्वभाव का स्वीकार करके मेघ के सदृश सुखों की वृष्टि करती हैं वे बड़े सुख को प्राप्त होती हैं।"

(ऋ० भा० ५।६६।५)

"वही प्रशंसित स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करे (ऋ० भा० ५।७६।६)।"

"हे स्त्रियो ! तुम चतुरता से सब पति आदि को सन्तोष देकर, घर के कार्यों को यथावत् अनुष्ठान कर, अति विषयासक्ति को छोड़ और सुन्दर शोभायुक्त होकर सदैव पुरुषार्थ से धर्मयुक्त कामों को सूर्य के समान प्रकाशित करो।"

(ऋ० भा० ६।६४।२)

"घर के काम में कुशल स्त्री को चाहिए कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक-ठीक बढ़ाया करे (य० भा० ११।६२)।"

पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार

स्वामीजी ने वेद व मनुस्मृति के वचन उद्धृत करते हुए गृहस्थों का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया है कि पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार अत्यन्त प्रेममय और मधुर होना चाहिए। सं० वि०, गृहाश्रम विधि में मनु के श्लोक[1] देते हुए वे लिखते हैं—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ मनु ३।६०

"हे गृहस्थो! जिस कुल में भार्या से पति प्रसन्न और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है।"

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ मनु ३।६२

"और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता, तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल-भर अप्रसन्न शोकातुर रहता है; और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है, तब सब कुल आनन्दरूप दीखता है।"

अपने वेदभाष्य में भी स्वामीजी ने इस सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं। उनके कुछ वचन यहाँ दिये जा रहे हैं—

"जैसे रात्रि में नक्षत्र-लोक चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ वर्तते हैं, वैसे विवाह करके स्त्री-पुरुष आपस में वर्ता करें (ऋ० भा० १।५०।२)।"

"जैसे चक्र के समान घूमते हुए रात्रि-दिन परस्पर संयुक्त वर्तते हैं, वैसे विवाहित स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रेम के साथ वर्ता करें (ऋ० भा० १।६२।८)।"

"जैसे विदुषी विद्वानों की पत्नियाँ स्वधर्म-व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं, उसी प्रकार पुरुष अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें (य० भा० ६।३४)।"

"स्त्री-पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्तें कि जिससे उनका परस्पर भय और उद्वेग नष्ट हो, आत्मा का दृढ़ उत्साह, प्रीति, गृहाश्रम-व्यवहार की सिद्धि और ऐश्वर्य बढ़े। वे दोषों तथा दुःखों को दूर कर चन्द्रमा के समान एक-दूसरे के आह्लादक हों (य० भा० ६।३५)।"

"पूर्ण युवा पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उसका

---

१. ये श्लोक व उनके अर्थ स० प्र०, समु० ४ में भी दिये हैं।

अप्रिय कभी न करे। कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे। इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य सँभालें (य० भा० ११।३६)।"

"स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कुछ भी काम न करे (य० भा० १२।६५)।"

"जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे, वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे, जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े (य० भा० १४।१२)।"

पति-पत्नी के सम्मिलित कर्त्तव्य

विवाह के पश्चात् स्त्री-पुरुष को अपने-अपने ब्राह्मणादि वर्ण के अनुसार कर्त्तव्य कर्म करने होते हैं, जिनमें पंच यज्ञ आदि सम्मिलित हैं। यहाँ उस विस्तार में न जाकर स्वामीजी के वेदभाष्य में प्रतिपादित कतिपय कर्त्तव्यों का उल्लेख किया जा रहा है :

"जैसे नदी और समुद्र मिलकर रत्नों को उत्पन्न करते हैं, वैसे स्त्री-पुरुष प्रशस्त सन्तानों को उत्पन्न करें (ऋ० भा० ३।१।७)।"

"जो स्त्री-पुरुष दुःख के बन्धनों को काटकर, दुष्ट आचरण को त्यागकर विद्या की उन्नति करें, वे निरन्तर सुख को प्राप्त होवें (ऋ० भा० ३।३३।१३)।"

"जैसे पुरुष लोग विद्या का अभ्यास करें, वैसे ही स्त्रियाँ भी करके लक्ष्मी-युक्त हों। दोनों स्त्री-पुरुष आलस्य का त्याग करके शिल्प-विषयक सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करें (ऋ० भा० ३।५४।१३)।"

"यदि प्रसन्नता से विवाह किये हुए स्त्री और पुरुष विद्या, बुद्धि और उत्तम वाणी से युक्त होकर इस संसार में गृहाश्रम में स्थित होकर प्रेम से उत्पन्न होने-वाले पुत्रों को उत्पन्न कर, पालन कर और उत्तम शिक्षा से युक्त करके तथा उनका स्वयंवर विवाह कराके उन्हें निवास कराते हैं, तो वे इस गृहाश्रम में मोक्ष के सदृश सुख का अनुभव करते हैं (ऋ० भा० ३।५७।५)।"

"हे स्त्री-पुरुषो! आप लोग यदि रात्रि के चौथे पहर में उठ और आवश्यक कृत्य करके वाहन वा पैरों से सूर्योदय से पहिले शुद्ध वायुवाले देशों में भ्रमण करें तो आप लोगों को रोग कभी न प्राप्त होवें, जिससे बलिष्ठ और दीर्घायु होकर इस गृहाश्रम में बड़े आनन्द को भोगो (ऋ० भा० ४।१४।४)।"

"सदा स्त्री-पुरुष ऋतुगामी होवें, सदा शरीर के आरोग्य और पुष्टि को करें तथा विद्या की उन्नति करके आनन्द की उन्नति करें (ऋ० भा० ५।७५।६)।"

"विवाहित स्त्री-पुरुष प्रातः, मध्याह्न, सायं समयों में दिन-रात कल्याण करने-वाले कर्मों से सुखों को प्राप्त करें, कभी आलस्य मत करें (ऋ० भा० ५।७६।३)।"

"जहाँ स्त्री-पुरुष बुद्धिमान् और पुरुषार्थी होकर सत्कर्मों का आचरण करते

हैं, वहाँ सारी लक्ष्मी विराजमान होती है (ऋ० भा० ७।३६।१)।"

"इस संसार में तुल्य गुण, कर्म, स्वभाववाले स्त्री-पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान और पुरुषार्थी होकर धर्म से ऐश्वर्य को निरन्तर संचित करें।"

(य० भा० २०।५५)

"सदुत्साह बढ़ानेवाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करनेवाली स्त्रियाँ अपनी सहेलियों को तथा गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्ट-मित्र और बन्धुजन आदि को बुलाकर भोजन आदि से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर उपदेश, शास्त्रार्थ तथा विद्या-वाग्-विलास को करें (य० भा० ८।१२)।"

"गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण-कर्मों का धारण, ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा, प्रजापालन, सुपात्रों को दान, दुःखियों का दुःख छुड़ाना, शत्रुओं को जीतना और शरीरात्मबल में प्रवृत्ति आदि निरन्तर धारण करें (य० भा० ८।१७)।"

"गृहस्थों को चाहिए कि अति प्रयत्न के साथ भूगर्भादि विद्याओं को प्राप्त कर, जितेन्द्रिय तथा परोपकारी होकर, उत्तम धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणियों को सुखी करें (य० भा० ८।२१)।"

"इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियमों का सेवन और उत्तम सहाय के बिना किसी मनुष्य से गृहाश्रम नहीं धारा जा सकता। इसके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए इसका पालन सबको बड़े यत्न से करना चाहिए।"

(य० भा० ८।३१)

"विवाहित स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है, वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रखें (य० भा० ११।४०)।"

"विवाह के समय स्त्री और पुरुष व्यभिचार-त्याग की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का संग सर्वथा छोड़, आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़, ऋतुगामी होके, परस्पर प्रीति के साथ पराक्रमी सन्तानों को उत्पन्न करें। व्यभिचार के समान स्त्री या पुरुष के लिए अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दायोग्य कर्म दूसरा कोई भी नहीं है। इसलिए इस व्यभिचार-कर्म को सर्वथा छोड़ और धर्माचरण करनेवाले होके दीर्घायुष्य के सुख को भोगें।"

(य० भा० ११।४६)

"ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़ विवाह किये हुए स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि वे बहुश्रुत हों। सत्यवक्ता, आप्त-जनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती। इसलिए सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य को धारण करें और

मिथ्या को छोड़ देवे (य० भा० १३।५७)।"

"स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रिय आचरण, शास्त्र-श्रवण और ओषधि आदि का सेवन करें और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें (य० भा० १४।८)।"

इन उद्धरणों से पति-पत्नी के निम्न कर्त्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है—श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न कर उनका यथोचित पालन, शिक्षण कर स्वयंवर विवाह कराके उन्हें कार्यक्षेत्र में प्रतिष्ठित करना, दुष्ट आचरण का त्याग, सदाचरण में प्रवृत्ति, विद्या की उन्नति, आलस्य का त्याग, पुरुषार्थ, शिल्प-विषयक उन्नति, प्रातः-भ्रमण आदि आरोग्यकारक उपाय अपनाना, ऋतुगामिता, धर्म से ऐश्वर्योपार्जन, अतिथि-सत्कार, सत्पात्रों को दान, दीन-दुःखियों की सहायता, शत्रु-विजय, शारीरिक-आत्मिक बल की वृद्धि, जितेन्द्रियता, सज्जन-संग, यम-नियम-पालन, पवित्रता, व्यभिचार-त्याग, बहुश्रुतता, यज्ञानुष्ठान।

दो विशिष्ट प्रतिज्ञाएँ—विवाह-संस्कार में वधू-वर पाणिग्रहण आदि के मन्त्रों से परस्पर कुछ प्रतिज्ञाएँ करते हैं। उनमें पारस्परिक सौभाग्य-वृद्धि की प्रतिज्ञा, धर्ममार्ग पर चलने-चलाने की प्रतिज्ञा, परस्पर साहचर्यपूर्वक दीर्घ जीवन के यत्न की प्रतिज्ञा, ऐश्वर्य-वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान करने की प्रतिज्ञा, प्रजावृद्धि की प्रतिज्ञा, परस्पर चोरी से खान-पान आदि न करने की प्रतिज्ञा तथा एक-दूसरे में रुचि लेने एवं सौहार्द रखने की प्रतिज्ञा है। ये सब प्रतिज्ञाएँ पति-पत्नी के पारस्परिक व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं। यजुर्वेद-भाष्य में स्वामीजी विवाह-काल में वधू-वर से दो अन्य प्रतिज्ञाएँ भी कराने का निर्देश देते हैं। वे प्रतिज्ञाएँ परस्पर से संबंध न रखकर दूसरों से संबंध रखती हैं। प्रतिज्ञाएँ इस प्रकार हैं—

पहली प्रतिज्ञा—हम दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि जैसे अपने हित के लिए आचरण करेंगे, वैसे ही अपने माता-पिता, आचार्य और अतिथियों के सुख के लिए भी निरन्तर वर्ताव करेंगे।[1]

दूसरी प्रतिज्ञा—हम दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस ब्रह्मचर्य से और जिस विद्या से हम दोनों स्त्री-पुरुष कृतकृत्य होते हैं, उस ब्रह्मचर्य और उस विद्या का सदैव प्रचार करेंगे और पुरुषार्थ से धनादि को बढ़ाकर उसे सन्मार्ग में व्यय करेंगे।[2]

---

१. विवाहप्रतिज्ञास्वियमपि कारयितव्या—हे स्त्रीपुरुषो ! युवां यथा स्वहिताया-चरतं तथास्माकं मातापित्राचार्यातिथीनां सुखायापि सततं वर्तेयाथाम् (य० भा० १५।५५)

२. विवाहे स्त्रीपुरुषाभ्यामियमपि द्वितीया प्रतिज्ञा कारयितव्या। येन ब्रह्मचर्येण यया विद्यया च युवां स्त्रीपुरुषौ कृतकृत्यौ भवथः तत् तां च सदैव प्रचारयताम्। पुरुषार्थेन धनादिकं च वर्धयित्वैतत् सन्मार्गे वीतम् (य० भा० १५।५६)

प्रथम प्रतिज्ञा से विवाहित स्त्री-पुरुषों का यह कर्त्तव्य सूचित होता है कि उन्हें अपने हित के साथ-साथ अन्य सबके हित की भी चिन्ता करनी चाहिए। दूसरी प्रतिज्ञा यह बताती है कि जिस बात से वे लाभ प्राप्त करें, उसका उन्हें अन्यों के कल्याण के लिए सर्वत्र प्रचार करना चाहिए।

स्त्री-शिक्षा

स्वामीजी ने स्त्री-शिक्षा पर बहुत बल दिया है। प्राचीनकाल में स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं, इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए 'उपदेशमंजरी' (पूना-प्रवचन) के तृतीय प्रवचन में वे कहते हैं—"पूर्वकाल में आर्य लोगों में स्त्रियाँ उत्कृष्ट रीति से पढ़ती थीं। आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखो, स्त्रियाँ आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर रहती थीं और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरुगृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे। गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि बड़ी-बड़ी सुशिक्षित स्त्रियाँ होकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं।"

स्वामीजी के समय स्त्री-शिक्षा का प्रचार नाममात्र को भी नहीं था। स० प्र०, समु० ३ में प्रश्न उठाया गया है—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है, जैसा यह निषेध है **"स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः"** "स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।" इसका उत्तर देते हुए स्वामीजी लिखते हैं—"सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआं में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल-कल्पना से हुई है, किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं।" पुनः स्त्री-शिक्षा के विरोधियों को फटकारते हुए कहते हैं—"और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो, यह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।"

स्वामीजी लड़के-लड़कियों सबकी शिक्षा को अनिवार्य बताते हैं तथा जो माता-पिता उन्हें शिक्षा से वंचित रखना चाहें उन्हें राज-दण्ड मिलना चाहिए, ऐसा कहते हैं—"इसमें राज-नियम और जाति-नियम होना चाहिए कि पाँचवें और आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो (समु० ३)। ऋग्-भाष्य ६।४४।१८ से लिखते हैं कि राजा ऐसा यत्न करे जिससे सब बालक और कन्याएँ ब्रह्मचर्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हो सत्य, न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें। यजु १०।७ के भाष्य में लिखा है कि राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए।

दयानन्द-भाष्य के अग्रलिखित वचन भी द्रष्टव्य हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि नारी-शिक्षा को स्वामीजी कितना महत्त्व देते थे :

"विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पण्डित बनावें, जिससे सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हों।"

(ऋ०भा० ३।१।२३)

"जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें।" (ऋ० भा० २।४१।१६)

"यदि माता-पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके, फिर विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक रखकर पढ़वावें, तब वे कन्या और पुत्र सूर्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों।" (य० भा० ११।३६)

"जैसे माताएँ सन्तानों को दूध आदि देकर बढ़ाती हैं, वैसे विदुषी स्त्रियाँ और विद्वान् पुरुष कुमारियों और कुमारों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावें।"

(ऋ० भा० १।१५२।६)

"गुरु और गुरुपत्नी को चाहिए कि वेद और उपवेद तथा वेद के अंग और उपांगों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे-अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।" (य० भा० ६।१४)

स्वामीजी के काल में तत्कालीन पण्डित स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं देते थे। इसीलिए स० प्र०, समु० ३ में प्रश्न उठाया गया है—क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें? स्वामीजी उत्तर देते हैं—"अवश्य! देखो, श्रौतसूत्रादि में 'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्' अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े (ऐसा लिखा है)। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वर-सहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत-भाषण कैसे कर सके? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं, यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी, और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर-संग्राम घर में मचा रहे, फिर सुख कहाँ?"

स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम की रूपरेखा स्वामीजी ने स० प्र० समु० ३ तथा सं० वि० वेदारम्भ-विधि के अन्तर्गत दी है, जिसमें समस्त वेद, वेदांग, उपवेद और षड् दर्शन आदि आ जाते हैं। स्त्रियों के लिए न्यून-से-न्यून का विधान करते हुए स्वामीजी लिखते हैं—

"ब्राह्मणी और क्षत्रिया को सब विद्या, वैश्या को व्यवहार-विद्या, और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून-से-न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए, वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प-विद्या (और वेदादि शास्त्र-विद्या) तो अवश्य ही सीखनी चाहिए, क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति

आदि से अनुकूल वर्तमान (वर्ताव), यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिए वैसा करना-कराना, वैद्यक-विद्या से औषधवत् अन्न-पान वनाना और वनवाना नहीं कर सकतीं, जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें। शिल्पविद्या के जाने विना घर का वनवाना, वस्त्र-आभूषण आदि का बनाना-वनवाना, गणित-विद्या के विना सवका हिसाब समझना-समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जान के अधर्म से कभी नहीं वच सके (स० प्र०, समु० ३)।" यजु ११।५९ के भाष्य में कन्याओं के लिए पाकविधि सीखने का भी विधान किया गया है—"लड़के पुरुषों की और लड़कियाँ स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन वनाने की क्रिया सीखें।"

स्त्रियाँ अध्यापिका बनें

स्वामीजी का विचार था कि नारियों को विदुषी बनकर कन्या-गुरुकुलों और कन्या-पाठशालाओं में कन्याओं को शिक्षित करना चाहिए। कन्या-पाठशालाओं में पुरुष अध्यापक रखने का वे निषेध करते हैं—"जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें (समु० ३)। जो गुण-कर्मानुसार ब्राह्मण हैं उनके लिए वे निर्देश देते हैं कि "जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कों को पढ़ावें तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियों को पढ़ावे, नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उनको विद्वान् करें।" (समु० ४)

अपने वेदभाष्य में स्वामीजी लिखते हैं—"सब विद्वान् जन अपनी-अपनी विदुषी स्त्री के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि तुम्हें सबकी कन्याओं को पढ़ाना चाहिए और सब स्त्रियों को सुशिक्षित करना चाहिए (ऋ० भा० २।४१।१७)।" "अध्यापकजन पुत्रों को और अध्यापिकाएँ पुत्रियों को ब्रह्मचर्य-नियम में लगाकर उनके दूसरे विद्या-जन्म को सम्पन्न कर जीवन के उपाय अच्छी प्रकार सिखाकर समय पर उनके माता-पिता को सौंपें (ऋ० भा० १।११७।२४)।" "जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे, जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो (य० भा० २०।८५)।" "जैसे प्रभातवेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देनेवाली होती है, वैसे विदुषी स्त्रियाँ कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या, सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ाके सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें (य० भा० ३४।४०)।" "जो स्त्रियाँ समस्त सांगोपांग वेदों को पढ़के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं (ऋ० भा० १।१६४।४१)।" "जो भूमि के तुल्य क्षमाशील, लक्ष्मी के तुल्य शोभती हुई, जल के तुल्य शान्त, सहेली के तुल्य उपकार करनेवाली विदुषी अध्यापिकाएँ हों, वे सब कन्याओं को पढ़ाके और सब

स्त्रियों को उपदेश से आनन्दित करें (ऋ० भा० ७।४०।७)।"

स्त्रियाँ यदि अध्यापन करेंगी तो वे घर का कार्य कैसे कर पायेंगी, इस विषय में स्वामीजी का कथन है कि वे आवश्यक होने पर परिचारिकाएँ रख सकती हैं। यजु ११।५६ के भाष्य में वे लिखते हैं—"श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि वे अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रखें, जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक-ठीक समय पर होती रहे।" इसी मन्त्र के भाष्य में परिचारिका के गुण भी बताये गये हैं कि वह प्रीतियुक्त, अच्छे केशोंवाली, सुन्दर-श्रेष्ठ कर्म करनेवाली और अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनानेवाली होनी चाहिए।

आज कन्या-गुरुकुलों, कन्या-पाठशालाओं और कन्या-महाविद्यालयों में अध्यापिकाओं की एक बड़ी संख्या छात्राओं के चरित्र-निर्माण और अध्यापन में लगी हुई है, यह दयानन्द का ही सन्देश मुखर हो रहा है।

स्त्रियाँ युद्धक्षेत्र में

क्षत्रिय स्त्रियों को धनुर्वेद की शिक्षा भी दी जानी चाहिए, इस विषय में इतिहास का साक्ष्य देते हुए स्वामीजी लिखते हैं—"देखो, आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं, क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकतीं और युद्ध कर सकतीं ?" वेदभाष्य में स्वामीजी लिखते हैं—"जो रानी धनुर्वेद जाननेवाली, शस्त्रास्त्र चलानेवाली है, उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिए (ऋ० भा० ६।७५।१५)।" राजा की अनुपस्थिति में रानी सेनापतित्व का कार्य सँभाले, ऐसा निर्देश करते हुए लिखते हैं—"संग्राम में राजा के अभाव में रानी सेनापति हो और जैसे राजा युद्ध कराने के लिए वीरों को प्रेरणा दे और उत्साहित करे, वैसे ही वह भी आचरण करे(ऋ०भा० ६।७५।१३)।" पुरुषों के समान स्त्रियों को भी युद्धविद्या सिखाने की प्रेरणा करते हुए लिखते हैं—"सभापति आदि को चाहिए कि जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षित करें, वैसे ही स्त्रियोंको भी शिक्षित करें। जैसे वीर पुरुष युद्ध करें, वैसे स्त्रियाँ भी करें (य० भा० १७।४५)।"

स्त्रियाँ राज-काज एवं न्यायविभाग में

राजा और राजपुरुषों की स्त्रियाँ राज्य के विभिन्न विभागों में तथा न्याय-विभाग में भी कार्य करें, ऐसा स्वामीजी को अभिप्रेत है। वेदभाष्य में वे लिखते हैं —"राजपुरुष आदि को चाहिए कि आप जिस-जिस राज्य-कार्य में प्रवृत्त हों, उस-उस कार्य में अपनी-अपनी स्त्रियों को भी स्थापन करें। जो-जो राजपुरुष पुरुषों का न्याय करे, उस-उसकी पत्नी स्त्रियों का न्याय किया करे(य० भा० १३।१७)।" "राजाओं की स्त्रियों को चाहिए कि सब स्त्रियों के लिए न्याय और अच्छी शिक्षा

देवें। स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें, क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ नहीं सकतीं (य० भा० १०।२६)।" "जहाँ शुभकर्मस्वभावयुक्त राजा पुरुषों का और वैसे ही गुणोंवाली रानी स्त्रियों का न्याय और पालन करें, वहाँ सब काल में विद्या, आनन्द, आयु और ऐश्वर्य बढ़ेंगे (ऋ० भा० ७।१५।१४)।" "रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आपसे न्यून नहीं हूँ। जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो, वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करनेवाली होती हूँ। जैसे पहले राजा-महाराजों की स्त्रियाँ प्रजास्थ स्त्रियों का न्याय करनेवाली हुईं, वैसे मैं भी होऊँ (ऋ० भा० १।१२६।७)।" एक स्थान पर स्वामीजी लिखते हैं—"जो राजकुल की स्त्रियाँ पृथिवी आदि के समान धीरता आदि गुणों से युक्त हैं, वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं (य० भा० १३।१८)।" इससे यह सूचित होता है कि स्त्रियाँ राज्य-संचालन भी कर सकती हैं। सं० वि०, गृहाश्रमविधि, क्षत्रिय-स्वरूप-लक्षण-प्रकरण में लिखा है कि "जैसे ब्राह्मण पुरुषों और ब्राह्मणी स्त्रियों को पढ़ावे, वैसे ही राजा पुरुषों का और राणी स्त्रियों का न्याय तथा उन्नति सदा किया करे।"

माता का महत्त्व

स्वामीजी द्वितीय समुल्लास में 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' इस वचन को उद्धृत करते हुए लिखते हैं—"जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिए 'मातृमान्' अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्'। धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान ने लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।" वेदभाष्य में भी माता के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार प्रकट करते हैं—"माता की शिक्षा से ही सन्तान उत्तम होते हैं, और प्रकार से नहीं (ऋ० भा० १।४८।१६)।" "माता सूर्य के सदृश जिन अपने सन्तानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है, वे सन्तान उत्तम होते हैं।" (ऋ० भा० ४।१८।५)

जन्म से ५वें वर्ष तक माता का ही शिक्षा का क्षेत्र है, ऐसा स्वामीजी ने लिखा है। माता किस प्रकार की शिक्षा करे, यह बताते हुए वे लिखते हैं—"बालकों की माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे।...जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य माता-पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान (बर्ताव), उनके पास बैठने आदि

की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय हों और सत्संग में रुचि करें, वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या-द्वेषादि न करें।...सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदनत्व आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें (समु० २)।" वेदभाष्य में लिखते हैं—"माता जनों को चाहिए कि अपने सन्तानों को बाल्यावस्था में अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् कर उनके साथ अतुल सुख भोगें (ऋ० भा० ६।६१।४)।" "माता को चाहिए कि अपनी सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे, जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें और जो करने योग्य है वही करें, न करने योग्य कभी न करें (य० भा० ११।६८)।"

स्वामीजी ऐसी माताओं को सभी के लिए सत्करणीय मानते हैं, जो अपने सन्तानों को सत्यभाषण, सत्य विद्या आदि से युक्त कर विद्वान् बनाती हैं। वे लिखते हैं—"जो स्त्री (माता) प्रभात वेला के समान, सूर्य के समान वा विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है, वह सबके सत्कार करने योग्य है (ऋ० भा० १।१२४।४)।" "जो स्त्रीजन (माताएं) सत्यभाषणयुक्त वाणी को और सर्वोत्तम सत्य विद्या को सन्तानों के लिए देती हैं, वे ही देवी विदुषी स्त्रियाँ बहुत मान करने योग्य होती हैं (ऋ० भा० ६।४८।१३)।" इसीलिए स० प्र० समु० ११ में पंचायतन-पूजा के वास्तविक पूजनीय पाँच देव कौनसे हैं, यह गिनाते हुए कहते हैं कि "प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता (रहे), अर्थात् सन्तानों को तन-मन-धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना (चाहिए), हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना (चाहिए)।"

नारी का सम्मान

स्वामी दयानन्द इसके प्रबल पक्षपाती थे कि नारियों को घर में और समाज में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। इसीलिए सं० वि० गृहाश्रम-विधि में मनु के श्लोक[1] देते हुए वे लिखते हैं—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

"पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें, अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न रखें। जिनको कल्याण की इच्छा हो वे

१. ये श्लोक अर्थसहित स० प्र० समु० ४ में भी दिये हैं।

स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें।"

"जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है, उस कुल में दिव्य-गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहाँ जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं।"

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ मनु ३।५९

"इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान-पान आदि से सदा पूजा (पूजित) अर्थात् सत्कारयुक्त प्रसन्न रखें।"

वधू के प्रति घरवालों का कैसा व्यवहार होना चाहिए, इस विषय में सं०वि० विवाहविधि में लिखते हैं—"अपने घर आके पति, सासु, श्वसुर, ननन्द, देवर, देवरानी, ज्येष्ठ, जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें। सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्तें और मधुर वाणी, वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रखें।"

पति और पत्नी दोनों एक-दूसरे के सम्मान के योग्य हैं, इस विषय में लिखते हैं—"स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है (स० प्र०, समु० ४)।" "स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए पत्नी पूजनीय है" (स०प्र०, समु० ११) "जो पुरुष स्त्रियों का और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुःख भाग जाते हैं (ऋ० भा १।११३।२०)।" "पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे। इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिलके ही सुख भोगें (य०भा० १३।२४)।"

इस प्रकार नारी के विषय में स्वामी दयानन्द के समस्त विचार उसे एक गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित करनेवाले हैं। इन वेदमूलक विचारों का प्रभाव शनैः-शनैः समाज पर पड़ा है और इनसे नारी जाति के उत्थान में बड़ी सहायता मिली है। दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने भी उनके विचारों से अनुप्राणित होकर नारी को समाज में उत्कृष्ट स्थान दिलाने के लिए सराहनीय प्रयास किया है। आज बाल-विवाहों की संख्या बहुत कम रह गयी है। आर्यसमाज के ही एक स्तम्भ स्वर्गीय श्री हरविलास शारदा के प्रयत्न से सन् १९२९ ई० में बाल-विवाह विरोधी कानून पारित हुआ था। विधवाओं की दशा भी सुधरी है। आज वर-वधू के चुनाव में लड़की की सम्मति उपेक्षायोग्य नहीं रह गयी है। स्त्री-शिक्षा का भी बहुत प्रसार हुआ है और आज के युग में नारियाँ विविध विद्याओं तथा वेद-वेदांगों में पुरुषों के समान ही वैदुष्य प्राप्त करती हैं। यज्ञ के अधिकार से भी वे वंचित नहीं हैं। स्त्रियों के लिए उन्नति के सब द्वार खुले हुए हैं। इस नारी-जागरण और नारी-उत्थान के लिए देश और समाज निश्चय ही दयानन्द का ऋणी है।

४

उषा के समान प्रकाशवती

हे नारी! तुम राष्ट्र-गगन में प्रकाशवती होकर चमको। तुम ईश्वर-भक्ति के प्रकाश से, विद्या के प्रकाश से, विवेक के प्रकाश से, सदाचार के प्रकाश से, सौजन्य के प्रकाश से, प्रेम के प्रकाश से, माधुर्य के प्रकाश से, सत्कर्म के प्रकाश से, सन्मति के प्रकाश से, सौन्दर्य के प्रकाश से, सौमनस्य के प्रकाश से, धर्म के प्रकाश से, सत्य के प्रकाश से, अहिंसा के प्रकाश से, ब्रह्मचर्य के प्रकाश से, सेवा के प्रकाश से, पवित्रता के प्रकाश से, सन्तोष के प्रकाश से, तपस्या के प्रकाश से, स्वाध्याय के प्रकाश से सर्वत्र जगमगाओ।

आवहन्त्यरुणीर् ज्योतिषागान् ।
महो चित्रा रश्मिभिश् चेकिताना ॥
प्रबोधयन्ती सुविताय देवी—
उषा ईयते सुयुजा रथेन ॥१॥ ऋग् ४।१४।३

देखो, प्राची के क्षितिज में उषा की लाली झलक रही है। अरुण कान्तियों को बिखेरती हुई महिमा-मण्डित, वैचित्र्य-चारु, ज्योतिष्मती उषादेवी रथासीन रानी के समान गगन के सिंहासन पर पदार्पण करती हुई अपनी उज्ज्वल रश्मियों से जागृति और प्रबोध प्रदान करने के लिए उदित हो रही है।

हे राष्ट्र की पूजायोग्य नारी! तुम भी परिवार और राष्ट्र में 'सत्यं, शिवं सुन्दरम्' की अरुण कान्तियों को छिटकाती हुई आओ; अपने विस्मयकारी सद्-गुणगणों के द्वारा अविद्याग्रस्त जनों को प्रबोध प्रदान करो। जन-जन को सुख देने के लिए अपने जगमग करते हुए रथ पर बैठकर आओ।

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्
ज्योतिर् यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञम् अग्निम्
अपाचीनं तमो अगाद् अजुष्टम् ॥२॥ ऋग् ७।७८।३

देखो, ज्योति प्रदान करती हुई ये विभाषित उषाएँ पूर्व दिशा में दृष्टिगोचर हो रही हैं। इनके आविर्भाव से अप्रिय अंधकार अपगत हो गया है। इन्होंने सूर्य को जन्म दिया है, यज्ञ को जन्म दिया है, 'अग्नि' को जन्म दिया है।

हे राष्ट्र की नारी ! तुम भी उषा के तुल्य ज्ञान-दीप्ति से देदीप्यमान बनो और अन्यों को भी ज्ञान-दीप्ति प्रदान करो। तुम भी उषा के समान बनकर अविद्या, निराशा, अविवेक एवं तामसिकता के अंधकार को दूर करो। तुम भी उषा के समान बनकर विद्या एवं विवेक के सूर्य को उदित करो। तुम भी उषा के समान बनकर देवपूजा, संगतिकरण एवं दानरूप यज्ञ का अनुष्ठान करो। तुम भी उषा के समान बनकर ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, अतिथियज्ञ, पितृयज्ञ एवं भूतयज्ञरूप पंच यज्ञों का प्रसार करो। तुम भी उषा के समान बनकर परिवार में, समाज में और राष्ट्र में संकल्प, उत्साह, कर्मण्यता, संगठन एवं साम्मनस्य अग्नि कोउत्पन्न करो।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यर्दशि
ज्योतिर्, वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थाम् अन्वेति साधु
प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥ ऋग् १।१२४।३

देखो, यह सामने ज्योति की साड़ी पहने, प्राणों से अनुप्राणित करनेवाली द्युलोक की दुहिता उषा दिखाई दे रही है, जो सत्यपथ का ही अनुसरण करती है और विदुषी के समान कभी दिशाओं का उल्लंघन नहीं करती।

हे राष्ट्र की नारी ! तुम भी ज्योतिर्मयी बनो, मन में उत्साह धारण करो, दिव्य प्रकाश की पुत्री कहलाने का गौरव प्राप्त करो, सत्य के मार्ग का अनुसरण करो और मर्यादाओं का पालन करती हुई राष्ट्र के अंतरिक्ष में यश से उद्-भासित होवो।

विश्वम् अस्या नानाम चक्षसे जगज्
ज्योतिष् कृणोति सूनरी।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव
उषा उच्छद् अप स्रिधः ॥४॥ ऋग् १।४८।८

देखो, यह द्युलोक की पुत्री ऐश्वर्यमयी उषा द्वेषियों को दूर करती हुई, हिंसकों को विध्वस्त करती हुई उदित हो रही है। इसके प्रकाश के सम्मुख सम्पूर्ण विश्व नत-मस्तक हो रहा है। यह सुनेत्री उषा हृदयों में दिव्य ज्योति को उत्पन्न कर रही है।

हे राष्ट्र की नारी ! तुम भी दिव्य पिता की पुत्री हो। तुम्हारे पास भी सद्-गुणों का अपार ऐश्वर्य है, अतः तुम भी परिवार और समाज में से द्वेष-वृत्तियों को दूर करो, हिंसा-वृत्तियों पर विजय पाओ। तुम भी उषा के समान सबका नेतृत्व करो, सर्वत्र उत्तम गुण-कर्मों की ज्योति को फैलाओ। तुम्हारे प्रति भी विश्व झुकेगा और तुमसे शिक्षा ग्रहण करेगा।

सत्या सत्येभिर् महती महद्भिर्
देवी देवेभिर् यजता यजत्रैः ॥
रुजद् दृलहानि ददुस्त्रियाणां
प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥५॥ ऋग् ७।७५।७

देखो, इस उषा ने रात्रि के अभेद्य दुर्गों को छिन्न-भिन्न करके उनमें कैद पड़ी हुई किरण-रूप गौओं का उद्धार कर दिया है। यह उषा सत्य नियमों से सत्यमयी है, महत्ताओं से महिमामयी है, देवत्वों से दिव्य है, यजनीयताओं से यजनीय है।

हे राष्ट्र की नारी! तुम भी तामसिकता के अभेद्य दुर्गों के अन्दर कैद पड़ी हुई दिव्यता की किरणों को मुक्त करो। तुम भी दृढ़-से-दृढ़ अविद्याओं का भंजन करके विद्या-प्रकाश की किरणों को प्रसृत करो। तुम भी सत्य के प्रचार से सत्यमयी बनो; तुम भी महान् गुणों से महिमामयी बनो; तुम भी दिव्य-विचारों से दिव्या बनो; तुम भी यज्ञ-भावनाओं से यज्ञकर्त्री एवं पूजास्पदा बनो।

प्रत्यर्ची रुशद् अस्या अदर्शि
वि तिष्ठते बाधते कृष्णम् अभ्वम्।
स्वरुं पेशो न विदथेष्वञ्जन्
चित्रं दिवो दुहिता भानुम् अश्रेत्॥६॥ ऋग् १।९२।५

देखो, उषा-की चमकीली अर्चि दिखाई दे रही है। इसका प्रकाश सर्वत्र फैल रहा है और तमोरूप महाकाय काले राक्षस को बाधित कर रहा है। यज्ञों में जैसे यज्ञ-स्तंभ को चिकनाया-चमकाया जाता है, ऐसे ही यह उषा अपने रूप को चमका रही है। यह द्युलोक की पुत्री उषा अद्भुत प्रकाश-पुंज सूर्य के आश्रय में स्थित है।

हे राष्ट्र की नारी! तुम भी उषा के समान अपनी अर्चि को चमकाओ, सद्गुणों और सच्चारित्र्यों के अपने प्रकाश को सर्वत्र प्रसारित करो। अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश के व्यापक तमोजाल को बाधित करो; राष्ट्र को विद्या, सत्य, प्रेम आदि को प्रकाश से उद्भासित करो।

जिह्मश्ये चरितवे मघोनी
आभोगय इष्टये राय उ त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष
उषा अजीगर् भुवनानि विश्वा॥७॥ ऋग् १।११३।५

देखो, उषा ने समस्त भू-भागों को अपने प्रकाश से व्याप्त कर लिया है। जो सोये पड़े हुए थे उन्हें जगाकर चलने-फिरने और ऊधम करने के लिए, भोगों को भोगने के लिए, यज्ञ करने के लिए और धनार्जन करने के लिए प्रेरित कर दिया है। जो अल्पदर्शी थे उन्हें विशालदर्शी बना दिया है।

हे राष्ट्र की नारी ! तुम भी उषा के समान बनकर अज्ञान की नींद में सोये पड़े हुओं को विद्या-प्रकाश से जागृत करो; जो अकर्मण्य होकर बैठे हुए हैं उन्हें पुरुषार्थ में प्रेरित करो। जिनके पास खाने को नहीं है उनके लिए तुम भोजन जुटाओ। जो यज्ञ-विहीन हैं उन्हें तुम यज्ञ में प्रेरित करो। जो धन-हीन हैं उन्हें धनार्जन में प्रेरित करो। जो संकुचित एवं अनुदार दृष्टि वाले हैं उन्हें विस्तीर्ण एवं उदार दृष्टि वाला बनाओ।

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः
सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गली बिभ्रती देववीतिम्
इहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥८॥ ऋग् १।११३।१२

हे श्रेष्ठतम उषा ! तू अपनी छटा को विकीर्ण कर, तमोजाल का उद्भेदन कर, उदित होकर मनुष्य के मानस से द्वेष को दूर कर, ऋत का पालन कर, ऋत में रम, सुख का सर्जन कर, प्रिय-सत्य वाणी को प्रेरित कर, हमारे लिए सुमंगली बन और देवयज्ञ को अवलम्ब दे।

हे राष्ट्र की श्रेष्ठतम नारी ! तुम भी उषा के समान अपने विद्या-प्रकाश को सर्वत्र उद्भासित करो; अविद्या, राग, द्वेष आदि के मोहजाल का अपनोदन करो; निज-मानस और जन-मानस से द्वेषवृत्तियों एवं द्वेषपूर्ण चरित्रों का अपसारण करो। तुम भी ऋतमयी बनो, ऋत का संरक्षण करो; संसार में दिव्य आनन्द को को उत्पन्न करो; प्रिय-सत्य-वाणी रूप 'सूनृता' का प्रयोग करो; सुमंगल का सर्जन करो; विद्वज्जनों से अनुमोदित नीति का अवलम्बन करो।

ऋतस्य रश्मिम् अनु यच्छमाना
भद्रं भद्रं क्रतुम् अस्मासु धेहि ।
उषो अद्य सुहवा व्युच्छ
अस्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥९॥ ऋग् १।१२३।१३

हे उषा ! सत्य की रश्मि को पकड़े हुए तू हमें भद्र-ही-भद्र संकल्पों, ज्ञानों एवं कर्मों में प्रेरित कर। हे सुहवा उषा ! तू अपने समान हमारे अन्तःकरणों को भी उद्भासित कर। हे उषे ! तू राष्ट्र के धनिकों को ही नहीं, किन्तु हम सभी को ऐश्वर्यों से भरपूर कर।

हे राष्ट्र की नारी ! तुम भी सत्य की रश्मि को पकड़कर अपनी सन्तान को भद्र-भद्र ज्ञानों, भद्र-भद्र संकल्पों और भद्र-भद्र कर्मों में प्रेरित करो। हे नारी, सब राष्ट्रवासी तुम्हारा सुमधुर आह्वान कर रहे हैं। तुम स्वयं भी दीप्ति से उद्भासित होवो और हमें भी उद्भासित करो। ऐसा प्रयत्न करो कि हम राष्ट्र के धनिक वर्ग सब भौतिक एवं दिव्य सम्पदाओं के धनी बनें।

हे नारी ! राष्ट्र की उज्ज्वलता तुमपर निर्भर है। तुम ही राष्ट्रोत्थान की

शुभ्र पताका हो, तुम ही राष्ट्र का गौरव हो। हे नारी, तुम प्रकाश की दिव्य रेखा हो। तुम मोहमय कृष्ण मेघों में दमकनेवाली प्रांजल दामिनी हो। तुम अज्ञान एवं दुःख-दारिद्रय की निविड निशा को चीरनेवाली उषा की किरण हो। हे नारी, तुम यशोमयी हो, गरिमामयी हो, सत्यमयी हो, सौन्दर्यमयी हो। तुम प्रकाशवती हो। तुम्हारा शत-शत अभिनन्दन! तुम्हें शत-शत वन्दन!

मन्त्रार्थ टिप्पणी

[१] **उषापक्ष में**—(**अरुणीः**) लाल कान्तियों को (**आ वहन्ती**) लाती हुई, (**मही**) विशाल, (**चित्रा**) अद्‌भुत, (**रश्मिभिः प्रबोधयन्ती**) किरणों से जगाती हुई, (**चेकिताना**) ज्ञान देती हुई (**देवी उषाः**) देदीप्यमान उषा (**सुयुजा रथेन**) सुनियुक्त सूर्य-रूप रथ में बैठकर (**सुविताय**) सुख प्रदान करने के लिए (**ईयते**) उदित हो रही है।

नारीपक्ष में—(**अरुणीः**) तेजस्विताओं को (**आवहन्ती**) प्राप्त कराती हुई, (**मही**) पूजायोग्य, (**चित्रा**) गुणों में अद्‌भुत (**रश्मिभिः प्रबोधयन्ती**) तेज किरणों से [सब सम्पर्क में आनेवालों को] जागरूक करती हुई, (**चेकिताना**) ज्ञान प्रदान करनेवाली (**उषाः देवी**) उषा के तुल्य दिव्यगुणयुक्त नारी (**सुयुजा रथेन**) सुनियुक्त रथ में बैठकर (**सुविताय**) सकल ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए (**ईयते**) आती है।

मही—महि वृद्धौ, मह पूजायाम्। **चेकिताना**—कित ज्ञाने, लिट् को कानच् आदेश।

[२] **उषापक्ष में**—(**एताः उ त्याः**) ये वे (**ज्योतिः यच्छन्तीः**) ज्योति प्रदान करती हुई (**विभातीः**) जगमगाती (**उषसः**) उषाएँ (**पुरस्तात्**) पूर्व दिशा में, (**प्रति अदृश्रन्**) दिखाई दे रही हैं। इन्होंने, (**सूर्यम्**) सूर्य को, (**यज्ञम्**) यज्ञ को, (**अग्निम्**) अग्नि को, (**अजीजनन्**) जन्म दिया है। (**अजुष्टम्**) अप्रिय, (**तमः**) अँधेरा, (**अपाचीनम् अगात्**) दूर चला गया है।

नारीपक्ष में—(**एताः उ त्याः**) ये वे, (**ज्योतिः यच्छन्तीः**) ज्ञान-दीप्ति प्रदान करती हुई, (**विभातीः**) [सद्‌गुणों के सौन्दर्य से] भासमान (**उषसः**) उषा के सदृश तेजस्विनी नारियाँ (**पुरस्तात्**) सामने (**प्रति अदृश्रन्**) दिखाई दे रही हैं। इन्होंने (**सूर्यम्**) विद्या के सूर्य को, (**यज्ञम्**) ईश्वर-पूजा, सत्संगतिकरण एवं दानरूप यज्ञ को तथा ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि पंच यज्ञों को और, (**अग्निम्**) [संकल्प, उत्साह, संगठन, कर्मण्यता एवं सामञ्जस्य की] अग्नि को, (**अजीजनन्**) उत्पन्न कर दिया है। (**अजुष्टम्**) अप्रिय (**तमः**) [अविद्या, निराशा, अविवेक, तामसिकता आदि का] अन्धकार (**अपाचीनम् अगात्**) दूर चला गया है।

अजुष्टम्—न जुष्टम्, अप्रियम् (जुषी प्रीतिसेवनयोः)।

[३] **उषापक्ष में**—(एषा) यह, (ज्योतिः वसाना) ज्योति को धारण किये हुए, (सम्-अना) प्राण से समनुप्राणित करती हुई, (दिवः दुहिता) द्योतमान सूर्य की पुत्री उषा, (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में, (प्रति अदर्शि) दीख पड़ी है। यह,(साधु) साधु प्रकार से (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य के मार्ग का, (अनु एति) अनुसरण करती है, (प्रजानती इव) विदुषी के समान (दिशः) दिशाओं को (न मिनाति) उल्लंघन नहीं करती है।

नारीपक्ष में—(एषा) यह, (ज्योतिःवसाना) सद्गुणों की ज्योति को साड़ी के समान धारण किये हुए (स-मना) मनोबल से अनुप्राणित (दिवः दुहिता) प्रकाश की पुत्री के तुल्य नारी, (पुरस्तात्)संमुख, (प्रति अदर्शि)दीख रही है। यह (साधु) भली-भाँति, (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य अथवा यज्ञ के मार्ग को (अनु एति) अनुसरण करती है। (प्रजानती इव) सब-कुछ जानती हुई-सी, (दिशः) मर्यादाओं को, (न मिनाति) नहीं तोड़ती है।

समना—सम् अना (अन प्राणने)। अथवा स-मनाः।

ऋत—यज्ञ (निरु० ६।२२)। मिनाति—वधार्थक (निघं २।१९)।

[४] **उषापक्ष में**—(विश्वं जगत्) सारा जगत्, (अस्याः) इस उषा के, (चक्षसे) प्रकाश के सम्मुख, (नानाम) नत-मस्तक हो जाता है। (सूनरी) उत्तम नेत्री यह उषा (ज्योतिः कृणोति) ज्योति को रच देती है। (मघोनी) ऐश्वर्यमयी, (दिवः दुहिता) द्योतमान सूर्य की पुत्री, (उषाः) उषा, (द्वेषः) द्वेषियों को, और (स्रिधः) हिंसकों को, (अप उच्छत्) दूर कर देती है।

नारीपक्ष में—(विश्वं जगत्) सब क्रियाशील जन-समाज, (अस्याः) इस नारी के, (चक्षसे) ज्ञान, दूरदर्शित्व आदि का लाभ उठाने के लिए, (नानाम) इसके प्रति नत होता है। (सूनरी) श्रेष्ठ नेतृत्व करनेवाली नारी, (ज्योतिः कृणोति) [राह भटकों के हृदयों में] ज्योति उत्पन्न कर देती है। (मघोनी)धनवती, (दिवः दुहिता) तेजस्वी पिता की पुत्री, (उषा) उषातुल्य नारी, (द्वेषः) द्वेषवृत्तियों को, और (स्रिधः) हिंसावृत्तियों को, (अप उच्छत्) दूर करे।

स्रिधः—स्रिध हिंसार्थक। उच्चत्—उच्छी विवासे।

[५] **उषापक्ष में**—उषा (सत्येभिः) सत्य नियमों से (सत्या) सत्यमयी है, (महद्भिः) महत्ताओं से, (महती) महिमामयी है, (देवेभिः) देवत्वों से (देवी) दिव्य है, (यजत्रैः) यज्ञों से (यजता) यज्ञमयी है। इसने (दृढानि) अन्धकार के दृढ़ दुर्गों को (रुजत) तोड़ दिया है, (उस्रियाणाम्) किरणों को (ददत्) प्रदान किया है। (गावः) गौएँ (उषसं प्रति) उषा के प्रति (वावशन्त) रम्भाने लगी हैं।

नारीपक्ष में—नारी, (सत्येभिः) [मन, वाणी एवं कर्म के] सत्यों से (सत्या) सत्यमयी हो, (महद्भिः) महान् गुणों से(महती) महिमामयी हो, (देवेभिः) दिव्य विचारों से (देवी) दिव्य बने, (यजत्रैः) यज्ञ-भावनाओं से (यजता) यज्ञकर्त्री

एवं पूजास्पद बने। (दृढ़ानि) दृढ़-से-दृढ़ [विघ्नों और आततायी शत्रुओं] को (रुजत्) तोड़-फोड़ दे, विध्वस्त कर दे। (गावः) [जन-जन की] वाणियाँ (उषसं प्रति) उषा-तुल्य नारी को लक्ष्य करके (वावशन्त) गुणमान करने की इच्छा करें।

यजत्रः—इज्यते यजति वा तद् यजत्रम्, अग्निहोत्रं होता वा (उ० ३।१०५ की द० टी०)। **वावशन्त**—वश कान्तौ, वाशृ शब्दे (वावशानो वष्टेर्वा वाश्यतेर्वा (निरु० ५।१)।

[६] **उषापक्ष में**—(अस्याः) इस उषा की, (रुशत्) चमकीली (अर्चिः) ज्योति (प्रति अदर्शि) दृष्टिगोचर हुई है, वह (वि तिष्ठते) विविध स्थानों पर स्थित हो गई है, और (अभ्वम्) विशाल (कृष्णम्) काले अंधकार को (बाधते) बाधित कर रही है। (विदथेषु) यज्ञों में (स्वरुं न) जैसे यज्ञ-स्तम्भ को [चमकाते हैं], वैसे ही यह उषा, (पेशः) अपने रूप को (अञ्जन्) चमकाती है। (दिवः दुहिता) द्योतमान सूर्य की पुत्री उषा (चित्रं भानुम्) अद्भुत सूर्य का (अश्रेत्) आश्रय लेती है।

नारीपक्ष में—(अस्याः) उषा-तुल्य इस नारी की (रुशत्) सुन्दर (अर्चिः) तेजस्विता, (प्रति अदर्शि) दिखाई दे रही है। यह नारी (वि तिष्ठते) वीरांगना, जननी, शिक्षिका आदि विविध रूपों में स्थित है। वह (अभ्वम्) विशाल (कृष्णम्) कालिमामय चरित्र को (बाधते) दूर करती है। (विदथेषु) यज्ञों में (स्वरुं न) जैसे यज्ञस्तम्भ को चमकाते हैं, वैसे ही यह (विदथेषु) व्यवहारों में (पेशः) सद्गुणों के अपने सुन्दर रूप को (अञ्जन्) चमकाती है। (दिवः दुहिता) विद्याप्रकाश से द्योतमान पिता की पुत्री यह नारी (चित्रम्) अद्भुत (भानुम्) [ज्ञान, सत्य, प्रेम आदि के] सूर्य को (अश्रेत्) उद्भासित करे।

रुशत्—रुशदिति वर्णनाम, रोचतेः ज्वलतिकर्मणः (निरु० २।२०)। **अभ्व**—महान् (निघं० ३।३)। **विदथ**—यज्ञ (निघं० ३।१७), व्यवहार (द० भा०, यजु० ३३।३४)। **अञ्जन्**—अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। **अश्रेत**—श्रिञ् सेवायाम्, लङर्थे लिङार्थे वा लङ्।

[७] **उषापक्ष में**—(मघोनी) प्रकाश-धन से भरपूर (उषाः) उषा ने (जिह्मश्ये) जो टेढ़ा होकर सोया पड़ा है उसके (चरितवे) चलने-फिरने के लिए, (आभोगये) भोग भोगने के लिए, (इष्टये) यज्ञ करने के लिए (उ) और (त्वम्) किसी को (राय) धन कमाने के लिए, तथा (दभ्रं पश्यद्भ्यः) कम देखने वालों के (उर्विया) विशालरूप से (विचक्षे) देखने के लिए (विश्वा) सब (भुवनानि) भू-प्रदेशों को (अजीगः) निगल लिया है अर्थात् अपने प्रकाश से व्याप्त कर लिया है।

नारीपक्ष में—(मघोनी) ऐश्वर्य से युक्त (उषाः) उषासदृश प्रकाशवती नारी ने (जिह्मश्ये) जो आलसी होकर सोया पड़ा है उसे (चरितवे) कर्मण्य बनाने के लिए, (आभोगये) [रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का] भोग कराने के लिए,

(इष्टये) यज्ञ में प्रवृत्त करने के लिए, (उ) और (त्वम्) किसी को (राये) धनोपार्जन में प्रेरित करने के लिए, तथा (दभ्रं पश्यद्भ्यः) संकुचित दृष्टि वालों को (उर्विया विचक्षे) उदार दृष्टि बनाने के लिए (विश्वा भुवनानि) [परिवार, समाज एवं राष्ट्र के] सब मनुष्यों को (अजीगः) अपने प्रभाव में ले लिया है।

अजीगः—स्वव्याप्त्या निगिलतीव (द० भा०), हगृ निगरणे।

[८] **उषापक्ष में**—(उषः) हे उषा, (यावयद्-द्वेषाः) द्वेष को दूर भगाने वाली, (ऋतपाः) प्राकृतिक सत्य नियम का पालन करनेवाली, (ऋतेजाः) सत्य में रमनेवाली, (सुम्नावरी) सुख देनेवाली (सूनृताः ईरयन्ती) मधुर सत्य वाणियों को प्रेरित करनेवाली, (सुमंगली) सुमंगलमयी, (देववीतिं बिभ्रती) देवयज्ञ को सहारा देनेवाली, (श्रेष्ठतमा) श्रेष्ठतम तू (इह) यहाँ, (वि-उच्छ) विभासित होती रह।

नारीपक्ष में—(उषः) हे उषासदृश ज्ञानप्रकाशमयी नारी! (यावयद् द्वेषा) अपने अन्दर से तथा जन-मानस से द्वेषवृत्तियों एवं द्वेषपूर्ण कर्मों को दूर करनेवाली, (ऋतपाः) सत्य ज्ञान और सत्य विचार की रक्षा करनेवाली, (ऋतेजाः) सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध, (सुम्नावरी) सुखमयी एवं सुखदायिनि, (सूनृताः ईरयन्ती) मधुर सत्य वाणियों को प्रयुक्त करने-करानेवाली, (सुमंगली) सुमंगलमयी एवं सुमंगलकारिणी, (देववीतिं बिभ्रती) विद्वानों से अनुमोदित नीति को धारण करने वाली, (श्रेष्ठतमा) श्रेष्ठतम तू (अद्य) आज (वि उच्छ) अविद्या, भ्रष्टाचार आदि के अन्धकार को दूर कर।

[९] **उषापक्ष में**—(उषः) हे उषा, (ऋतस्य) सत्यमय सूर्य की, (रश्मिम्) किरण को (अनु यच्छमाना) पकड़े हुए तू (अस्मासु) हममें (भद्रं भद्रं क्रतुम्) भद्र-भद्र ज्ञान, संकल्प एवं कर्म को (धेहि) स्थापित कर। तू (अद्य) आज (नः) हमारे लिए (सुहवा) शुभ आह्वान किये जाने योग्य होती हुई (वि उच्छ) भूतल से एवं हमारे अन्तःकरण से अन्धकार को निर्वासित कर। तेरी सहायता से (अस्मासु) हममें (मघवत्सु च) और धनिकों में (रायः) ऐश्वर्य (स्युः) होवें।

नारीपक्ष में—(उषः) हे उषासदृश नारी! (ऋतस्य) सत्य विचार, सत्य वचन एवं सत्य कर्म की (रश्मिम्) किरण को (अनु यच्छमाना) पकड़े हुए, तू (अस्मासु) हम सन्तानों में (भद्रं-भद्रं क्रतुम्) भद्र-भद्र ज्ञान, संकल्प एवं कर्म (धेहि) स्थापित कर। तू (अद्य) आज (नः) हमारे लिए (सुहवा) सुमधुर रूप से आह्वान करने योग्य होकर (वि उच्छ) अविद्या आदि के अन्धकार को दूर कर। तेरी सहायता से (अस्मासु) हमें (मघवत्सु च) और राष्ट्र के धनी-मानी लोगों को (रायः) भौतिक एवं दिव्य संपदाएँ (स्युः) प्राप्त हों।

अनुयच्छमाना—अनु, यम उपरमे। क्रतु—कर्म, प्रज्ञा (निघं० २।१, ३।९)।

५

वीरांगना

हे नारी ! तू वीरांगना है वीर-कुल की जन्मदात्री है। वह एक अशुभ घड़ी थी जब तू अबला कहलायी और कोषकार ने नारी-वाची शब्दों में 'अबला' नाम भी परिगणित कर दिया। आज तो कवि भी तेरी दीनता पर तरस खाकर कह रहा है—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

पर याद रख, वेद के अनुसार तू अबला नहीं सबला है, वीरांगना है। तुझे तेरी वीरता का स्मरण कराने के लिए मैं इस शिलाखण्ड पर तेरा पैर रखवाता हूँ।

[1]स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि ते—
अश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तम् आ तिष्ठ अनुमाद्या सुवर्चाः
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ अथर्व १४।१।४७

हे नारी, तू राष्ट्रभूमि की प्रजा है, तेरे लिए इस दिव्य भूमि के पृष्ठ पर मैं सुखदायक अचल शिलाखण्ड को रखता हूँ। इस शिलाखण्ड के ऊपर तू खड़ी हो, यह तुझे दृढ़ता का पाठ पढ़ायेगा। इस शिलाखण्ड के अनुरूप तू भी वर्चस्विनी बन, जिससे संसार में आनन्दपूर्वक रह सके। सविता परमेश्वर और सूर्य तेरे अन्दर तेज का आधान करके तेरी आयु को सुदीर्घ करें।

[2]आरोहेमम् अश्मानम् अश्मेव त्वं स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥
पारस्कर गृ० सू० १।७।१

तू इस शिला पर आरोहण कर। जैसे यह शिला स्थिर और सुदृढ़ है, ऐसे तू भी स्थिर और सुदृढ़गात्री बन। आक्रमणकारियों को परास्त कर, सेना द्वारा चढ़ाई करनेवालों को बाधित कर।

[3]सिँ ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व।
सिँ ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व।
सिँ ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ यजु ५।१०

हे नारी, तू स्वयं को पहचान। तू शेरनी है, तू शत्रुरूप मृगों का मर्दन करनेवाली है, देवजनों के हितार्थ अपने अन्दर सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी, तू अविद्या आदि दोषों पर शेरनी की तरह टूटनेवाली है, तू दिव्य गुणों के प्रचारार्थ स्वयं को शुद्ध कर। हे नारी, तू दुष्कर्मों एवं दुर्व्यसनों को शेरनी के समान विध्वस्त करनेवाली है, धार्मिक जनों के हितार्थ स्वयं को दिव्य गुणों से अलंकृत कर।

[४]सिꣳ ह्यसि स्वाहा, सिꣳ ह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा,
सिꣳ ह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा,
सिꣳ ह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा,
सिꣳ ह्यस्यावह देवान् यजमानाय स्वाहा,
भूतेभ्यस्त्वा ॥ यजु ५।१२

हे नारी, तू शेरनी है, तू आदित्य ब्रह्मचारियों की जन्मदात्री है, हम तेरी पूजा करते हैं। हे नारी, तू शेरनी है, तू ब्राह्मणों की जन्मदात्री है, तू क्षत्रियों की जन्मदात्री है, हम तेरा यशोगान करते हैं। हे नारी, तू शेरनी है, तू श्रेष्ठ सन्तान को देनेवाली है, तू धन की पुष्टि को देनेवाली हैं, हम तेरा जयजयकार करते हैं। हे नारी, तू शेरनी है, तू यजमान पति को दिव्यगुणयुक्त तेजस्वी संतानें प्रदान कर, तेरा हम गुणगान करते हैं। हे नारी, प्राणियों के हितार्थ हम तुझे नियुक्त करते हैं।

[५]स्योनासि सुषदासि, क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामासीद सुषदामासीद, क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ यजु १०।२६

हे नारी, तू सुखदात्री है, तू सुदृढ़ स्थितिवाली है, तू क्षात्रबल की भंडार है। इस सुखदायिनी शाला में या राष्ट्रभूमि में स्थित हो, इस सुदृढ़ स्थितिवाली शाला में या राष्ट्रभूमि में स्थित हो, इस क्षात्रबल की जन्मस्थली शाला में या राष्ट्रभूमि में स्थित हो।

[६]ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो
अव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥ यजु १३।१६

हे नारी, तू ध्रुव है, अटल निश्चयवाली है, सुदृढ़ है, अन्यों को धारण करनेवाली है। विश्वकर्मा परमेश्वर ने तुझे विद्या, वीरता आदि गुणों से आच्छादित किया है। ध्यान रख, समुद्र के समान उमड़नेवाला रिपुदल तुझे हानि न पहुँचा सके, गरुड़ के समान आक्रान्ता तुझे हानि न पहुँचा सके। किसी से पीड़ित न होती हुई तू राष्ट्रभूमि को समृद्ध कर।

[७]भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया
विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ
पृथिवीं दृꣳह, पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥ यजु १३।१८

हे नारी, तू उत्कृष्ट सत्तावाली है। तू भूमि के समान दृढ़ है। तेरा आत्मा अच्छेद्य, अभेद्य, अखण्डनीय है, तू सबको वीरता रूप दुग्ध का पान करानेवाली है। तू सकल लोक को धारण करनेवाली है। तू राष्ट्रभूमि को कुमार्ग पर जाने से रोक, राष्ट्रभूमि को दृढ़ कर, राष्ट्रभूमि की हिंसा मत कर।

[८]अषाढासि सहमाना
सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः।
सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ।। यजु १३।२६

हे नारी, तू विघ्न-बाधाओं से पराजित होने योग्य नहीं है, प्रत्युत विघ्न-बाधाओं को पराजित कर सकनेवाली है। तू शत्रुओं को परास्त कर, सैन्य-दल को परास्त कर। तू सहस्रवीर्या है, अपनी वीरता प्रदर्शित करके तू मुझे प्रसन्नता प्रदान कर।

[९]महीमू षु मातरं सुव्रतानाम्
ऋतस्य पत्नीम् अवसे हुवेम।
तुविक्षत्राम् अजरन्तीम् उरूचीम्
सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतिम् ।। यजु २१।५

हे नारी, तू महाशक्तिमती है। तू सुव्रती पुत्रों की माता है। तू सत्यशील पति की पत्नी है। तू भरपूर क्षात्रबल से युक्त है। तू शत्रु के आक्रमण से जीर्ण न होने-वाली है। तू अतिशय कर्मण्य है। तू शुभ कल्याण करनेवाली है। तू शुभ-प्रकृष्ट नीति का अनुसरण करनेवाली है। हम तुम्हें रक्षार्थ पुकारते हैं।

[१०]उत त्वामदिते मह्यहं देव्युपब्रुवे।
सुमृळीकायाभिष्टये ।। ऋग् ८।६७।१०

हे खंडित न होने वाली, सदा अदीन बनी रहने वाली पूजायोग्य नारी, मैं तुझे परिवार एवं राष्ट्र में उत्कृष्ट सुख बरसाने के लिए पुकारता हूँ। मैं तुझे अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कराने के लिए पुकारता हूँ।

[११]ते हि पुत्रासो अदितेर् विदुर् द्वेषांसि यातवे।
अंहोश्चिद् उरुचक्रयोऽनेहसः ।। ऋग् ८।१८।५

हे नारी, जैसे तू शत्रु से खण्डित न होनेवाली, सदा अदीन रहनेवाली वीरांगना है, वैसे ही तेरे पुत्र भी अद्वितीय वीर हैं। तेरे पुत्र 'उरुचक्रि' हैं, महान् कार्यों का बीड़ा उठानेवाले हैं। वे 'अनेहा:' हैं, स्वप्न में भी पाप का विचार अपने मन में नहीं आने देते, फिर पाप-आचरण तो क्या ही करेंगे! वे द्वेषी शत्रु से भी लोहा लेना जानते हैं।

[१२]राज्ञ्यसि प्राची दिग्, विराडसि दक्षिणा दिक्,
सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिक्,
अधिपत्न्यसि बृहती दिक् ।। यजु १४।१३

हे नारी, तू रानी है, पूर्व दिशा के समान तेजोमयी है। तू विशाल शक्ति-वाली है, दक्षिण दिशा के समान ऊर्जस्वती है। तू सम्राज्ञी है, पश्चिम दिशा के समान आभामयी है। तू अपनी विशेष कान्ति से भासमान है, उत्तर दिशा के समान प्राणवती है। तू अधिपत्नी है, विस्तीर्ण ऊर्ध्वा दिशा के समान असीम गरिमा वाली है।

[13]संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणी-इन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

ऋग् १०।८६।१०

नारी तो आवश्यकता पड़ने पर बलिदान के स्थल-संग्राम में भी जाने से नहीं हिचकती। जो नारी सत्य की विधात्री है, वीर पुत्रों की माता है, वीर की पत्नी है, वह अवश्य महिमान्वित होती है। उसका वीर पति विश्वभर में प्रसिद्धि पाता है।

[14]अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती
गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्
अन्धेनामित्रास् तमसा सचन्ताम्॥ यजु १७।४४

बाण-पंक्ति के समान दूर तक वार करनेवाली हे वीर क्षत्रिय नारी, तू शत्रु-सेनाओं के चित्तों को विमूढ़ करती हुई, सेनाओं के अंगों को—हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल सैनिकों को—अपने वश में कर ले। अधर्म से दूर रह। शत्रुओं के प्रति प्रयाण कर, उनके हृदयों को शोक से दग्ध कर दे। तेरे शत्रु निराशारूप घोर अन्धकार से ग्रस्त हो जाएँ।

[15]अवसृष्टा परापत, शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व, मामीषां कञ्चनोच्छिषः॥ यजु १७।४५

विद्वानों द्वारा शिक्षा से तीक्ष्णीकृत एवं प्रशंसित तथा बाण आदि शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल हे नारी, सेनापति आदि से प्रेरित की गयी तू शत्रुओं पर टूट पड़। जा, शत्रुओं के पास पहुँचकर उन्हें पकड़ ले। इनमें से किसी को भी छोड़ मत, कैद करके कारागार में डाल दे।

[16]आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः॥ ऋग् ६।७५।१५

जो वीरांगना विष-लिप्त बाण के समान रण-संहार करनेवाली है, जो रक्षार्थ सिर पर मृग के सींगों का बना शिरस्त्राण धारण करती है, जिसका सामने का भाग लोह-कवच से आच्छादित है, जो पर्जन्य-वीर्या है अर्थात् बादल के समान शस्त्रास्त्रों की वर्षा करनेवाली है, उस बाण के समान गतिशील, कर्मकुशल, शूरवीर देवी को हम भूरि-भूरि नमस्कार करते हैं।

हे राष्ट्र की नारी, वैदिक वीरांगना के इन ओजस्वी उद्गारों को सुन :

[17]अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणी-इन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्माद् इन्द्र उत्तरः॥
ऋग् १०।८६।९

यह घातक मुझे अवीरा समझ रहा है, मैं तो वीरांगना हूँ; वीर की पत्नी हूँ; आँधी की तरह शत्रु पर टूट पड़नेवाले वीर मेरे सखा हैं। मेरा पति विश्वभर में वीरता में प्रसिद्ध है।

[18]अहं केतुरहं मूर्धा, अहम् उग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः, सेहानाया उपाचरेत्॥ ऋग् १०।१५९।२

मैं राष्ट्र की ध्वजा हूँ, मैं समाज का सिर हूँ। मैं उग्र हूँ, मेरी वाणी में बल है। शत्र-सेनाओं का पराजय करने वाली मैं युद्ध में वीर-कर्म दिखाने के पश्चात् ही पति का प्रेम पाने की अधिकारिणी हूँ।

[19]मम पुत्राः शत्रुहणो,-अथो मे दुहिता विराट्।
उताहम् अस्मि संजया, पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥
ऋग् १०।१५९।३

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं, मेरी पुत्री विशेष तेजस्विनी है, और मैं भी पूर्ण विजेत्री हूँ। मेरे पति में उत्तम कीर्ति का वास है।

[20]येनेन्द्रो हविषा कृत्वी, अभवद् द्युम्न्युत्तमः।
इदं तद् अक्रि देवाः, असपत्ना किलाभुवम्॥ ऋग् १०।१५९।४

जिस आत्मोत्सर्ग की हवि से मेरा वीर पति कृतकृत्य, यशस्वी और सर्वोत्तम सिद्ध हुआ है, वह हवि आज मैंने भी दे दी है। आज मैं निश्चय ही शत्रु-रहित हो गयी हूँ।

[21]असपत्ना सपत्नघ्नी, जयन्त्यभिभूवरी।
आवृक्षमन्यासां वर्चो, राधो अस्थेयसामिव॥ ऋग् १०।१५९।५

मैं शत्रु-रहित हो गई हूँ, शत्रुओं का मैंने वध कर दिया है, मैंने विजय पा ली है, वैरियों को पराजित कर दिया है। रिपु-सेनाओं के तेज को मैंने ऐसे ही विनष्ट कर दिया है, जैसे अस्थिर लोगों की सम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

हे राष्ट्र की नारी, वेद के इस वीरता के संदेश को सुन; वीरता की तरंगों से अपने हृदय को तरंगित कर। तू वीरांगना बन, झाँसी की रानी बन। तेरे अन्दर वीरता का संचार होने से समाज में वीरता का संचार होगा, राष्ट्र में वीरता का संचार होगा। हे नारी, तू विजेत्री बन, राष्ट्र को विजयी बना।

हे नारी, तेरे मन में वीरों का संकल्प हो, तेरी बुद्धि में सन्तुलित विवेक हो, तेरी आत्मा में विजय का लक्ष्य हो, तेरी वाणी में बिजली का निर्घोष हो, तेरी भुजाओं में अतुलित शौर्य हो, तेरी आँखों में दर्पीली चमक हो, तेरे होठों पर 'वन्दे मातरम्' का गीत हो। ले ले कर में करवाल, टूट पड़ अत्याचारी पर। जागृत कर

अपने मनोबल को, परास्त कर दे सब विघ्न-बाधाओं को, विजय पा मदान्धता, बर्बरता और क्रूरता पर, साध्य बना दे बड़े-से-बड़े असाध्य कर्मों को। प्रमाणित कर दे कि तू वैदिक वीरांगना है।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] हे नारी, (देव्याः पृथिव्याः) दिव्य राष्ट्रभूमि के (उपस्थे) तल पर (प्रजायै ते) तुझ प्रजा के लिए (स्योनं) सुखदायक (ध्रुवं) दृढ़ (अश्मानं) शिलाखण्ड को (धारयामि) रखता हूँ, (तं) उस पर (आतिष्ठ) तू आकर स्थित हो, (सुवर्चाः) श्रेष्ठ वर्चस्विनी होकर (अनुमाद्य) आनंदित हो। (सविता) उत्पादक परमेश्वर एवं सूर्य (ते आयुः) तेरी आयु (दीर्घं) लम्बी (कृणोतु) करे।

अनुमाद्या—अनु मदी हर्षे, लोट्। दीर्घ छान्दस।

[२] हे नारी, (इमम् अश्मानं) इस शिला पर (आरोह) चढ़। (त्वं) तू (अश्मा इव) शिला के समान (स्थिरा) दृढ़ (भव) हो। (पृतन्यतः) आक्रमणकारियों को (अभितिष्ठ) परास्त कर, (पृतनायतः) सेना द्वारा चढ़ाई करने वालों को (अवबाधस्व) बाधित करके नीचे गिरा दे।

[३] हे नारी, तू (सिंही असि) शेरनी है, (सपत्नसाही) शत्रुरूप मृगों का मर्दन करनेवाली है, (देवेभ्यः) सज्जनों के हितार्थ (कल्पस्व) समर्थ बनी तू (सिंही असि) शेरनी है, (सपत्नसाही) अविद्यादि दोषों को नष्ट करनेवाली है, (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के प्रचारार्थ (शुन्धस्व) स्वयं को शुद्ध कर। तू (सिंही असि) शेरनी है, (सपत्नसाही) [दुष्कर्म, दुर्व्यसन आदि] शत्रुओं को परास्त करनेवाली है, (देवेभ्यः) धार्मिक जनों के हितार्थ (शुम्भस्व) स्वयं को दिव्य गुणों से अलंकृत कर।

महीधर ने यह मन्त्र उत्तरवेदि के पक्ष में तथा दयानन्द ने वाणी के पक्ष में व्याख्यात किया है। हमने सामाजिक अर्थ की दृष्टि से इसे नारी-पक्ष में लिया है।

कल्पस्व—कृपू सामर्थ्ये। शुन्धस्व—शुन्ध शौचकर्मणि। शुम्भस्व—शुम्भ भासने। सपत्नसाही—सपत्न शत्रु, साही षह मर्षणे।

[४] हे नारी, तू (सिंही असि) शेरनी है, (स्वाहा) हम तेरी प्रशंसा करते हैं। (सिंही असि) तू शेरनी है, (आदित्य-वनिः) आदित्य ब्रह्मचारियों को जन्म देनेवाली है, (स्वाहा) हम तेरी प्रशंसा करते हैं। (सिंही असि) तू शेरनी है, (ब्रह्मवनिः) ब्राह्मणों को जन्म देनेवाली है, (क्षत्र-वनिः) क्षत्रियों को जन्म देनेवाली है, (स्वाहा) हम तेरी प्रशंसा करते हैं। (सिंही असि) तू शेरनी है, (सु-प्रजा-वनिः) उत्तम सन्तान को देनेवाली है, (रायस्पोष-वनिः) धन की पुष्टि को देनेवाली है, (स्वाहा) हम तेरी प्रशंसा करते हैं। (सिंही असि) तू शेरनी है, (यजमानाय) गृहाश्रम-यज्ञ के यजमान पति को (देवान्) तेजस्वी सन्तानें (आवह) प्राप्त करा (स्वाहा) हम तेरा आह्वान करते हैं। (भूतेभ्यः) प्राणियों के हितार्थ (त्वा) तुझे

[नियुक्त करता हूँ]।

यह मंत्र भी महीधर ने उत्तरवेदि-परक तथा दयानन्द ने वाणी-परक व्याख्यात किया है। **स्वाहा**—सु आह, सु प्रशंसा। वेद में 'स्वाहा' से उल्टा 'दुराहा' भी आता है—'इमे जयन्तु परामी जयन्तां, स्वाहा-एभ्यो दुराहा अमीभ्यः (अथर्व-८.८.२४)। **आदित्य-वनिः**—आदित्यान् वनति जन्मप्रदाय संभजते इति। वन संभक्तौ।

[५] हे नारी, तू (**स्योना असि**) सुख देनेवाली है, (**सुषदा असि**) सुदृढ़ स्थितिवाली है, (**क्षत्रस्य**) क्षात्र-बल का (**योनिः**) घर अथवा उत्पत्तिकारण (**असि**) है, (**स्योनां**) सुखदात्री शाला में या सुखदात्री राष्ट्रभूमि में (**आसीद**) बैठ, (**सुषदां**) सुदृढ़ स्थितिवाली शाला में या राष्ट्रभूमि में (**आसीद**) बैठ, (**क्षत्रस्ययोनिं**) क्षात्र-बल की जन्मस्थली शाला में या राष्ट्रभूमि में (**आसीद**) बैठ।

महीधर ने यह मंत्र यजमान को आसन्दी पर बैठाने के पक्ष में तथा दयानन्द ने राजपत्नी को आसन्दी पर बैठाने के पक्ष में व्याख्यात किया है।

[६] हे नारी, तू (**ध्रुवा असि**) स्थिर निश्चयवाली है, दृढ़ है, (**धरुणा**) धारण करनेवाली है, (**विश्वकर्मणा**) विश्वकर्मा परमात्मा द्वारा अथवा सन्तान के प्रति सब कर्तव्यों का पालन करनेवाले पिता द्वारा (**आस्तृता**) तू [विद्या, वीरता, धर्मात्मता आदि गुणों से] आच्छादित की गई है। (**त्वा**) तुझे (**समुद्रः**) समुद्र के समान उमड़नेवाला रिपुदल (**मा उद्वधीत्**) हानि न पहुँचा सके (**मा सुपर्णः**) न ही गरुड़ के समान झपटनेवाला आक्रान्ता हानि पहुँचा सके। (**अव्यथमाना**) [किसी से] पीड़ित न होती हुई तू (**पृथिवीं**) राष्ट्रभूमि को (**दृंह**) समृद्ध कर।

यह मन्त्र महीधर ने इष्टका-पक्ष में तथा दयानन्द ने राजपत्नी-पक्ष में व्याख्यात किया है। **आस्तृता**—आ स्तृञ् आच्छादने। **दृंह**—वृद्धौ।

[७] हे नारी, तू (**भूः असि**) उत्कृष्ट सत्तावाली है, (**भूमिः असि**) भूमि के समान दृढ़ है, (**अदितिः असि**) अखंडनीय, अच्छेद्य, अभेद्य है, (**विश्व-धायाः**) विश्व को वीरता का दूध पिलानेवाली है, (**विश्वस्य भुवनस्य**) सकल लोक की (**धर्त्री**) धारण करनेवाली है। तू (**पृथिवीं**) राष्ट्रभूमि को (**यच्छ**) कुमार्ग पर जाने से रोक, (**पृथिवीं**) राष्ट्रभूमि को (**दृंह**) दृढ़ कर, (**पृथिवीं**) राष्ट्रभूमि की (**मा हिंसीः**) हिंसा मत कर।

यह मन्त्र भी महीधर ने इष्टका-परक तथा दयानन्द ने राजपत्नी-परक व्याख्यात किया है। **अ-दितिः**—अखण्डनीया। न, दो अवखण्डने। **विश्व-धायाः**—विश्वं धापयति दुग्धं पाययति इति। धेट् पाने।

[८] हे नारी, तू (**अषाढा असि**) अपराजेय है, (**सहमाना**) अन्यों को पराजित करनेवाली है। (**अरातीः**) अदान-शील स्वार्थी शत्रु-प्रजाओं को (**सहस्व**) परास्त कर। (**पृतनायतः**) सेना द्वारा आक्रमण करनेवालों को (**सहस्व**) परास्त कर। तू

(सहस्रवीर्या असि) सहस्र पराक्रमोंवाली है। (सा) वह तू (मा) मुझे (जिन्व) प्रसन्नता प्रदान कर।

यह मन्त्र भी महीधर नें इष्टका-पक्ष में व्याख्यात किया है, किन्तु दयानन्द ने पत्नी के पक्ष में। अषाढ़ा—शत्रुभिः असह्यमाना (द० भा०) षह मर्षणे। अरातीः—न रातिः अरातिः (रा दाने)।

[९] (महीम्) महाशक्तिमती, (सु-व्रतानां मातरं) सुव्रतियों की माता, (ऋतस्य पत्नीं) सत्यशील पति की पत्नी, (तुविक्षत्रां) बहुत अधिक क्षात्रबल से भरपूर, (अ-जरन्तीं) जीर्ण न होनेवाली (उरूचीं) अतिशय गतिमती अर्थात् कर्मण्य, (सु-शर्माणं) शुभ कल्याण करनेवाली, (सु-प्रणीतिं) शुभ प्रकृष्ट नीति का अनुसरण करनेवाली, (अदितिं) खण्डित न होने वाली, सदा अदीन रहनेवाली वीर माता को (सु) भली-भाँति (अवसे) रक्षा के लिए (हुवेम) हम पुकारें।

अदितिः—न दितिः अदितिः अखण्डिता (दो अवखण्डने)। अथवा अदितिः अदीना देवमाता (निरु० ४.२२)। तुवि—बहु (निघं० ३।१)। उरूची—उरु बहु अञ्चति गच्छतीति। अञ्चु गतिपूजनयोः।

[१०] (उत) और (अदिते) खण्डित न होनेवाली, अदीन (महि) पूजनीय, महाशक्तिमती (देवि) हे देवी, (अहम्) मैं (त्वां) तुझे (सु-मृडीकाय) उत्कृष्ट सुख के लिए, तथा (अभिष्टये) अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए (उपब्रुवे) पास बुलाता हूँ।

महि—मह पूजायाम्, महि वृद्धौ। मृडीकम्—मृड सुखने। अभिष्टि—अभि इष्टि, 'एमन्नादिषु छन्दसि पररूपं वाच्यम्' वा०, अ ६।१।९४ से पररूप।

[११] (अदितेः) तुझ अखण्डनीया, अदीन नारी के (ते हि पुत्रासः) वे पुत्र (द्वेषांसि) द्वेषी शत्रुओं को (यातवे) परे खदेड़ना (विदुः) जानते हैं। (उरुचक्रयः) महान् कार्यों को करनेवाले, (अनेहसः) निष्पाप वे (अंहोःचित्) पाप से भी (यातवे) पृथक् रहना (विदुः) जानते हैं।

[१२] हे नारी, (राज्ञी असि) तू राजरानी है, (प्राची दिक्) पूर्व दिशा के समान है। तू (विराट् असि) विशाल शक्तिवाली है, (दक्षिणा दिक्) दक्षिण दिशा के समान है। तू (सम्राट् असि) सम्राज्ञी है, (प्रतीची दिक्) पश्चिम दिशा के समान है। तू (स्वराट् असि) अपनी अद्भुत कान्ति से राजमान है, (उदीची दिक्) उत्तर दिशा के समान है। तू (अधिपत्नी असि) सबके ऊपर होकर पालन करनेवाली है, (बृहती दिक्) विशाल ऊर्ध्वा दिशा के समान है।

यह मन्त्र महीधर ने कर्मकाण्ड-प्रक्रियानुसार इष्टका-परक व्याख्यात किया है तथा दयानन्द ने नारी-परक।

[१३] (नारी) नारी (पुरा) पहले (वाव) निश्चय ही (संहोत्रं) जिसमें आत्मोत्सर्ग तक करना पड़ जाता है ऐसे (समनं) संग्राम में (गच्छति) जाती थी। वह (ऋतस्य) सत्य की (वेधाः) विधात्री, (वीरिणी) वीर पुत्रोंवाली वीरांगना,

(इन्द्रपत्नी) वीर की पत्नी होकर (महीयते) महिमा पाती है। (इन्द्रः) उसका वीर पति (विश्वस्मात्) सबसे (उत्तर) उत्कृष्ट होता है।

संहोत्रं—सम्यक् हूयते उत्सृज्यते यस्मिन्। समनम्—संग्रामः (निघं० २।१७)

[१४] (अप्वे) हे बाण-पंक्ति के समान दूर तक वार करनेवाली वीर क्षत्रिय नारी, तू (अमीषां) इन शत्रु-सेनाओं के (चित्तं) चित्त को (प्रति-लोभयन्ती) विमूढ़ करती हुई (अङ्गानि) इनके अंगों को (गृहाण) वश में कर ले, (परेहि) अधर्म से दूर रह, (अभिप्रेहि) शत्रु के प्रति प्रयाण कर, उन्हें (हृत्सु) हृदयों में (शोकैः) शोकों से (निर्दह) जला दे। (अमित्राः) शत्रुगण (अन्धेन तमसा) गाढ़ अन्धकार से (सचन्ताम्) संयुक्त हो जाएँ।

निरुक्त में 'अप्वा' का अर्थ व्याधि और भय किया है—(अप्वा) यदेनया विद्धोऽपवीयते, व्याधिर्वा भयं वा (निरु० ६।१२।४८)। तदनुसार सायण, उव्वट एवं महीधर ने भी अपने भाष्यों में यही अर्थ दिया है। दयानन्द मन्त्र का समाज-परक अर्थ दिखाते हैं तथा 'अप्वा' का अर्थ शूरवीर क्षत्रिया रानी लेते हैं—"(अप्वे) या अपवाति शत्रुप्राणान् हिनस्ति तत्सम्बुद्धौ। हे अप्वे शूरवीरे राजस्त्रि क्षत्रिये।" अङ्गानि—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक ये चार सेना के अंग कहलाते हैं—हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम् (अमर २।८।३३)। (परेहि) परा इहि दूरं गच्छ। अधर्मात् परेहि—द० भा०। सभापत्यादिभिर्यथाऽतिप्रशंसिता हृष्टपुष्टा साङ्गोपाङ्गा पुरुषसेना स्वीकार्या तथा स्त्रीसेना च। यत्राव्यभिचारिण्यः स्त्रियस्तिष्ठेयुस्तया सेनया शत्रवो वशे स्थापनीयाः (द० भा०, भावार्थ)।

'अप्वा' का अर्थ बाण (इषु) या सम्मोहनास्त्र भी हो सकता है—या अप वाति त्यक्ता दूरं गच्छति सा। मन्त्र में नारी का सम्मोहनास्त्र के अनुरूप वर्णन है।

[१५] हे (ब्रह्मसंशिते) चतुर्वेदविद् विद्वानों द्वारा प्रशंसित तथा शिक्षा से सम्यक् तीक्ष्णीकृत (शरव्ये) बाण आदि शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल नारी, (अवसृष्टा) प्रेरित की हुई तू (परापत) शत्रुओं पर टूट पड़। (गच्छ) जा, (अमित्रान्) मैत्री न करनेवाले शत्रुओं के पास (प्र पद्यस्व) पहुँच। (अमीषां) उनमें से (कञ्चन) किसी को भी (मा उच्छिषः) शेष मत रहने दे।

अन्य भाष्यकारों ने 'शरव्या' का अर्थ 'हिंसाकुशल या सरकण्डे का बना हुआ बाण' किया है—शरव्ये हिंसाकुशले इषो (सायण, ऋग् ६।७५।१६)। शरमयी इषुः शरव्या (उव्वट)। हिंसिका शरमयी हेतिः शरव्या (महीधर)। दयानन्द 'बाण चलाने में कुशल नारी' अर्थ लेते हैं—(शरव्ये) शरेषु बाणेषु साध्वी स्त्री, तत्सम्बुद्धौ। (ब्रह्मसंशिते) ब्रह्मभिः चतुर्वेदविद्भिः प्रशंसिते शिक्षया सम्यक् तीक्ष्णी-कृते। भावार्थ—सभापत्यादिभिः यथा युद्धविद्यया पुरुषाः शिक्षणीयाः तथा स्त्रियश्च। यथा वीरपुरुषा युद्धं कुर्युः तथा स्त्रियोऽपि कुर्वन्तु। ये शत्रवो युद्धे हताः स्युः, तदवशिष्टाश्च शाश्वते बन्धने कारागृहे स्थापनीया (द० भा०)।

[१६] (**या**) जो (**आलाक्ता**) विष-लिप्त बाण के समान रण-संहार मचाने-वाली है, (**रुरु-शीर्ष्णी**) सिर पर रुरु नामक मृग के सींगों का शिरस्त्राण पहननेवाली है, (**अथो**) और (**यस्याः**) जिसका (**मुखं**) सामने का भाग (**अयः**) लोह-कवच से आच्छादित है, उस (**पर्जन्यरेतसे**) पर्जन्य-वीर्या अर्थात् बादल के समान शस्त्रास्त्रों की वर्षा करनेवाली (**इष्वै**) बाण के समान गतिमती, कर्मण्य (**देव्यै**) देवी, तेजोमयी वीरांगना, के लिए (**इदं**) यह (**बृहत्**) बड़ा (**नमः**) नमन हो, नमस्कार हो।

भाष्यकारों ने यह मन्त्र प्रायः बाण-परक व्याख्यात किया है। दयानन्द की व्याख्या नारीपरक है—देव्यै इष्वै शूरवीरायै स्त्रियै (द० भा०)। बाण-पक्ष में 'देव्यै' 'इष्वै' का विशेषण होगा, नारी-पक्ष में 'इष्वै' 'देव्यै का विशेषण। आलाक्ता आलेन विषेण अक्ता दिग्धा इषुः इव संहारकारिणी नारी।

[१७] (**अयं**) यह (**शरारुः**) घातक (**मां**) मुझे (**अवीराम् इव**) अबला या वीर-हीना के समान (**अभिमन्यते**) मान रहा है। (**उत**) परन्तु (**अहं**) मैं (**वीरिणी**) वीर भावों से भरी हुई अथवा वीर पुत्रोंवाली, (**इन्द्रपत्नी**) वीर की पत्नी, और (**मरुत्सखा**) पवनतुल्य वीरों से सख्य स्थापित करनेवाली (**अस्मि**) हूँ। (**इन्द्रः**) मेरा वीर पति (**विश्वस्मात्**) सबसे (**उत्तरः**) उत्कृष्ट है।

[१८] (**अहं**) मैं (**केतुः**) राष्ट्र की ध्वजा हूँ, (**अहं**) मैं (**मूर्धा**) राष्ट्र का सिर हूँ, (**अहं**) मैं (**उग्रा**) उग्र हूँ, (**विवाचनी**) विशेष वाक्-शक्ति से युक्त हूँ। (**सेहानायाः मम**) शत्रु-पराजय-कारिणी मुझ वीरांगना के (**क्रतुम् अनु इत्**) वीरतापूर्ण कर्म के पश्चात् ही (**पतिः**) मेरा पति (**उपाचरेत्**) मुझसे स्नेह करे।

[१९] (**मम**) मेरे (**पुत्राः**) पुत्र (**शत्रु-हणः**) शत्रुहन्ता हैं, (**अथो**) और (**मे**) मेरी (**दुहिता**) पुत्री (**विराट्**) विशेष तेजस्विनी है। (**उत अहं**) और मैं (**संजया**) पूर्ण विजेत्री (**अस्मि**) हूँ। (**मे**) मेरे (**पत्यौ**) पति में (**उत्तमः**) उत्तम (**श्लोकः**) यश है।

[२०] (**येन हविषा**) जिस आत्मोत्सर्ग की हवि से (**इन्द्रः**) मेरा वीर पति (**कृत्वी**) कृतकार्य, (**द्युम्नी**) यशस्वी और (**उत्तमः**) सर्वोत्कृष्ट (**अभवत्**) सिद्ध हुआ है, (**तद्**) उस आत्मोत्सर्ग-रूप हवि को (**इदम् अक्रि**) यह मैंने भी कर दिया है, मैं (**किल**) निश्चय ही (**अ-सपत्ना**) शत्रु-रहित (**अभुवम्**) हो गयी हूँ।

द्युम्नं—यशः (निरु ५।५) तद्वान् द्युम्नी।

[२१] (**जयन्ती**) विजय करती हुई (**अभि-भू-वरी**) शत्रु-पराजय-शीला मैं (**अ-सपत्ना**) शत्रु-रहित हो गयी हूँ, (**सपत्न-घ्नी**) वैरियों का मैंने वध कर दिया है। (**अन्यासां**) रिपु-सेनाओं के (**वर्चः**) तेज को (**आवृक्षं**) मैंने विच्छिन्न कर दिया है, (**इव**) जैसे (**अस्थेयसां**) अस्थिर लोगों का (**राधः**) धन [नष्ट कर दिया जाता है]।

अभिभूवरी—अभिभवित्री, पराजेत्री। **आवृक्षम्**—आ व्रश्चू छेदने, लुङ्, छान्दस रूप। **अस्थेयसाम्**—अस्थिरतराणाम् **राधः**—धन (निघं० २।१०)।

६

वीर-प्रसवा

हे नारी ! तू राष्ट्र के वीरों की जननी है, राष्ट्र के विद्वानों की जननी है, राष्ट्र के वैज्ञानिकों, शिल्पियों और कलाकारों की जननी है, राष्ट्र की बागडोर थामनेवाले राजाओं और राजपुरुषों की जननी है, राष्ट्र के उत्थान की प्रेरणा देनेवाले सर्वस्वत्यागी ब्राह्मणों की जननी है, राष्ट्र-रक्षा के लिए स्वयं को बलिदान कर देनेवाले वीर क्षत्रियों की जननी है, राष्ट्र को समृद्धि के शिखर पर पहुँचानेवाले उद्योगी उद्योगपतियों की जननी है। तेरे जननी-रूप को हम प्रणाम करते हैं। वेदों में राष्ट्र के लिए जिस दिव्य सन्तान की कामना की गयी है, वह सन्तान तेरी ही कुक्षि से जन्म लेती है। राष्ट्र को कैसी सन्तान चाहिए, यह तू वेद के शब्दों में ही सुन :

[1]स्वायुधं स्ववसं सुनीथं
चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शस्यं भूरिवारम्
अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥ ऋग् १०।४७।२

हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्भुत एवं वर्षक सन्तान प्राप्त हो, जो उत्कृष्ट कोटि के हथियारों को चलाने में कुशल हो, उत्तम प्रकार से अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में प्रवीण हो, सम्यक् नेतृत्व करनेवाली हो, धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चार पुरुषार्थ-समुद्रों का अवगाहन करनेवाली हो, विविध सम्पदाओं की धारक हो, अतिशय क्रियाशील हो, प्रशंसनीय हो, बहुतों से वरणीय हो, आपदाओं की निवारक हो।

[2]सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तम्
उरुं गभीरं पृथुबुध्नम् इन्द्र।
श्रुतऋषिम् उग्रम् अभिमातिषाहम्
अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥ ऋग् १०।४७।३

हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्भुत एवं वर्षक सन्तान प्राप्त हो, जो उत्कृष्ट ज्ञान-विज्ञान में पारंगत हो, प्रशस्त माता, पिता, अतिथि आदि देवों की पूजा करनेवाली हो, महान् हो, विशालहृदय हो, गम्भीर हो, बड़े मस्तिष्कवाली हो, ऋषियों के

शास्त्रों एवं उपदेशों को श्रवण करनेवाली हो, उग्र हो, अभिमान और अभिमानी शत्रुओं पर विजय पानेवाली हो।

[3]सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं
धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदम् इन्द्र सत्यम्
अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥ ऋग् १०।४७।४

हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्भुत एवं वर्षक सन्तान प्राप्त हो, जो अन्न, धन, बल आदि की संग्राहक हो, विप्र हो, वीर हो, तारक हो, धनप्रिय हो, अधिकाधिक उन्नतिशील हो, अत्यन्त दक्ष हो, दस्युहन्ता हो, शत्रु-पुरियों की उद्भेदक हो, मन-वचन-कर्म से सत्यशील हो।

[4]अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं
सहस्रिणं शतिनं वाजम् इन्द्र।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षाम्
अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥ ऋग् १०।४७।५

हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्भुत एवं वर्षक सन्तान प्राप्त हो जो अश्वारोही हो, रथारोही हो, वीर भावों से भरपूर हो, सहस्रों का नेतृत्व करनेवाली हो, सैकड़ों गुणों से युक्त हो, बल की मूर्ति हो, भद्र अनुयायियोंवाली हो, ज्ञानियों और वीरों से युक्त हो, सुख बँटनेवाली हो।

[5]गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो
नृवत्सखा सदम् इद् अप्रमृष्यः।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्
दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान्॥ ऋग् ४।२।५

हमारे राष्ट्र को ऐसी सन्तान प्राप्त हो जो गौओंवाली हो अर्थात् दुधार धेनुओं से तथा भूमिरूप गौओं से सम्पन्न हो, 'अवियों' वाली हो अर्थात् भेड़ों को पालनेवाली या भेड़ों से उत्पन्न ऊन आदि पदार्थों से सम्पन्न हो, 'अश्वों' वाली हो अर्थात् घोड़ों एवं प्राणरूप अश्वों से सम्पन्न हो, यज्ञ-रूप हो, पुरुषार्थी सखाओं-वाली हो, सदा ही अपराजेय हो, वाणी पर अधिकार रखनेवाली हो, गतिमयी एवं कर्मण्य हो, प्रशस्त प्रजावाली हो, दीर्घ दृष्टिवाली हो, विशाल मस्तिष्कवाली हो, सभा की संचालिका हो।

[1]अस्मे वीरो मरुतः शुष्मी-अस्तु
जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेम-
अध स्वम् ओको अभि वः स्याम॥ ऋग् ७।५६।२४

हमारे राष्ट्र को ऐसी वीर सन्तान प्राप्त हो जो बलवान् हो, प्राणवान् हो

और जन-जन को सहारा देनेवाली हो, जिसकी सहायता से उत्कृष्ट निवास प्राप्त करने के लिए हम धाराओं के समान उमड़नेवाली विघ्न-बाधाओं को तर जाएँ और लक्ष्य की ओर अग्रसर हों।

[७]अभि नो वाजसातमं, रयिम् अर्ष पुरुस्पृहम्।
इन्दो सहस्रभर्णसं, तुविद्युम्नं विभ्वासहम्॥ ऋग् ६।६८।१

हमारे राष्ट्र को ऐसी सन्तान प्राप्त हो जो अन्न, धन आदि का बढ़-बढ़कर दान करनेवाली हो, अतिशय स्पृहणीय हो, सहस्रों का भरण-पोषण करनेवाली हो, बहुत यशस्वी हो, बड़े-से-बड़े शत्रु को पराजित करनेवाली हो।

हे राष्ट्र की नारी, तू राष्ट्र को इन समस्त गुण-गणों से अलंकृत वेदोक्त सन्तान प्रदान कर।

वेद में अग्नि का गुणगान करते हुए कहा गया है कि वह आत्म-समर्पक हो दिव्य सन्तान प्रदान करता है :

[८]अग्निस्तुविश्रवस्तमं, तुविब्रह्माणम् उत्तमम्।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं, पुत्रं ददाति दाशुषे॥ ऋग् ५।२५।५

अग्नि प्रभु अथवा यज्ञाग्नि आत्म-समर्पण-कर्ता को ऐसा पुत्र प्रदान करता है जो अतिशय कीर्तिसम्पन्न होता है, बहुत ज्ञानी होता है, सबसे उत्कृष्ट होता है, विरोधियों से हिंसित न होनेवाला तथा स्वामी के यश को उज्ज्वल करनेवाला होता है।

[९]अग्निरप्साम् ऋतीषहं, वीरं ददाति सत्पतिम्।
यस्य त्रसन्ति शवसः, संचक्षि शत्रवो भिया॥ ऋग् ६।१४।४

अग्नि प्रभु अथवा यज्ञाग्नि ऐसा वीर पुत्र प्रदान करता है जो कर्मसेवी होता है, आक्रामक सेनाओं का पराजयकारी होता है, सज्जनों का रक्षक होता है और जिसके बल को देखते ही शत्रु भय से सन्त्रस्त हो जाते हैं।

हे राष्ट्र की नारी, राष्ट्र को ऐसा विलक्षण पुत्र प्राप्त कराने में तू ही माध्यम बनती है।

[१०]वृषा जजान वृषणं रणाय
तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्ति-
इनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः॥ ऋग् ७।२०।५

जिस वीर पुत्र को वीर पिता विपदाओं से रण ठानने के लिए पैदा करता है, मानव-समाज का हित करनेवाले उस वीर पुत्र की कोई वीरांगना ही जननी होती है। यह जननी की ही महत्ता है कि वह वीर पुत्र रण-बाँकुरे योद्धाओं का सेनानी बनता है, अनेकों का स्वामी बनता है, सत्त्वशील बनता है, गवेषक और शत्रु-धर्षक बनता है।

"देवेभिर् देव्यदिते अरिष्टभर्मन्नागहि।
स्मत् सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः॥ ऋग् ८।१८।४

हे अखण्डिता, अदीना, अक्षत रूप से भरण-पोषण करनेवाली, अतिशय प्यारी दिव्यगुणमयी माँ, तुम विद्वान्, सुखदायक, जनकल्याणकारी, दिव्यगुणयुक्त पुत्रों के साथ हमारे राष्ट्र में आओ।

हे माँ, हम तुम्हारे जननी-रूप को प्रणाम करते हैं, तुम्हारे जननी-रूप का यशोगान करते हैं। तुम पुरुषार्थी पुत्रों की माता बनो, तुम तेजस्विनी पुत्रियों की माता बनो।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] (इन्द्र) हे परमेश्वर, (अस्मभ्यं) हमें, हमारे राष्ट्र को (सु-आयुधं) उत्कृष्ट शस्त्रास्त्रों को चलाने में कुशल, (सु-अवसम्) उत्तम प्रकार से अपनी तथा दूसरों की रक्षा में प्रवीण, (सु-नीथम्) उत्तम नेतृत्व करनेवाला, (चतुःसमुद्रं) धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चार समुद्रों का अवगाहन करनेवाला, (रयीणां धरुणं) सम्पदाओं को धारण करनेवाला, (चर्कृत्यं) अतिशय क्रियाशील, (शंस्यं) प्रशंसनीय, (भूरिवारं) बहुतों से वरणीय, बहुत-सी विपदाओं का निवारक, (चित्रं) अद्‌भुत, (वृषणं) सुख आदि का वर्षक (रयिं) सन्तानरूप ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर।

वेदभाष्यकारों ने 'रयि' का अर्थ सन्तान या पुत्ररूप धन कई स्थलों पर किया है। प्रस्तुत सूक्त में भी सायण पुत्ररूप धन अर्थ लेते हैं—हे इन्द्र, उक्तगुणविशिष्टं पुत्राख्यं रयिं दाः देहि।

चर्कृत्यम्—पुनः-पुनः कर्तव्येषु कार्येषु साधुम्। अत्र यङ्लुगन्तात् करोतेः क्तः, ततः साध्वर्थे यत्। (द० भा० ऋग् १।६४।१४)।

[२] (इन्द्र) हे परमेश्वर, (अस्मभ्यं) हमें, हमारे राष्ट्र को (सु-ब्रह्माणं) उत्तम ज्ञान-विज्ञान में पारंगत, (देववन्तं) प्रशस्त माता, पिता, अतिथि आदि देवों की सेवा करनेवाला, (बृहन्तं) महान्, (उरुं) विशालहृदय, (गभीरं) गम्भीर, (पृथु-बुध्नं) बड़े मस्तिष्कवाला, (श्रुत-ऋषिं) ऋषियों के शास्त्रों एवं उपदेशों को सुननेवाला, (उग्रं) उग्र, (अभिमाति-षाहं) अभिमान और अभिमानी शत्रुओं पर विजय पानेवाला (चित्रं) अद्‌भुत, (वृषणं) सुख आदि का वर्षक (रयिं) सन्तान-रूप ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर।

बुध्नं—मस्तिष्कम्। बद्धा अस्मिन् धृताः प्राणाः (निरु १०।४४)।

[३] (इन्द्र) हे परमेश्वर, (अस्मभ्यं) हमें, हमारे राष्ट्र को (सनद्-वाजं) अन्न, धन, बल आदि का संग्राहक, (विप्र-वीरं) ज्ञानी और वीर, (तरुत्रं) विपदाओं से तरानेवाला, (धन-स्पृतं) धन का प्रेमी (शूशुवांसं) अधिकाधिक उन्नतिशील, (सु-दक्षं) अत्यन्त दक्ष, (दस्यु-हनं) दस्युहन्ता, (पूर्-भिदं) शत्रु-नगरियों का

उद्भेदक, **(सत्यं)** मन-वचन-कर्म से सत्य, **(चित्रं)** अद्भुत, **(वृषणं)** सुख आदि का वर्षक **(रयिं)** सन्तान-रूप ऐश्वर्य **(दाः)** प्रदान कर।

धनस्पृतम्—धनस्पृहायुक्तम् (द. भा. ऋग्० ५।८।२)। स्पृ प्रीतिपालनयोः। **शूशुवांसम्**—श्वि गतिवृद्ध्योः।

[४] **(इन्द्र)** हे परमेश्वर, **(अस्मभ्यं)** हमें, हमारे राष्ट्र को **(अश्वावन्तं)** अश्वारोही, **(रथिनं)** रथारोही, **(वीरवन्तं)** वीरता के भावों से भरपूर, **(सहस्रिणं)** सहस्रों का नेतृत्व करनेवाला, **(शतिनं)** सैकड़ों गुणों से युक्त, **(वाजं)** वल की मूर्ति, **(भद्र-व्रातं)** भद्र अनुयायी-समूहवाला, **(विप्र-वीरं)** ज्ञानियों और वीरों से युक्त, **(स्वर्-षां)** सुख बाँटनेवाला, **(चित्रं)** अद्भुत, **(वृषणं)** वर्षक, **(रयिं)** सन्तान-रूप ऐश्वर्य **(दाः)** प्रदान कर।

वाज—वल (निघं० २।९) **स्वर्षाम्**—स्वः सुखं सनोति ददाति यः तम्। षणु दाने।

[५] **(असुर)** हे प्राणप्रदाता **(अग्ने)** अग्रणी परमेश्वर, **(रयिं)** [हमारा] सन्तान-रूप ऐश्वर्य **(गोमान्)** प्रशस्त गायों और भूमियों का स्वामी, **(अविमान्)** प्रशस्त भेड़ों का स्वामी, **(अश्वी)** प्रशस्त घोड़ों एवं प्राणों का स्वामी, **(यज्ञः)** यज्ञ-रूप, **(नृवत्-सखा)** पुरुषार्थी मित्रोंवाला, **(सदम् इत्)** सदा ही, **(अप्रमृष्यः)** अपराजेय, **(इडावान्)** वाणी पर अधिकार रखनेवाला, **(एषः)** गतिमान्, कर्मण्य, **(प्रजावान्)** प्रशस्त प्रजावाला, **(दीर्घः)** दीर्घदृष्टि, **(पृथु-बुध्नः)** विशाल मस्तिष्क-वाला तथा **(सभावान्)** सभा का संचालक हो।

असुरः—असून् प्राणान् राति ददाति यः सः। **एषः**—इण् गतौ, स प्रत्यय।

[६] **(मरुतः)** हे राष्ट्रनायक मानवो, **(अस्मे)** हमारा, हमारे राष्ट्र का **(वीरः)** पुत्र, **(शुष्मी)** वलवान्, **(अस्तु)** हो, **(यः)** जो **(असु-रः)** प्राणवान् और प्राणदाता होकर **(जनानां)** जन-जन का **(विधर्ता)** सहारा देनेवाला हो, **(येन)** जिसके द्वारा **(सुक्षितये)** उत्कृष्ट निवास प्राप्त करने के लिए हम **(अपः)** धाराओं को, धाराओं के समान उमड़नेवाली विघ्न-बाधाओं को **(तरेम)** पार कर लें, **(अध)** और **(वः)** आपके हम **(स्वं)** अपने **(ओकः अभि)** घर की ओर, लक्ष्य की ओर **(स्याम)** अग्रसर हों।

शुष्मी—शुष्मं वलम् (निघं० २।९)। **सु-क्षितये**—सु, क्षि निवासगत्योः।

[७] **(इन्दो)** हे भक्तों के प्रति द्रवित होनेवाले सोम प्रभु, तुम **(नः अभि)** हमारी ओर **(वाज-सा-तमं)** अन्न, धन आदि का अतिशय दान करनेवाला, **(पुरु-स्पृहं)** वहुत अधिक स्पृहणीय, **(सहस्र-भर्णसं)** सहस्रों का भरण-पोषण करनेवाला, **(तुवि-द्युम्नं)** वहुत यशस्वी, **(विभ्वा-सहं)** बड़े-बड़ों को पराजित करनेवाला **(रयिं)** सन्तान-रूप ऐश्वर्य **(अर्ष)** प्रेरित करो।

विभ्वासहम्—यो विभून् आ सहते तम् (द० भा०, ऋग् ५।१०।७)।

[८] (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी परमेश्वर अथवा यज्ञाग्नि, (दाशुषे) आत्म-समर्पक अथवा हवि-समर्पक को (तुवि-श्रवस्-तमं) अत्यधिक यशस्वी, (तुवि-ब्रह्माणं) अतिशय ज्ञानी, (उत्तमं) सर्वोत्कृष्ट, (अतूर्तं) किसी से हिंसित न होनेवाला, (श्रावयत्-पतिं) स्वामी को कीर्ति दिलानेवाला (पुत्रं) पुत्र (ददाति) प्रदान करता है।

अतूर्तम्—अहिंसितम्। तुर्वी हिंसायाम्। तुविश्रवस्तमम्—तुवि बहु (निघं० ३।१), श्रवः यशः (निरु० ११।६)।

[९] (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी परमेश्वर अथवा यज्ञाग्नि (अप्-सां) कर्मसेवी, (ऋती-षहं) आक्रामक सेनाओं का पराजेता, (सत्-पतिं) सज्जनों का रक्षक (वीरं) वीर पुत्र (ददाति) प्रदान करता है, (यस्य) जिसके (शवसः) बल के (संचक्षि) देखने पर (शत्रवः) शत्रुगण (भिया) भय से (त्रसन्ति) त्रस्त हो जाते हैं।

अप्साम—अपांसि कर्माणि सनति संभजते इति अप्साः, तम्। अपस् कर्म (निघं २।१)।

[१०] जिस (वृषणं) वीर को (रणाय) रण ठानने के लिए (वृषा) वीर पिता (जजान) पैदा करता है, (तम् उ) उस (नर्यं) मानव-समाज के हितकर्ता पुत्र को (नारी चित्) पौरुषवती नारी ही (ससूव) जन्म देती है, (यः) जो पुत्र (नृभ्यः) पुरुषार्थी योद्धा-जनों के लिए (प्र सेनानीः) उत्कृष्ट सेनापति (अस्ति) होता है, (इनः) स्वामी, (सत्वा) सत्त्वशील, (गवेषणः) गवेषक, और (धृष्णुः) शत्रु-धर्षक बनता है।

[११] हे (अदिते) अखण्डित, अदीन, (अरिष्ठ-भर्मन्) अक्षत रूप से भरण-पोषण करनेवाली, (पुरु-प्रिये) अतिशय प्यारी (देवि) दिव्यगुणमयी माँ, तुम (सूरिभिः) विद्वान् (सु-शर्मभिः) उत्कृष्ट सुख देनेवाले, जन-कल्याणकारी (देवेभिः) दिव्यगुणयुक्त पुत्रों के साथ (स्मत्) शुभ रूप से (आगहि) आओ।

स्मत्—शोभनं यथा भवति तथा (सायण)। स्मत्—श्रेष्ठार्थे (द० भा० ऋग् १।५१।१५), प्रशंसायाम् (द० भा०, ऋग् १।१८६।६)।

७

विद्यालंकृता

हे नारी, तू विद्यालंकृता और उत्तम शिक्षिका है। बालक जब तेरे गर्भ में होता है तभी से तू उसे शिक्षित करना आरम्भ कर देती है। जन्म के पश्चात् सन्तानों के मन में बचपन से ही तू निर्भयता, वीरता, सत्यशीलता, सदाचार आदि के बीज अंकुरित करती है और उन्हें अक्षराभ्यास के साथ-साथ सुन्दर-सुन्दर सूक्तियों का पाठ पढ़ाती है। तू अपनी विद्वत्ता से परिवार के सदस्यों को समय-समय पर मार्गदर्शन कराती हुई कर्त्तव्योन्मुख करती है। तू कन्या-गुरुकुलों में अध्यापिका और आचार्या बनकर ब्रह्मचारिणियों को शास्त्र एवं सच्चारित्र्य की शिक्षा देती है।

हे महनीय नारी, वेद ने तुझे 'सरस्वती' नाम से स्मरण किया है। तेरे अन्दर प्रशस्त विद्या-सलिल तरंगित होता रहता है और अपनी सन्तानों तथा शिष्याओं को तू उस विद्या-सलिल में स्नान कराकर स्नातिका बनाती है, इसी कारण तेरा नाम 'सरस्वती' है। उपदेशिका बनकर कल-कल-निनादिनी नदी की धारा के समान इतस्ततः भ्रमण करती हुई तू उपदेश भी प्रदान करती है।

हे विदुषी, आज वेद के शब्दों में हम तुझे स्मरण कर रहे हैं :

[1]पावका नः सरस्वती, वाजेभिर् वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ यजु २०।८४

विदुषी नारी अपने विद्या-बलों से हमारे जीवनों को पवित्र करती रहे। वह कर्मनिष्ठ बनकर अपने कर्मों से हमारे व्यवहारों को पवित्र करती रहे। अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा सन्तानों एवं शिष्याओं में सद्गुणों और सत्कर्मों को बसानेवाली वह देवी गृहाश्रम-यज्ञ एवं ज्ञान-यज्ञ को सुचारु रूप से संचालित करती रहे।

[2]चोदयित्री सूनृतानां, चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ यजु २०।८५

विदुषी नारी हमें मधुर, प्यारी, सच्ची वाणियाँ बोलने की प्रेरणा करती है, हमारे अन्दर सुनीतियों को जागृत करती है। वह हमारे गृहाश्रम-यज्ञ, व्यवहार-यज्ञ एवं ज्ञान-यज्ञ को संचालित करती है।

[४]महो अर्णः सरस्वती, प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा विराजति॥ यजु २०।८६

विदुषी नारी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा से हमारे मध्य ज्ञान के उमड़ते प्रवाह को ले आती है। वह हमारे समग्र ज्ञानों, विचारों एवं कर्मों को प्रकाश से उद्भासित करती है।

[५]यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः
सरस्वति तमिह धातवे कः॥ ऋग् १।१६४।४९

हे विदुषी, जो तेरा ज्ञान-रूप स्तन बड़ा ही विश्रामदायक एवं आनन्ददायक है, जिससे तू हमारे अन्दर समस्त वरणीय गुणों को पुष्ट करती है, जो हमारे अन्दर रमणीयताओं का आधान करता है, जो हमें ज्ञान-सम्पदा प्राप्त कराता है, जो हमें अनेक उत्कृष्ट देनें देता है, उस दिव्य स्तन को हमें पान कराने का उपक्रम कर।

[६]अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥ ऋग् २।४१।१६

हे उच्चकोटि का अध्यापन करनेवाली, अव्यक्त रहस्यमय विद्याओं की कुशल उपदेशिका, सद्विद्या से अतिशय प्रदीप्त करनेवाली विदुषी माँ, हमारे जीवन अप्रशस्त-से हो गये हैं, तू अपने सदुपदेश से हमें प्रशस्ति प्रदान कर।

[७]त्वे विश्वा सरस्वति, श्रितायूंषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व, प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ ऋग् २।४१।१७

हे विदुषी, तुझ देवी पर सब जीवन आश्रित हैं, क्योंकि तू सबको यथायोग्य शिक्षा देती है। जो विद्यावृद्ध हैं, उनके बीच में तू आनन्द-लाभ कर और हे देवी, जो अविद्वान् प्रजा है उसे उपदेश देकर शिक्षित कर।

[८]पावीरवी कन्या चित्रायुः
सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा
दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत्॥ ऋग् ६।४९।७

चरितों को पवित्र करनेवाली, कमनीय गुण-कर्म-स्वभाववाली, अद्भुत जीवनवाली, वीर पति की पत्नी विदुषी नारी सबको उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट कर्म का उपदेश करे। प्रीतिपूर्वक सेवा करनेवाली वह अपनी सुशिक्षित अमृत-वाणियों से वेदपाठियों को निर्दोष शरण और अकाट्य सुख प्रदान करती रहे।

[९]इयं शुष्मेभिर् बिसखाइवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।

पारावतघ्नीम् अवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीम् आ विवासेम धीतिभिः ॥ ऋग् ६।६१।२

जैसे नदी अपनी बलवान् बड़ी-बड़ी लहरों से पर्वतों की सुदृढ़ उन्नत शिलाओं को उसी प्रकार अनायास तोड़ देती है, जिस प्रकार कोई कमल-नाल को तोड़ता है, वैसे ही विदुषी नारी अपनी छा जानेवाली बलवती वाणियों और प्रज्ञाओं से विरोधियों के कुतर्कों को काट देती है, और प्रतिद्वन्द्वियों के शब्द-जालरूप पारावार को भेद देती है। आओ, परम विदुषी नारी की हम सुप्रवृत्त वाणियों और कर्मों से पूजा करें।

[9]सरस्वति देवनिदो नि बर्हय
प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो
विषम् एभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ऋग् ६।६१।३

हे विदुषी, शिक्षा और सदुपयोग द्वारा लोगों के हृदय से देव-निन्दक प्रवृत्तियों को नष्ट कर, समस्त विद्याच्छादक मायावी लोगों की उत्पादित अविद्यारूप प्रजा को विच्छिन्न कर। मनुष्यों को रक्षक वेद-वाणियाँ प्राप्त करा। हे उत्तम कर्मों का आचरण करनेवाली विदुषी, तू मानवों के प्रति ज्ञान-रस को वैसे ही प्रवाहित कर जैसे नदी जल को प्रवाहित करती है।

[10]भद्रम् इद् भद्रा कृणवत् सरस्वती
अकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्
स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ऋग् ७।९६।३

भद्र गुण-कर्म-स्वभाववाली विदुषी नारी सबका भला ही करती है, अकुत्सित आचरणवाली ज्ञान-कर्म-परायणा वह विदुषी सबको ज्ञानवान् एवं जागरूक बनाती है। मन्त्रोच्चारण करनेवाले प्रज्वलिताग्नि अग्निहोत्रियों के समान वह सदुपदेश देती है और अतिशय ज्ञान-धन से सम्पन्न विद्वानों के समान प्रत्येक पदार्थ के गुण-धर्मों को बतलाती है।

[11]सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
सरस्वतीम् अध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त
सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ऋग् १०।१७।७

जो लोग समाज को देव बनाने के इच्छुक होते हैं वे विदुषी नारी को आदरपूर्वक बुलाते हैं। जब किन्हीं यज्ञ-कर्मों का ताना तना जा रहा होता है तब भी विदुषी नारी की पुकार होती है। पुण्य-कर्मों में तत्पर मानव भी पुण्य कर्मों की धारा को प्रवृत्त रखने के लिए विदुषी नारी का आह्वान करते हैं। विदुषी नारी

को जो सम्मान देते हैं उन्हें वह वरणीय ऐश्वर्य, उपदेश, सुख आदि प्रदान करती है।

[१२]गौरीर् मिमाय सलिलानि तक्षती-
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥ ऋग् १।१६४।४१

विद्या-प्रकाश से आरोचमान विदुषी नारी ज्ञान-सलिलों को बरसाती हुई सदुपदेश करती है। वह ओंकार-रूप एक पद का ध्यान-चिन्तन करती है। वह अभ्युदय और निःश्रेयसरूप दो पदों को जीवन में चरितार्थ करती है। वह चार वेदरूप चार पदों का अध्ययन-अध्यापन करती है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चार पदों की प्राप्ति करने-कराने में भी यत्नशील रहती है। वह चार वर्ण और चार आश्रमरूप आठ पदों का समाज में प्रचार करती है। वह पाँच ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण-चतुष्टय इन नौ तत्त्वों को आत्मा में केन्द्रित करने का अभ्यास करती और कराती है। वह सहस्रों अक्षरों का उच्चारण करती हुई उच्च राष्ट्र में अपनी वाणी को प्रसारित करती है।

[१३]यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे
यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं
सरस्वती तदापृणद् घृतेन॥ अथर्व ७।५७।१

जब मैं किन्हीं लोगों से वार्तालाप कर रहा होता हूँ तब कई बार मेरा मन किसी आघात से विक्षुब्ध हो जाता है। जब मैं किसी सत्कार्य की पूर्ति के लिए लोगों से धन माँगता हूँ, तब भी कई बार दान के अनिच्छुक लोगों की टीका-टिप्पणियों से मेरे मन में विक्षोभ आ जाता है। इसी प्रकार कई बार किसी के व्यवहार से मेरे शरीर या आत्मा को आघात पहुँच जाता है। विदुषी नारी अपने सद्भावना और सदुपदेशरूपी घृत (मरहम) से उन विक्षोभों और आघातों से उत्पन्न मेरे घाव को भर दे।

हे प्रभु, हमारे राष्ट्र में विदुषी नारियाँ उत्पन्न हों और हम उनका सम्मान करना सीखें, जिससे हमारा राष्ट्र गौरव के शिखर पर आसीन हो सके।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] (वाजिनीवती) ज्ञान-कर्मनिष्ठ (सरस्वती) विदुषी नारी (वाजेभिः) विद्या-बलों और कर्मों से (नः पावका) हमें पवित्र करनेवाली हो। (धियावसुः) ज्ञान और सत्कर्म की शिक्षा द्वारा निवास करानेवाली वह (यज्ञं) गृहाश्रम-यज्ञ एवं ज्ञान-यज्ञ को (वष्टु) मनोयोग से संचालित करती रहे।

विद्या, वाणी, नदी, नाड़ी आदि के अतिरिक्त 'सरस्वती' का एक अर्थ विदुषी

नारी भी होता है। दयानन्द-भाष्य में अनेक स्थलों पर यह अर्थ किया गया है, यथा—(सरस्वती) विदुषी स्त्री (यजु १६।१८), प्रशस्तज्ञानयुक्ता पत्नी (यजु० १६।८२), विदुषी शिक्षिता माता (यजु २०।६४), (सरस्वतीम्) बहुविधं सरो वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्याः तां विज्ञानयुक्ताम् अध्यापिकां स्त्रियम् (यजु० ६।२७)।

वाजिनीवती प्रशस्तविज्ञानक्रियासहिता (ऋग् ६।६१।४ द. भा.)। धियावसुः या धिया प्रज्ञया सुकर्मणा वा वासयति सा (द्रष्टव्यः ऋग् ३।२८।१ द० भा०)। धीः कर्म प्रज्ञा च (निघं० २।१, ३।६)। वस्टु, वश कान्तौ।

[२] (सूनृतानां) मीठी, प्यारी, सच्ची वाणियों को (चोदयित्री) प्रेरित करनेवाली, (सुमतीनां) सुमतियों को (चेतन्ती) जागृत करनेवाली (सरस्वती) विदुषी नारी (यज्ञं) गृहाश्रम-यज्ञ, व्यवहार-यज्ञ एवं ज्ञान-यज्ञ को (दधे) धारण करती है, संचालित करती है।

[३] (सरस्वती) विदुषी नारी (केतुना) ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा से (महः अर्णः) महान् ज्ञान-प्रवाह को (प्रचेतयति) ज्ञापित कर देती है। वह (विश्वाः धियः) हमारे समस्त ज्ञानों, विचारों और कर्मों को (विराजति) उद्भासित कर देती है।

केतुना—कर्मणा प्रज्ञया वा (निरु० ११।२७)। प्रचेतयति—प्रज्ञापयति, चिती संज्ञाने। धियः—कर्माणि प्रज्ञाः च (निघं० २।१, ३।६)।

[४] (सरस्वति) हे विदुषी नारी, (यः) जो (ते स्तनः) तेरा ज्ञान-रूप स्तन (शशयः) विश्राम में सुलानेवाला है, (यः) जो (मयोभूः) आनन्ददायक है, (येन) जिससे तू (विश्वा वार्याणि) समस्त वरणीय गुणों को (पुष्यसि) परिपुष्ट करती है, (यः) जो (रत्न-धा) रमणीयताओं का आधान करनेवाला, और (वसु-वित्) दिव्य सम्पदा प्राप्त करानेवाला है (तम्) उसे (इह) यहाँ (धातवे कः) पिलाने का उपक्रम कर।

शशयः—अतिशयेन पुनः-पुनः शाययति स्वापयति यः सः (शीङ् स्वप्ने)। मयोभूः—यो मयः आनन्दं भावयति सः (द० भा०, यजु १८।४५)। रत्नधा—रत्नानि रमणीयानि धनानि (निरु० ७।१५) दधाति यः सः।

[५] (अम्बितमे) हे उत्कृष्ट कोटि का अध्यापन करनेवाली, (नदीतमे) हे अव्यक्त रहस्यमय विद्याओं की कुशल उपदेशिका, (देवितमे) हे सद्विद्या से अतिशय प्रदीप्त करनेवाली (सरस्वति अम्ब) विदुषी माँ, हम (अप्रशस्ताः इव) अप्रशस्त से (स्मसि) हो गये हैं, (नः) हमारी (प्रशस्तिं) प्रशस्ति (कृधि) कर।

सायण आदि का भाष्य नदीपरक है। दयानन्द ने विदुषीपरक अर्थ किया है—अथ विदुषीविषयम् आह। (अम्बितमे) या अम्बते अध्यापयति सा अतिशयिता, तत्सम्बुद्धौ [अबि शब्दे]। (नदीतमे) अतिशयेन अव्यक्तविद्योपदेशिके

[नद अव्यक्ते शब्दे]। (देवितमे) अतिशयेन विदुषि। (सरस्वती) बहुविज्ञानवति। (अम्ब) मातः अध्यापिके।

भावार्थ—यावत्यः कुमार्यः सन्ति ता विदुषीणां सकाशाद् अधीयीरन्। ता ब्रह्मचारिण्यो विदुषीः एवं प्रार्थयेयुः भवत्योऽस्मान् विद्यासुशिक्षा-युक्ताः कुरुत इति।

[६] (सरस्वति) हे विदुषी, (त्वे देव्यां) तुझ देवी पर (विश्वा आयूंषि) सब जीवन (श्रिता) आश्रित हैं। तू (शुनहोत्रेषु) विद्यावृद्धों के बीच में (मत्स्व) आनन्दित हो, और (देवि) हे देवी, (नः) हमारी (प्रजां) प्रजा को (दिदिड्ढि) उपदेश कर।

(सरस्वति) परमविदुषि, (देव्याम्) विदुष्याम्, (शुनहोत्रेषु) प्राप्तयोगज-विद्याद्येषु, (मत्स्व) आनन्द,(दिदिड्ढि) उपदिश।—द० भा०। शुनहोत्रेषु—शुनं वृद्धत्वेन प्राप्तं होत्रं विविधज्ञानविज्ञानं यैः तेषु शिव गतिवृद्ध्योः। हूयते दीयते गुरुणा इति होत्रं ज्ञानम्।) दिदिड्ढि—दिश अतिसर्जने।

[७] (पावीरवी) पवित्र करनेवाली, (कन्या) कमनीय गुण-कर्म-स्वभाव-वाली, (चित्रायुः) अद्भुत जीवनवाली (वीर-पत्नी) वीर पति की पत्नी (सरस्वती) विदुषी नारी (धियं धात्) ज्ञान और कर्म का उपदेश करे। (स-जोषाः) प्रीति-पूर्वक सेवा करनेवाली वह (गृणते) वेदपाठी शिष्य को (ग्नाभिः) वाणियों से (अच्छिद्रं) निर्दोष (शरणं) आश्रय, और (दुराधर्षं) दुष्पराजेय (शर्म) सुख (यंसत्) प्रदान करे।

(पावीरवी) शोधयित्री, (कन्या) कमनीया, (धियम्) शास्त्रोत्थां प्रज्ञाम् उत्तमं कर्म वा, (ग्नाभिः) सुशिक्षिताभिः, वाग्भिः, (शर्म) गृहं सुखं वा। (यंसत्) ददाति।—द० भा०

[८] जैसे नदी (शुष्मेभिः) बलवान्, (तविषेभिः) बड़ी-बड़ी (ऊर्मिभिः) लहरों से (गिरीणां) पर्वतों के (सानु) उभरे हुए तटों को (अरुजत्) तोड़ देती है, वैसे ही (इयं) यह विदुषी नारी (बिसखाः इव) कमल-नाल को तोड़नेवाले की न्याईं अनायास (शुष्मेभिः) बलवान् (तविषेभिः) महान् (ऊर्मिभिः) छा जाने-वाली वाणी एवं प्रज्ञारूप लहरों से (गिरीणां) पर्वत के समान उन्नत विरोधियों के (सानु) कुतर्करूप तटों को (अरुजत्) छिन्न-भिन्न कर देती है। (पारावतघ्नीं) प्रतिद्वन्द्वी के शब्दजाल-रूप पारावार को भेद देनेवाली (सरस्वतीं) उस विदुषी नारी की हम (अवसे) रक्षा के लिए (सुवृक्तिभिः धीतिभिः) सुप्रवृत्त वाणियों और कर्मों से (आ विवासेम) पूजा करें।

ऊर्मि—ऊर्णोतिः (निरु० ५।२४), ऊर्णुञ् आच्छादने। तविष—महान् (निघं० ३।३)। 'पारावतघ्नीम्—पारावारघातिनीम्। सुवृक्तिभिः सुप्रवृत्ताभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः। धीतिभिः कर्मभिः (निरु० २।२३)।

[९] (सरस्वति) हे विदुषी, तू (देव-निदः) देव-निन्दक प्रवृत्तियों को (नि बर्हय) निःशेष रूप से नष्ट कर दे। (बृसयस्य) विद्या के आच्छादक (मायिनः)

मायावी (विश्वस्य) सबकी (प्रजां) उत्पन्न की हुई अविद्यारूप प्रजा को (नि बर्हय) नष्ट कर। (उत) और (क्षितिभ्यः) मनुष्यों को (अवनीः) रक्षक वेद-वाणियाँ (अविन्दः) प्राप्त करा। (वाजिनीवति) हे उत्तम कर्मों का आचरण करनेवाली विदुषी, तू (एभ्यः) इन मानवों के लिए (विषं) ज्ञान-सलिल को (अस्रवः) प्रवाहित कर।

बृसयस्य—आच्छादकस्य। वस आच्छादने इत्यस्मात् पृषोदरादित्वाद् इष्ट-रूपसिद्धिः (ऋग् १।९३।४ द० भा०)। बृसिः वेष्टनार्थः, बृसयति सर्वं वेष्टयतीति बृसयः असुरः (सायण)। विषम्—विषम् इति उदकनाम विष्णातेः वि पूर्वस्य वा सचतेः (निरु० १२।२५।१४)। नि बर्हय—नि वर्ह हिंसायाम्।

[१०] (भद्रा) भद्र [गुण-कर्म-स्वभाववाली] (सरस्वती) विदुषी नारी (भद्रम् इत्) भला ही (कृणवत्) करती है। (अ-कवारी) अकुत्सित आचरणवाली, (वाजिनीवती) प्रशस्त ज्ञान और कर्मवाली वह विदुषी (जमदग्निवत्) अग्नि प्रज्वलित करनेवाले अग्निहोत्रियों के समान (गृणाना) उपदेश करती हुई (वसिष्ठवत् च) और अतिशय ज्ञानरूप वसुवाले विद्वानों के समान (स्तुवाना) प्रत्येक पदार्थ की स्तुति अर्थात् गुण-वर्णन करती हुई (चेतति) ज्ञान एवं जागृति प्रदान करती है।

अकवरी—अकुत्सितगमना (सायण)। जमदग्निवत्—जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा (निरु० ७।२४)। वसिष्ठवत्—वसिष्ठः अतिशयेन वसुमान् (ऋग् ७।३३।१२ द० भा०) यो वसति धर्मादिकर्मसु सोऽतिशयितः (ऋग् १।११२।९ द० भा०) अतिशयेन वासयिता (यजु १३।५४ द० भा०)।

[११] (देवयन्तः) समाज को देव बनाने के इच्छुक लोग (सरस्वतीं) विदुषी नारी को (हवन्ते) आदरपूर्वक बुलाते हैं। (अध्वरे) यज्ञ का (तायमाने) ताना तने जाने पर भी (सरस्वतीं) विदुषी नारी को (हवन्ते) आदरपूर्वक बुलाते हैं। (सुकृतः) पुण्यकर्ता-जन भी (सरस्वतीं) विदुषी नारी को (अह्वयन्त) आदरपूर्वक बुलाते हैं। (सरस्वती) विदुषी नारी (दाशुषे) सम्मान देनेवाले को (वार्यं) वरणीय ऐश्वर्य, उपदेश, सुख आदि (दात्) प्रदान करती है।

[१२] (गौरीः) विद्या-प्रकाश से आरोचमान विदुषी नारी (सलिलानि) ज्ञान-सलिलों को (तक्षती) बरसाती हुई (मिमाय) उपदेश करती है। (सा) वह (एक-पदी) ओंकार-रूप एक पदवाली, (द्वि-पदी) अभ्युदय और निःश्रेयसरूप दो पदोंवाली, (चतुष्-पदी) चार वेदरूप या चार पुरुषार्थरूप चार पदोंवाली, (अष्टा-पदी) ब्राह्मणादि चार वर्ण और ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम इन आठ पदोंवाली, (नव-पदी) पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन-बुद्धि-चित्त-अहंकाररूप अन्तःकरण-चतुष्टय इन नौ पदोंवाली (बभूवुषी) होती हुई (परमे व्योमन्) उच्च राष्ट्र में (सहस्राक्षरा) सहस्रों अक्षरों का उच्चारण करती हुई [उपदेश देती है]।

गौरी रोचते: ज्वलतिकर्मण: (निरु० ११।३६।२८), रुच दीप्तौ, आद्यन्त-विपर्यय, चौरी, गौरी। **गौरी:** गौरी। 'सुलोपाभाव: छान्दस:' (सायण)। इस मंत्र का दयानन्द-भाष्य भी द्रष्टव्य है। वहाँ एक पद से एक वेद, द्विपद से दो वेद, चतुष्पद से चार वेद, अष्टापद से चार वेद और चार उपवेद, नवपद से चार वेद, चार उपवेद तथा नवाँ व्याकरणादि गृहीत किये हैं। भावार्थ में लिखा है—"या: स्त्रिय: सर्वान् साङ्गोपाङ्गान् वेदानधीत्य अध्यापयन्ति ता: सर्वान् मनुष्यान् उन्नयन्ति" अर्थात् जो स्त्रियाँ सब सांगोपांग वेदों को पढ़के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं।

[१३] (यत्) जब (वदत:) वार्तालाप करते हुए (मे) मेरा मन (आशसा) किसी आघात से (विचुक्षुभे) विक्षुब्ध हो जाता है, (यत्) जब (जनान् अनु) लोगों को लक्ष्य करके (याचमानस्य) [किसी सत्कार्य में सहायतार्थ धन आदि] माँगते हुए (चरत:) भटकते हुए (मे) मेरा मन (विचुक्षुभे) विक्षुब्ध हो जाता है, (यत्) जब (आत्मनि) आत्मा में अथवा (तन्व:) शरीर पर (मे विरिष्टं) मुझे कोई आघात पहुँच जाता है, (तत्) तब (सरस्वती) विदुषी नारी उस विक्षोभ और आघात को (घृतेन) सद्भावना एवं सदुपदेशरूप मरहम से (आपृणद्) भर दे।

आशसा—आङ् शसु हिंसायाम्। **विचुक्षुभे**—वि शुभ संचलने। **विरिष्टम्**—वि रिष हिंसायाम्। **आपृणत्**—आ पृण प्रीणने, अत्र पूरणे वर्तते।

८

स्नेहमयी माँ

हे माँ, तुम रसमयी हो, स्नेहमयी हो, हम सन्तानों के हित के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देनेवाली हो। हे माँ, तुम त्यागमयी हो, दयामयी हो, क्षमामयी हो, सत्यमयी हो, ज्ञानमयी हो, कर्ममयी हो, धर्ममयी हो। वेद ने तुम्हें 'आपः', 'सरस्वती', 'उषा', 'अदिति', 'असुनीति', 'पृथिवी', 'विद्युत्', 'अम्बा', 'देवी,' आदि शब्दों से स्मरण किया है। तुम स्नेहमय एवं शोधक जलों के समान वात्सल्य-रस से परिपूर्ण तथा शोधक होने के कारण 'आपः' हो। तुम निर्मलतोया नदी के समान ज्ञान-सलिल सेप रिपूर्ण होने के कारण 'सरस्वती' हो। तुम प्रकाशमयी प्राकृतिक उषा के समान बौद्धिक स्फुरण से देदीप्यमान होने के कारण 'उषा' हो। तुम आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं से अखण्डित एवं अदीन होने के कारण 'अदिति' हो। तुम अपने तथा अपनी सन्तानों के शरीर में प्रशस्त प्राणों का नयन करने के कारण 'असुनीति' हो। तुम विस्तीर्ण भूमि के समान विशाल हृदय वाली होने के कारण 'पृथिवी' हो। तुम विजली के समान तेजोमयी होने के कारण 'विद्युत्' हो। तुम समयानुसार सदुपदेश करने के कारण 'अम्बा' हो। तुम दिव्य गुणों से जगमगाने के कारण 'देवी' हो। हे माँ, तुम पर हमें गर्व हो, तुम जैसा बनने के लिए हम प्रयत्नशील हों, तुम्हारी शिक्षाओं से हम प्रभावित हों।

[1]आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु
घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः
उद् इद् आभ्यः शुचिरा पूत एमि॥ ऋग् १०।१७।१०

जलों के समान शुद्ध करनेवाली माताएँ हमारे अन्तःकरणों को शुद्ध करें। घृत और तेज के द्वारा पवित्रता देनेवाली वे हमें शुद्ध घृत का सेवन कराकर तथा अपनी तेजस्विता के द्वारा हमें पवित्र करें। दिव्यगुणमयी माताएँ सब दोषों एवं पापों को दूर करने की क्षमता रखती हैं। इनके सांनिध्य से शुद्ध-पवित्र प्रदीप्त होकर मैं वाहर कार्यक्षेत्र में पदार्पण करता हूँ।

[2]इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्।
आपो मा तस्माद् एनसः पवमानश्च मुञ्चतु॥ यजु ६।१७

हे चित्त को शुद्ध करनेवाली जल-तुल्य माताओ, यह जो मेरे अन्दर निन्दनीय और मलिन प्रवृत्तियाँ हैं उन्हें दूर बहा दो। जो मैं किसी से द्रोह करता हूँ, जो असत्य भाषण या असत्य आचरण करता हूँ और जो किसी निर्भय सज्जन व्यक्ति के प्रति अपशब्द बोलता हूँ या उसे कोसता हूँ, उस पाप से हे माताओ, तुम और पवित्रताकारक पिता हमें छुड़ा देवें।

[3]मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत
प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत
श्रोत्रं मे तर्पयत-आत्मानं मे तर्पयत
प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत
गणान् मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन्॥ यजु ६।३१

हे जलों के समान तृप्तिदायक माताओ, मेरे मन को उत्तम संकल्प से तृप्त करो, मेरी वाणी को सत्य एवं माधुर्य से तृप्त करो, मेरे प्राण को प्राणन-शक्ति से तृप्त करो, मेरी आँख को भद्रदर्शन से तृप्त करो, मेरे कान को भद्र श्रवण से तृप्त करो, मेरी आत्मा को आत्म-बल से तृप्त करो, मेरी प्रजा को सद्गुणों से तृप्त करो, मेरे पशुओं को पुष्टि से तृप्त करो, मेरे परिवार एवं समाज के सदस्यों को पारस्परिक सौहार्द आदि से तृप्त करो, वे मेरे गण किसी भी दृष्टि से अतृप्त न रहें।

[4]इदं व आपो हृदयम्, अयं वत्स ऋतावरीः
इहेत्थम् एत शक्वरीर्, यत्रेदं वेशयामि वः॥ अथर्व ३।१३।७

हे सत्याचरणमयी और जलों के समान स्नेहमयी माताओ, तुम्हारा हृदय अत्यन्त पावन है, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। हे शक्तिमयी माताओ, अपनी ओर मैं तुम्हारे हृदय को प्रेरित करता हूँ, वहाँ तुम पहुँचो और अपना स्नेह प्रदान करो।

[5]उत स्या नः सरस्वती, घोरा हिरण्यवर्तनिः।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम्॥ ऋग् ६।६१।७

जो दुष्टता, अविद्या, दुर्व्यसन, दुराचार आदि के प्रति घोर है, जो आकाश में सुनहरी रेखा खींचनेवाली विद्युत् के समान स्वर्णिम चरित्र की आभा बखेरने-वाली है, जो पाप का वैसे ही हनन कर देती है, जैसे बिजली बादल का हनन करती है, वह प्रेम-रसमयी वीरांगना माँ हमसे यह चाहती है कि हम ऐसे बनें कि हमारी उत्कृष्ट स्तुति हो, हमारा सर्वत्र यशोगान हो।

[6]शिवा नः शन्तमा भव, सुमृडीका सरस्वति।
मा ते युयोम संदृशः॥ अथर्व ७।६८।२

हे प्रेमरसमयी माँ, तुम हमारे लिए मंगलकारिणी बनो, तुम हमारे लिए शान्ति बरसानेवाली बनो, तुम हमारे लिए उत्कृष्ट सुख देनेवाली बनो। हम तुम्हारी कृपा-दृष्टि से कभी वंचित न हों।

[७]क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया
इष्टये त्वम् अर्थमिव त्वम् इत्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष
उषा अजीगर् भुवनानि विश्वा॥ ऋग् १।११३।६

हे उषा के समान प्रबोधदायिनी माँ, तुम अपनी प्यारी संतानों को उनकी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार अलग-अलग साँचों में ढालती हो। किसी को तुम क्षत्रियत्व की शिक्षा देती हो, किसी को तुम अन्न उपजाना, धन कमाना आदि वैश्य-कर्म की शिक्षा देती हो, किसी को तुम यज्ञ-याग करने-कराने आदि ब्राह्मण-धर्म का पाठ पढ़ाती हो, किसी को तुम इतस्ततः संचार करना आदि सेवक के कर्म सिखाती हो। इस प्रकार विभिन्न रुचि वाले मनुष्यों को उन-उनके योग्य ज्ञान देने के लिए तुम उपदेश करती हो।

[८]माता देवानाम् अदितेरनीकं
यज्ञस्य केतुर् बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छ-
आ नो जने जनय विश्ववारे॥ ऋग् १।११३।१९

हे उषा के समान प्राणदायिनी माँ, तुम विद्वान् सन्तानों की माता बनो; सेना के समान राष्ट्रभूमि की रक्षक बनो; देवपूजा, संगठन और दान के कार्यों की पताका बनो। ऐसी महामहिमामयी तुम सर्वत्र कीर्ति से विभासित होवो। हमें प्रशस्ति प्रदान करो, ज्ञान-प्रकाश के लिए अंधकार से हमारा उद्धार करो। हे सबका वरण करके अपनी शरण में लेने वाली माँ, जनों के मध्य तुम हमें विशेष गुणों से प्रसिद्ध करो।

[९]महे नो अद्य सुविताय बोधि-
उषो महे सौभगाय प्रयन्धि।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे
देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम्॥ ऋग् ७।७५।२

हे उषा के समान तेजस्विनी माँ, आज तुम हमें महान् सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रबुद्ध करो। तुम हमें महान् सौभाग्य के लिए नियम-परायण करो। हमें यशोमय अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान करो। हे दिव्यगुणमयी मानुषी माँ, तुम मरणधर्मा मनुष्यों के मध्य हमें कीर्ति का इच्छुक बनाओ।

[१०]अन्तिवामा दूरे अमित्रम् उच्छ-
उर्वीं गव्यूतिम् अभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि
चोदय राधो गृणते मघोनि॥ ऋग् ७।७७।४

हे उषा के समान दिव्य प्रकाश से भरपूर माँ, तुम्हारे पास अनन्त सुन्दर गुणों

की निधि है। तुम शत्रु को हमसे दूर करो, विशाल कर्तव्य-मार्ग को हमारे लिए प्रशस्त करो, हमें अभय प्रदान करो। द्वेष-भाव को हमारे अन्दर से पृथक् करो। हे प्रशस्त ऐश्वर्योंवाली, हमारे लिए प्रशस्त ऐश्वर्य लाओ, हम स्तोताओं को जीवन में सफलता दिलाओ।

[11]अदितिर् नो दिवा पशुम्
अदितिर् नक्तम् अद्वयाः।
अदितिः पात्वंहसः सदावृधा॥ ऋग् ८।१८।६

अदीन एवं विघ्नों से अक्षत-अखंडित, मन और व्यवहार में एक समान रहने वाली माँ दिन में हमारे दर्शन एवं विवेक को अक्षुण्ण रखे, वही रात्रि में भी हमारे दर्शन एवं विवेक को अक्षुण्ण रखे। सदा हमारी उन्नति करानेवाली वह माँ हमें विनाशक पाप से बचाये।

[12]उत स्या नो दिवा मतिर्, अदितिरूत्या गमत्।
सा शंताति मयस् करद् अप स्रिधः॥ ऋग् ८।१८।७

मननशील, अदीन, अखंडित वह माँ प्रतिदिन अपनी रक्षा की छत्रछाया के साथ हमारे समीप आये। वह हमें शांतिदायक सुख प्रदान करे, वह हिंसावृत्तियों एवं हिंसकों को हमसे दूर करे।

[13]अनेहो न उरुव्रजे, उरुचि वि प्रसर्तवे।
कृधि तोकाय जीवसे॥ ऋग् ८।६७।१२

हे विशाल ज्ञान-रूप गतिवाली, हे महान् कर्मोंवाली माँ, तुम हमें निष्पाप करो, जिससे हम विशिष्ट उन्नति की दिशा में प्रसरण कर सकें। तुम अपनी संतान को उत्कृष्ट जीवन जीनेवाला बनाओ।

[14]वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीम्
अदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं
सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात्॥ अथर्व ७।६।४

भौतिक एवं आध्यात्मिक बल की प्राप्ति के लिए हम अदीन, अखण्डित, अपराजित, पूजायोग्य माँ को वचनों द्वारा अपने अनुकूल करते हैं। उन्नति का असीम आकाश जिसकी गोदी में विद्यमान है वह माँ हमें शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक तीनों दुःखों का निवारण करनेवाली अपनी शरण प्रदान करे और सर्दी-गर्मी-वर्षा तीनों ऋतुओं में सुखकर तिमंजिला घर प्रदान करे।

[15]असुनीते मनो अस्मासु धारय
जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः।
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व॥ ऋग् १०।५९।५

हे प्राणदायिनी माँ, तुम हमारे अन्दर मनोबल को धारण कराओ, उत्कृष्ट जीवन के लिए हमारी आयु को अधिकाधिक बढ़ाओ। हमें इस योग्य बनाओ कि हम सफलता के सूर्य का दर्शन कर सकें। घृत आदि पौष्टिक पदार्थों से एवं तेज से तुम हमारे शरीर को परिपुष्ट करो।

[१६]असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः
पुनः प्राणम् इह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यम् उच्चरन्तम्
अनुमते मृळया नः स्वस्ति॥ ऋग् १०।५९।६

हे प्राणप्रदायिनी माँ, यदि हमारी चक्षु आदि इन्द्रियाँ एवं प्राण-अपान आदि क्षीण हो गये हैं तो तुम पुनः उनकी शक्ति हमें प्रदान करो। पुनः हमारे अन्दर उत्कृष्ट भोगों को भोगने की शक्ति उत्पन्न करो। तुम्हारी छत्रछाया में रहते हुए हम चिरकाल तक विद्या, विज्ञान आदि के सूर्य का दर्शन करते रहें। हे अनुकूल मति प्रदान करनेवाली माँ, तुम हमें सुखी करो, हमें कल्याण प्रदान करो।

[१७]स्योना पृथिवि नो भव, अनृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचद् अघम्॥ यजु ३५।२१

हे माँ, तुम साक्षात् पृथिवी हो, पृथिवी के सदृश विस्तीर्ण-हृदया, उदार, क्षमाशील, समदर्शिनी, सर्वंसहा एवं परोपकारिणी हो। तुम हमारे लिए पृथिवी के समान सुखदायिनी, अकंटक, क्रूरतादि दोषरहित तथा निवास प्रदान करनेवाली बनो। पृथिवी के समान कीर्ति से प्रख्यात होती हुई तुम हमें सर्वविध कल्याण प्रदान करो। तुम हमारे पाप को जलाकर भस्म कर दो।

[१८]प्राग् अपाग् उदग् अधराक्
सर्वतस् त्वा दिश आ धावन्तु।
अम्ब निष्पर सम् अरीर् विदाम्॥ यजु ६।३६

हे अम्बा, हे अपने सदुपदेश और सत्परामर्श से कृतार्थ करनेवाली माँ, पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण सब दिशाएँ, दिग्वासिनी प्रजाएँ, दौड़कर तुम्हारे पास आयें। हे माँ, तुम उन प्रजाओं का पालन करो, निस्तार करो, उद्धार करो। वे सब तुम्हारी निर्भय गोद में विश्राम करती हुई तुम्हारे प्रेम को जानें।

[१९]मा सु भित्था मा सु रिषो
अम्ब धृष्णु वीरयस्व सु।
अग्निश् चेदं करिष्यथः॥ यजु ११।६८

हे माँ, तुम हममें फूट न पड़ने दो, तुम हमें हिंसा का पात्र मत बनने दो। तुम हमसे स्थिरतापूर्वक वीरता के कर्म कराओ। तुम और तुम्हारा अग्नि-तुल्य पुत्र दोनों मिलकर महान् कार्यों को पूर्ण करेंगे।

[20]अभि नो देवीरवसा, महः शर्म्मणा नृपत्नीः ।
अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ।। ऋग् १।२२।११

कर्मकुशल पुरुषार्थी-जनों की पत्नी, दिव्यगुणमयी माताएँ बिन कटे पंखोंवाली अर्थात् उन्नति के समस्त साधनों से सम्पन्न होकर अपनी शुभकामना, प्रीति, रक्षा, शास्त्रश्रवण, क्रियाशक्ति आदि के साथ और महान् कल्याण के साथ हमारे समीप आकर हमें लाभ पहुँचाती रहें।

हे माताओ, हम तुम्हारे प्रति श्रद्धा से अवनत हैं। तुम्हारे त्याग, तप, वात्सल्य, परोपकार, सन्तान के निर्माण की चिन्ता, लक्ष्य के प्रति जागरूकता, ईश्वर-विश्वास, धर्म-परायणता, प्रशिक्षण-कुशलता आदि के प्रति अपनी कृतज्ञता को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं खोज पा रहे हैं। तुम्हारे ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो सकते। हम तुम्हारी चरण-धूल को मस्तक पर लगाते हैं, हम तुम्हें शत-शत प्रणाम अर्पित करते हैं। हम सन्तानों के लिए वेद का जो निम्नलिखित आदेश है, उसे हम सदा स्मरण रखेंगे :

[21]सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे
विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीर्
अन्तरस्यां शुक्रज्योतिर् वि भाहि ।। यजु १२।१५

माता से विद्या, सुशिक्षा आदि की कामना करनेवाले हे पुत्र, तू माँ के समीप बैठ, सब विद्या-विज्ञानों का विद्वान् बन। तू माँ को सन्ताप से एवं शोक-ज्वाला से कभी शोकाकुल मत कर। माँ के सामीप्य में रहकर शुद्ध मन एवं शुद्ध आचरण की ज्योति से भासमान हो।

हे माताओ, हम पुनः तुम्हें प्रणाम करते हैं, तुम्हारे बहुमूल्य आशीर्वाद को अपने हृदय में सँजोते हैं, हमसे जो तुम्हारी आशाएँ हैं उन्हें पूर्ण करने का प्रण लेते हैं।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[1] (आपः) जलों के समान शुद्ध करनेवाली (मातरः) माताएँ (अस्मान्) हमें (शुन्धयन्तु) शुद्ध करें। (घृत-प्वः) घृत और तेज के द्वारा पवित्र करनेवाली वे (घृतेन) घृत व तेज से (नः) हमें (पुनन्तु) पवित्र करें। (देवीः) वे देवियाँ (विश्वं हि) सारे ही (रिप्रं) दोष, पाप एवं मलिनता को (प्र वहन्ति) बहा देती हैं।(आभ्यः) इनके सांनिध्य से (इत्) निश्चय ही (शुचिः) प्रदीप्त और (पूतः) पवित्र होकर (उद्-आ-एमि) बाहर आता हूँ, कार्यक्षेत्र में पदार्पण करता हूँ।

घृतप्वः—घृतम् आज्यं तेजो वा तेन पुनन्ति इति ताः। घृ क्षरणदीप्त्योः,

पूञ् पवने। रिप्र—पाप (निरु० ४।२१)। शुचिः शोचतेः ज्वलतिकर्मणः (निरु० ६।१)

[२] (आपः) हे जलों के समान शुद्धिप्रद माताओ, (इदं यत्) यह जो (अवद्यं च) निन्दनीय पाप (मलं च) और दोष है उसे (प्र वहत) बहा दो, दूर कर दो। (यत् च) और जो (अभि दुद्रोह) मैं द्रोह करता हूँ, (अनृतं) असत्य भाषण और असत्य आचरण करता हूँ, (यत् च) और जो (अ-भीरुणं) निडर सज्जन को (शेपे) कोसता हूँ, (तस्मात् एनसः) उस अपराध या पाप से (आपः) जल-तुल्य शोधक माताएँ (पवमानः च) और पवित्रतादायक पिता (मा) मुझे (मुञ्चत) छुड़ा देवे।

शेपे—शप आक्रोशे।

[३] हे जलों के समान तृप्तिदायक माताओ, तुम (मे मनः) मेरे मन को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे वाचं) मेरी वाणी को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे प्राणं) मेरे प्राण को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे चक्षुः) मेरी आँख को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे श्रोत्रं) मेरे कान को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे आत्मानं) मेरे आत्मा को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे प्रजां) मेरी सन्तान को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे पशून्) मेरे पशुओं को (तर्पयत) तृप्त करो, (मे गणान्) मेरे गणों को (तर्पयत) तृप्त करो। (मे गणाः) मेरे गण (मा वि तृषन्) अतृप्त न रहें।

[४] (ऋतावरीः) हे सत्याचरणवाली (आपः) जलों के समान स्नेहमयी माताओ, (इदं वः) यह तुम्हारा (हृदयं) हृदय है, (अयं वत्सः) यह मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। (शक्वरीः) हे शक्तिमती माताओ, (इह) यहाँ (इत्थं) इस दिशा में, मेरी ओर (एत) आओ, (यत्र) जिस दिशा में (इदं वः) इस तुम्हारे हृदय को (वेशयामि) मैं प्रविष्ट कराता हूँ, प्रेरित करता हूँ।

[५] (उत) और (घोरा) दुष्टता आदि के प्रति बिजली के समान घोर (हिरण्य-वर्तनिः) सुनहरी रेखावाली बिजली के समान स्वर्णिम चरित्रवाली, (वृत्र-घ्नी) बादल का हनन करनेवाली बिजली के समान पाप का हनन करनेवाली (स्या) वह (सरस्वती) विद्युत्-तुल्य वीरांगना माँ (सु-स्तुति) उत्कृष्ट स्तुति को, हमारी कीर्ति को (वष्टि) चाहती है।

वष्टि—वश कान्तौ। कान्तिः इच्छा।

[६] (सरस्वति) हे प्रेमरसमयी माँ (नः) हमारे लिए (शिवा) मंगलकारिणी, (शन्तमा) अतिशय शान्ति देनेवाली, और (सु-मृडीका) उत्कृष्ट सुख देनेवाली (भव) होवो। (ते) तुम्हारे (सं-दृशः) कृपादृष्टि से, हम (मा युयोम) वंचित न हों।

[७] (त्वं) किसी को (क्षत्राय) क्षत्रिय-कर्म के लिए, (त्वं) किसी को (श्रवसे) अन्न उपजाने और धन कमाने के लिए, (त्वं) किसी को (महीयै इष्टये) बड़े-बड़े यज्ञ करने-कराने के लिए, और (त्वं) किसी को (अर्थम् इव) द्रव्य के समान (इत्यै) संचार के लिए, इस प्रकार (वि-सदृशा) भिन्न-भिन्न (जीविता अभि) जीवनों के

प्रति, जीवधारियों के प्रति (प्र-चक्षे) प्रकृष्ट ज्ञान देने के लिए (उषाः) उषा के समान बोध-प्रदायिनी माँ (विश्वा भुवना) सब मनुष्यों को (अजीगः) उपदेश देती है।

श्रवः—अन्न, धन (निघं० २।७, २।१०)।

त्वम्—यह 'तू' अर्थवाले युष्मद् शब्द के प्रथमा विभक्ति के एकवचन से भिन्न 'त्व' शब्द के द्वितीया का एकवचन है। **अजीगः**—गॄ शब्दे, लङ्, वैदिक रूप।

[८] हे उषा के समान प्राणदायिनी माँ, (बृहती) महामहिमामयी तुम (देवानां) विद्वान् सन्तानों की (माता) माता, (अदितेः) राष्ट्रभूमि की (अनीकं) सेना के समान रक्षक और (यज्ञस्य) यज्ञ-कार्यों की (केतुः) पताका बनकर (वि भाहि) चमको। (ब्रह्मणे) ज्ञान के प्रकाश के लिए (नः) हमें (प्रशस्ति-कृत्) प्रशस्ति प्रदान करती हुई, तुम (वि-उच्छ) अविद्या-रूप अन्धकार को दूर करो। (विश्व-वारे) हे सबको अपनी शरण में वरण करनेवाली माँ, (जने) जन-समुदाय के मध्य (नः) हमें (आ जनयः) नवीन जन्म दो, गुणों से प्रसिद्ध करो।

अदिति—भूमि (निघं० १।१)। **व्युच्छ**—वि उच्छी विवासे। **अनीकम्**—सेना।

[९] (उषः) हे उषा के समान तेजस्विनी माँ, तुम (अद्य) आज (महे) महान् (सुविताय) सन्मार्ग के लिए (नः) हमें (बोधि) प्रबुद्ध करो। (महे) महान् (सौभगाय) सौभाग्य के लिए (प्र यन्धि) नियम-परायण करो। (अस्मे) हमें (चित्रं) अद्भुत (यशसं) यशोमय (रयिं) ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान करो। (मानुषि देवि) हे मानुषी देवी, तुम हमें (मर्तेषु) मनुष्यों के मध्य (श्रवस्यु) कीर्ति का इच्छुक बनाओ।

सुवित—सु इत, सन्मार्ग (इण गतौ)। **प्र यन्धि**—प्र यमु उपरमे। **श्रवस्युः**—श्रवः कीर्तिं कामयते इति, क्यच् प्रत्यय।

[१०] हे उषा के समान प्रकाशमयी माँ, (अन्ति-वामा) जिसके पास सुन्दर सद्गुणरूप ऐश्वर्य भरे हैं ऐसी तुम (अमित्रं) अमित्रता एवं अमित्र को (दूरे उच्छ) दूर भगा दो, (नः) हमारे लिए (उर्वीं) विशाल (गव्यूतिं) कर्त्तव्य-मार्ग को और (अभयं) निर्भयता को (कृधि) प्रशस्त करो। (द्वेषः) द्वेषभाव को (यावय) दूर करो। (मघोनि) हे प्रशस्त ऐश्वर्योंवाली माँ, (वसूनि) ऐश्वर्यों को (आ भर) लाओ। (गृणते) मुझ स्तोता के लिए (राधः) सफलता (चोदय) प्रेरित करो।

अन्तिवामा—अन्ति अन्तिके समीपे वामं प्रशस्यम् ऐश्वर्यं यस्याः सा। वाम—प्रशस्य (निघं० ३।८)। **उच्छ**—उच्छी विवासे। **गव्यूतिं** मार्गम् (द० भा० ऋग् ५।६६।३) **यावय**—यु मिश्रणे अमिश्रणे च, णिच्। **राधः**—राध संसिद्धौ। **चोदय**—चुद प्रेरणे।

[११] (अदितिः) अदीन एवं अखण्डित माँ (दिवा) दिन में (नः) हमें (पशुं) दर्शन एवं विवेक प्रदान करे। वही (अद्वयाः) अन्दर कुछ, बाहर कुछ, इस द्विविध

आचरण से रहित अर्थात् मन में और व्यवहार में एक-समान (अदितिः) अदीन, अखण्डित माँ (नक्तं) रात्रि में भी [हमें दर्शन एवं विवेक प्रदान करे]। (सदा वृधा) सदा बढ़ानेवाली (अदितिः) वह माँ, हमें (अंहसः) विनाशक पाप से (पातु) बचाये।

अदितिः—न दितिः, अखण्डिता, दो अवखण्डने। 'अदितिः अदीना देवमाता' (निरु० ४।२२)। **अ-द्वया**—न विद्यते द्वयं मनस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् इति द्विविधमाचरणं यस्याः सा छलकपटादिरहिता। **पशुः**—दृष्टिशक्ति, दर्शन, विवेक। 'पशुः पश्यतेः' (निरु० ३।१६)।

[१२] (उत) और (स्या) वह (मतिः) मननशील (अदितिः) अदीन, अखंडित माँ (दिवा) प्रतिदिन (ऊत्या) रक्षा के साथ (नः) हमारे समीप (आ गमत्) आये। (सा) वह (शं-ताति) शान्तिदायक (मयः) सुख (करत्) प्रदान करे, (स्रिधः) हिंसा-वृत्तियों व हिंसकों को (अप) दूर करे।

[१३] (उरु व्रजे) हे विशाल ज्ञानरूप गतिवाली (उरूचि) महान् कर्मोंवाली अदिति माँ, तुम (वि प्र सर्तवे) उन्नति की दिशा में विशेष प्रसरण करने के लिए (नः) हमें (अनेहः) निष्पाप करो। (तोकाय) संतान को (जीवसे) उत्कृष्ट जीवन जीने के लिए (कृधि) प्रेरित करो।

उरुव्रजे—विशालगमने। व्रज गतौ। गतेस्त्रयोऽर्था ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च। **उरूचि**—उरु बहु अञ्चति कर्म करोतीति तत्सम्बुद्धौ। अञ्चु गतौ।

[१४] (वाजस्य) बल की (प्रसवे) उत्पत्ति के निमित्त, हम (महीं) पूजनीय (अदितिं) अदीन, अखण्डित, अपराजित (मातरं नाम) माँ को (वचसा) वचन द्वारा (करामहे) अनुकूल करते हैं। (यस्याः) जिसकी (उपस्थे) गोदी में (उरु-अन्तरिक्षं) उन्नति का विशाल आकाश है, (सा) वह माँ (नः) हमें (त्रि वरूथं) तीनों दुःखों की निवारक (शर्म) शरण (नि यच्छात्) प्रदान करे। अथवा (त्रिवरूथं) सर्दी, गर्मी, वर्षा तीनों ऋतुओं में वरणीय, तिमंजिला (शर्म) घर (नि यच्छात्) प्रदान करे।

महीं—पूज्याम्, मह पूजायाम्। **त्रिवरूथं**—त्रिभ्यो दुःखेभ्यो वारकं, त्रिषु शीतातपवर्षर्तुषु वरणीयं, त्रिभूमिकं वा। द्रष्टव्यः **सायण**—त्रयाणां शीतातपवर्षाणां निवारकं यद्वा त्रिभूमिकम् (ऋग् ८।१८।२२)। द० भा० शीतोष्णवर्षासु उत्तमम् (ऋग् ६।४६।९), त्रीणि वरूथानि आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकानि सुखानि यस्मिन् (यजु १५।१), त्रिषु भूम्यधोऽन्तरिक्षेषु वरूथानि गृहाणि यस्य (यजु २१।५५)। **शर्म**—शरणम् (निरु० ९।१९), गृहम् (निघं० ३।४)।

[१५] (असुनीते) हे प्राणदायिनी माँ, (अस्मासु) हमारे अन्दर (मनः) मनोबल (धारय) धारण कराओ। (जीवातवे) उत्कृष्ट जीवन के लिए (नः) हमारी (आयुः) आयु (सु प्र तिर) अधिकाधिक बढ़ाओ। (नः) हमें (सूर्यस्य) सूर्य के (संदृशि) सम्यक् दर्शन में (रारन्धि) रमण कराओ। (त्वं) आप (घृतेन) घृत और तेज से

(तन्वं) शरीर को (वर्धयस्व) बढ़ाओ, पुष्ट करो।

असुनीतिः—असून् प्राणान् नयति प्रापयति या सा। **रारन्धि**—रमय। रमु क्रीडायाम्, णिच्, वैदिक रूप। **प्र तिर**—प्रवर्धय। प्र तॄ प्लवन-संतरणयोः। 'प्रतिरते प्रवर्धयते' (निरु० ११।६)।

[१६] (असुनीते) हे प्राणदायिनि माँ, (पुनः) फिर (अस्मासु) हमें (चक्षुः) आँख, नेत्र-ज्योति, (पुनः) फिर (प्राणं) प्राण, और (इह) यहाँ (नः) हमें (भोगं) भोग (धेहि) प्रदान करो। हम (ज्योक्) चिरकाल तक (उत्-चरन्तं) ऊपर उठते हुए (सूर्यं) सूर्य को (पश्येम) देखें। (अनुमते) हे अनुकूल मति देनेवाली माँ, (नः) हमें (मृडय) सुखी करो, (स्वस्ति) कल्याण प्रदान करो।

'हे असुनीते प्राणदायिनि देवि'—सायण।

[१७] (पृथिवि) हे पृथिवी के तुल्य गुणोंवाली माँ, तुम (नः) हमारे लिए (स्योना) सुखदायिनी, (अन्-ऋक्षरा) अकंटक, क्रूरतादि दोषों से रहित तथा (निवेशनी) निवासदायिनी (भव) होवो। (स-प्रथाः) कीर्ति से प्रख्यात तुम (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छ) दो। आप (नः) हमारे (अघं) पाप को (अप शोशुचत्) पूर्णतः भस्म कर दो, शुद्ध कर दो।

अनृक्षरा—न विद्यन्ते ऋक्षराः कण्टकाः क्रूरतादिदोषाः यस्याः सा। 'ऋक्षरः कण्टकः ऋच्छतेः' (निरु० ९।३२) **अप शोशुचत्**—'अप शोचयतु दहतु' मही०। 'भृशं शोधयतु'—द० भा० (शुच शोके, शुचिर पूतीभावे, यङ्लुगन्त)।

द्रष्टव्य : द० भा० भावार्थ—या स्त्री पृथिवीवत् क्षमाशीला, क्रूरतादिदोषरहिता, बहुप्रशंसिता, अन्येषामपि दोषनिवारिका भवति सैव गृहकृत्ये योग्या भवति।

[१८] (प्राक्) पूर्व से, (अपाक्) पश्चिम से, (उदक्) उत्तर से, (अधराक्) दक्षिण से, (सर्वतः) सब ओर से (दिशः) दिग्वासिनी प्रजाएँ (त्वा) आपके पास (आ धावन्तु) दौड़कर आयें। (अम्ब) हे सदुपदेश देनेवाली तथा प्रेम करनेवाली माँ, तुम उन प्रजाओं का (निष् पर) अतिशय पालन करो, उनका निस्तार करो। (अरीः) प्रजाएँ, आपके प्रेम को (सं विदां) भली-भाँति जानें।

अम्ब—अम्बते शब्दायते उपदिशति इति अम्बा तत्सम्बुद्धौ। अबि शब्दे। यद्वा, अमति प्रेमभावेन प्राप्नोतीति, तत्सम्बुद्धौ। अन उणादिर्वन् प्रत्ययः—द० भा०'। **अरीः**—अर्यः प्रजाः। 'प्रजा वा अरीः' श० ब्रा० ३।९।४।२१। 'अरीः सुख-प्रापिकाः प्रजाः' द० भा०। **विदां**—विदताम् (विद् ज्ञाने)।

[१९] (अम्ब) हे माँ, तुम (मा) मत (सु भित्थाः) हममें फूट पड़ने दो, (मा) मत (सु रिषः) हमारी हिंसा होने दो। (धृष्णु) स्थिर रूप से (सु वीरयस्व) हमसे वीरता के कर्म करवाओ। तुम (अग्निः च) और तुम्हारा अग्नि-तुल्य पुत्र, दोनों मिलकर (इदं) इस कर्त्तव्य का (करिष्यथः) पालन करेंगे।

कर्मकाण्ड में यह मन्त्र उरवा(हांडी)को सम्बोधित किया जाता है। दयानन्द माता-परक अर्थ करते हैं। उनका अर्थ है—हे माता, तू हमको विद्या से मत छुड़ा और मत दुःख दे। दृढता से सुन्दर आरम्भ किये कर्म की समाप्ति कर। ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों अग्नि के समान करने योग्य इस सब कर्म को आचरण करो।

[२०] (नृ-पत्नीः) पुरुषार्थी जनों की पत्नियाँ (देवीः) दिव्य-गुणमयी माताएँ (अच्छिन्न-पत्राः) बिन कटे पंखोंवाली अर्थात् सर्व-साधन-सम्पन्न होती हुई (अवसा) शुभकामना, प्रीति, रक्षा आदि के साथ, और (महः शर्मणा) महान् कल्याण के साथ, महान् गृह-सुख के साथ (न अभि सचन्तां) हमें प्राप्त होवें।

"देवीः—देवानां विदुषाम् इमाः स्त्रियो देव्यः(अवसा)रक्षा-विद्या-प्रवेशादि-कर्मणा सह (अव रक्षणगतिकान्तिप्रीति-तृप्ति-अवगम प्रवेशश्रवणादिषु)। (महः) महता, अत्र 'सुपां सुलुग्' इति विभक्तेर्लुक्।(शर्मणा)गृहसम्बन्धिसुखेन।(नृपत्नीः) याः क्रियाकुशलानां विदुषां नृणां स्वसदृश्यः पत्नयः। (अच्छिन्न-पत्राः) अविच्छिन्नानि पत्राणि कर्मसाधनानि यासां ताः।"—द० भा०

[२१] (अग्ने)हे विद्या, सुशिक्षा आदि के इच्छुक पुत्र,(त्वं) तू(अस्याः मातुः) इस माता के (उपस्थे) समीप(सीद) बैठ, (विश्वानि वयुनानि)सब विद्या-विज्ञानों का (विद्वान्) विद्वान् बन। (एनां) इस माता को (मा) न (तपसा)संताप से(मा) न (अर्चिषा) शोक-ज्वाला से (अभि शोचीः) शोकाकुल कर। (अस्याम् अन्तः) इस माता के सामीप्य में (शुक्रज्योतिः)शुद्ध मन एवं शुद्ध आचरण की ज्योति से युक्त होकर (वि भाहि) विभासित हो।

"(अग्ने) विद्यामभीप्सो। (शोचीः) शोकयुक्तां कुर्याः [शुच शोके]। (शुक्रज्योतिः शुक्रं शुद्धाचरणं ज्योतिः प्रकाशो यस्य सः।"—द० भा०।

९

पतिंवरा

[कन्या द्वारा पति-वरण]

लोक-परिपाटी, विवाह-योग्य आयु और मेरी सहमति के अनुसार मेरे माता-पिता आदि इष्ट सम्बन्धियों के द्वारा किये गये आयोजन एवं आशीर्वाद के साथ आज मेरा विवाह-दिवस आ पहुँचा है। घर के बालक, तरुण, वृद्ध-वृद्धाएँ सबके हृदयों में एक उल्लास एवं उमंग है। पर मेरे मन में एक अन्तर्द्वन्द्व-सा मचा हुआ है; न मैं रो ही सकती हूँ, न हँस ही सकती हूँ। जिस उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्य का पूर्वज नारियाँ निर्वाह करती रही हैं, उसका मुझे भी निर्वाह करना ही होगा। मैंने, मेरी आचार्या ने और मेरे हितेच्छु सम्बन्धी-जनों ने जिस युवक को मेरा चिरसंगी होने के लिए चुना है वह इस वेला में मेरे सम्मुख उपस्थित है।

[1]एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं
जातं शृणोमि यशसं जनेषु।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं
दोषा वस्तोर् हवमानास इन्द्रम्॥ ऋग् ५।३२।११

हे सुयोग्य युवक, मैंने आपके विषय में सुना है कि आप एक अद्वितीय पुरुष हैं, श्रेष्ठों के रक्षक हैं, पाँचों प्राणों और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से सबल हैं, प्रसिद्ध हैं, जनों में यशस्वी हैं। उन्हीं आप नूतन, अतिशय प्रशंसनीय, ऐश्वर्यशाली, वीर युवक को मेरे प्रति शुभाशंसा रखनेवाले मेरे संबन्धियों ने, जो दिन-रात योग्य वर की खोज में संलग्न थे, मेरे लिए चुना है। मैं आपका सम्मान करती हूँ, स्वागत करती हूँ, अभिनन्दन करती हूँ।

हे विद्वन्! आज आप देव-मंडप में पवित्र अग्नि को साक्षी रखकर मेरा पाणि-ग्रहण करने के लिए उद्यत हैं और ग्रन्थि-बन्धन, अग्नि-परिक्रमा एवं सप्तपदी विधि के साथ हम दोनों गृहाश्रम के स्नेहसूत्र में बँधनेवाले हैं। मैं भी वेद के शब्दों में अपने भाव आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ कि किन उच्च भावनाओं तथा आशाओं से मैं आपकी जीवन-सहचरी बन रही हूँ।

[२]ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। यजु ३७।१०

सरलता के मार्ग पर चलने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, साधु व्यवहार के लिए मैं आपको ग्रहण करती हूँ, उत्तम निवास के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। गृहाश्रम-यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा गृहाश्रम-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। धर्म-यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा धर्म-यज्ञ के शिर: स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। सौहार्द-यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा सौहार्द-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए भी मैं आपको वरण करती हूँ।

[३]हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥ यजु ३७।१९

हार्दिक स्नेह के आदान-प्रदान के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, मिलकर मनन-चिन्तन करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, विद्या-प्रकाश के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, आपको सूर्य बनाकर पृथिवी के समान आपकी परिक्रमा करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। सजग रहकर आप गृहाश्रम-यज्ञ को उच्चता तक पहुँचायें और विद्वानों से प्रशंसित बनायें।

[४]उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस् त्वा।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस् तꣳ रक्षस्व
मा त्वा दभन् ॥ यजु ८।१

हे विद्वन्! आपने शास्त्रों के नियमोपनियमों को ग्रहण किया हुआ है। आदित्य-सदृश तेजस्वी गुणों के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। हे शुभ गुण-कर्म-स्वभाव में व्याप्त, वहुत-से शास्त्रों का गान करनेवाले विद्वन्, यह गृहाश्रम आपके सौम्य गुणों की वृद्धि करनेवाला है, इसकी रक्षा कीजिए। इस आश्रम का पालन करते हुए कोई भी काम, क्रोध आदि विघ्न आपके मार्ग में बाधक न हों।

[५]उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्
चनोधा असि चनो मयि धेहि।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय
देवाय त्वा सवित्रे ॥ यजु ८।७

हे विद्वन्! विवाह के नियम से मैंने आपको वरण किया है। आप सर्वजगदुत्पादक सविता परमेश्वर के आराधक हैं। आप घर में अन्न आदि भोज्य पदार्थों की निधि भर देने में समर्थ हैं, वह निधि मुझे प्रदान कीजिए। गृहाश्रम-यज्ञ को पूर्ण कीजिए, यज्ञपति अग्नि को आहुतियों से तृप्त कीजिए, जिससे सर्वविध ऐश्वर्य

प्राप्त हो। मिलकर सविता परमेश्वर की पूजा करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ।

[6]उपयाम गृहीतोऽसि सुशर्मासि
सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः।
विश्वेभ्यस् त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्
विश्वेभ्यस् त्वा देवेभ्यः ॥ यजु ८।८

हे धर्मात्मन्! विवाह के लिए मैंने आपको वरण किया है। आप 'सुशर्मा' हैं, उत्कृष्ट घरों के स्वामी हैं। आप उच्च प्रतिष्ठावाले हैं, स्वयं सुप्रतिष्ठित हैं तथा अन्यों को सुप्रतिष्ठित करनेवाले हैं। आप विशाल मेघ के समान सुख-समृद्धि की वर्षा करनेवाले हैं, आपको मैं नमन करती हूँ। समस्त दिव्य सुखों के आदान-प्रदान के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। यह आपका सुखदायक घर है। सब विद्वानों के सत्कार के लिए मैं आपका वरण करती हूँ।

[7]सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिर्
अमृता अभूमदिवं पृथिव्या अध्यारुहाम
अविदाम देवान् स्वर् ज्योतिः ॥ यजु ८।५२

हे उन्नायक, आप गृहाश्रम-यज्ञ को समृद्ध करनेवाले हैं, आपके नेतृत्व में हम सब गृहवासी ज्योति को प्राप्त करें, अमर हो जाएँ। निम्न स्तर से सर्वोच्च स्तर पर पहुँच जाएँ, दिव्य गुणों को पा लें, आनन्द एवं विज्ञान-प्रकाश को भी प्राप्त कर लें।

[8]सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि।
सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा॥ यजु १५।६५

हे विद्वन्! आप सहस्र पदार्थों के यथार्थ ज्ञाता हैं, आप सहस्र गुणों की प्रतिमूर्ति हैं, आप सहस्र विषयों के सत्यासत्य-विवेक की तराजू हैं, आप सहस्र समस्याओं को हल करने में समर्थ हैं। सहस्र पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के लिए सहस्र गुणों को पाने के लिए, सहस्र विषयों के सत्यासत्य की परीक्षा के लिए, सहस्र समस्याओं के हल के लिए मैं आपको वरण करती हूँ।

[9]अग्ने ऽभ्यावर्तिन्नभि मा नि वर्तस्व-
आयुषा वर्चसा प्रजया धनेन।
सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ यजु १२।७

हे मेरे अनुकूल बर्ताव करने के लिए कृतसंकल्प विद्वन्! आप दीर्घायुष्य के साथ, वर्चस् के साथ, प्रजा के साथ, धन के साथ, दान-भावना के साथ, मेधा के साथ, विद्या-श्री के साथ, पुष्टि के साथ मेरे प्रति अनुकूल रहें।

[10]येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर् देवेषु गन्तवे॥ यजु १५।५५

हे विद्या-धन एवं सदाचार-धन के धनी, अपने जिस गुण से आप सहस्र कार्यों का भार वहन करते हैं, जिस अपने गुण से सर्ववेदोक्त कर्मों का पालन करते हैं, जिस गुण से समस्त सम्पदा को लाकर उपस्थित कर देने का सामर्थ्य रखते हैं, उसी अपने गुण से इस गृहाश्रम-यज्ञ को संचालित कीजिए जिससे घर और बाहर के माता-पिता, आचार्य, अतिथि आदि सब विद्वान् सुखी हों।

[११]आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि
तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय।
अनाधृष्टम् अस्यनाधृष्यं देवानाम् ओजो-
ऽनभिशस्ति-अभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम्
अञ्जसा सत्यम् उपगेषँ स्विते मा धाः॥ यजु ५।५

हे विद्वन्! शरीर में सर्वत्र व्याप्त होकर रक्षा करनेवाले, प्राण की पुष्टि के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, चारों ओर प्रवृत्त होनेवाले मन की उन्नति के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, शरीर को न गिरने देनेवाले आत्मा की उन्नति के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, शक्ति-संचय के लिए मैं आपको वरण करती हूँ, अतिशय ओजस्वी शक्तिशाली संतान के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। आप अपराजित हैं, आप अपराजेय हैं, आपके अन्दर दिव्यगुणी पूर्वजों का अनिंद्य ओज है, जो निन्दा से बचानेवाला तथा शीघ्र अनिन्द्य स्थिति को प्राप्त करानेवाला है। मैंने सत्य गुण-कर्म-स्वभाववाले आपको प्राप्त किया है। कृपया सन्मार्ग पर चलने में मेरे सहायक हों!

[१२]अग्ने व्रतपास् त्वे व्रतपाः, या तव तनू—
रियं सा मयि, यो मम तनूरेषा सा त्वयि।
सह नौ व्रतपते व्रतानि, अनु मे दीक्षां
दीक्षापतिर् मन्यताम्, अनु तपस् तपस्पतिः॥ यजु ५।६

हे विद्वन्! आप व्रतों का पालन करनेवाले हैं, आपके साहचर्य में मैं भी व्रतों का पालन करनेवाली बनूँ। जो आपका स्वरूप है वह मुझमें हो, जो मेरा स्वरूप है वह आपमें हो। हे व्रतपति साथ-साथ हम दोनों के व्रत चलें। दीक्षापति परमेश्वर मेरी गृहाश्रम की दीक्षा का अनुमोदन करें, तपों के अधिपति परमेश्वर मेरे गृहाश्रम के तप का अनुमोदन करें।

[१३]वि पाजसा पृथुना शोशुचानो
बाधस्व द्विषो रक्षसोऽमीवाः।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम्
अग्नेरहँ सुहवस्य प्रणीतौ॥ यजु० ११।४९

हे विद्वन्, आप विशाल शारीरिक और आत्मिक बल से देदीप्यमान हैं। आप सब द्वेषभावों को, राक्षसों को तथा रोगों को पराजित करें। आप सुशर्मा हैं, उत्कृष्ट

घरवाले हैं, आपके सुखदायक घर में मैं रहूँ। आप साक्षात् अग्नि हैं, आपका आह्वान सदा शुभ होता है, आपकी उत्तम धर्मयुक्त नीति पर मैं चलती रहूँ।

[१४]भगस्य नावम् आरोह, पूर्णाम् अनुपदस्यतीम्।
तयोपप्रतारय, यो वरः प्रतिकाम्यः ॥ अथर्व २।३६।५

हे विद्वन्, आप मेरे अभीष्ट वर हैं। आप धन, धर्म, विद्या, कीर्ति आदि ऐश्वर्य की नाव पर आरोहण कीजिए जो सब सुख-साधनों से परिपूर्ण तथा क्षीण न होनेवाली है। उस नाव द्वारा मुझे भी पार कीजिए।

[१५]अग्निः प्राणान् सं दधाति, चन्द्रः प्राणेन संहितः।
व्यहं सर्वेण पाप्मना, वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ अथर्व ३।३१।६

जैसे अग्नि अपने अन्दर प्राणों को धारण किये है, जैसे चन्द्रमा प्राण से समन्वित है, वैसे ही इस गृहाश्रम में रहती हुई मैं भी प्राणयुक्त होकर सर्वविध पाप से तथा सकल रोगों से पृथक् और दीर्घ आयु एवं जीवन से संगत रहूँ।

[१६]प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः, प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं, देवा यज्ञं नयन्तु नः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ यजु ३७।७

वेदज्ञ ब्राह्मण अतिथि बनकर आयें और हमारे गृहाश्रम-यज्ञ में वेदपति परमेश्वर का वास हो, प्यारी मीठी, सच्ची वाणी का व्यवहार हो। हमारे वीरता, धार्मिकता आदि दिव्य गुण हमें ऐसी सन्तान प्राप्त करायें जो वीर, नरश्रेष्ठ तथा समाज-सेवक हो। हे विद्वन्! मैं आपको गृहाश्रम-यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा गृहाश्रम-यज्ञ के शिरःस्थान पर स्थित करने के लिए वरण करती हूँ। मैं आपको धर्मानुष्ठान-यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा धर्मानुष्ठान-यज्ञ के शिरःस्थान पर स्थित करने के लिए वरण करती हूँ। मैं आपको तप एवं स्वाध्याय रूप यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा तप एवं स्वाध्यायरूप यज्ञ के शिरःस्थान पर स्थित करने के लिए वरण करती हूँ।

[१७]मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे। यजु ३७।८
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

हे विद्वन्! आप गृहाश्रम-यज्ञ के सिर हैं, गृहाश्रम-यज्ञ की पूर्ति के लिए तथा गृहाश्रम-यज्ञ के शिरःस्थान पर अभिषिक्त करने के लिए मैं आपको वरण करती

हूँ। आप ब्रह्म-यज्ञ के सिर हैं, ब्रह्म-यज्ञ करने के लिए तथा ब्रह्म-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। आप देव-यज्ञ के सिर हैं, देव-यज्ञ के लिए तथा देव-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए मैं आपको वरण करती हूँ। मैं आपको पितृ-यज्ञ के लिए तथा पितृ-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए वरण करती हूँ। मैं आपको भूत-यज्ञ के लिए तथा भूत-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए वरण करती हूँ। मैं आपको अतिथि-यज्ञ के लिए तथा अतिथि-यज्ञ के शिर:स्थान पर अभिषिक्त करने के लिए वरण करती हूँ।

[१८]अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे, अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि, मन इन्नौ सहासति ।। अथर्व ७।३६।१

गृहाश्रम में रहते हुए हम दोनों की आँखें मधु से सिक्त हों, हम दोनों का साहचर्य स्नेह-सिक्त हो। हे धर्मात्मन्! हे सखे! आप मुझे अपने हृदय में रख लें। हम दोदों का मन सदा साथ रहे।

हे सखे! हे धर्म-मार्ग के सह-पथिक! हे प्राण-धन! हे गृहाश्रम-रथ के रथी! हे धृति-धुरंधर! हे क्षमाशील! हे मन के दमन-कर्ता! हे अस्तेय-व्रती! हे शुद्धान्त:करण! हे जितेन्द्रिय! हे मेधावी! हे सत्यशाली! हे कामक्रोधादि-षड्रिपु-विजेता! आज से मैं और आप गृहाश्रम के सहयात्री बन रहे हैं। आप मुझे सहारा दीजिए, मैं आपको सहारा दूँगी और हम दोनों धर्म-अर्थ-काम का यथोचित पालन करते हुए मोक्ष के अधिकारी हो सकेंगे।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] हे युवक! मैं (नु) निश्चय ही (त्वा) आपको (एकं) अद्वितीय, (सत्पतिं) श्रेष्ठों का रक्षक, (पाञ्चजन्यं) पाँच प्राणों और ज्ञानेन्द्रियों में सबल, (जातं) प्रसिद्ध और (जनेषु यशसं) लोगों में यशस्वी (शृणोमि) सुनती हूँ। (तं) उस (नविष्ठं) नवीनतम, अतिशय प्रशंसनीय (इन्द्रं) ऐश्वर्यशाली तथा वीर को (दोषावस्तो:) रात-दिन (हवमानास:) बुलाने-खोजनेवाले (आशस:) हितैषियों ने (मे) मेरे लिए (जगृभ्रे) ग्रहण किया है, चुना है।

पाञ्चजन्यम्—पञ्च जना: जाता: प्राणा: इन्द्रियगणा वा तेषु साधुम्। (पञ्च जना: प्राणा बलवन्तो यस्य तदपत्यम्—द० भा०। पञ्चसु जनेषु प्राणादिषु भवं प्राप्तयोगसिद्धिम्—द० भा०, ऋग् १।११७।३। पञ्चसु सकलविद्येषु अध्यापक-उपदेशक-राजसभा-सेना-सर्वजनाधीशेषु जनेषु भव: पाञ्चजन्य:—द० भा०, ऋग् १।१००।१२)। नविष्ठम्—अतिशयेन नव: नवीन: स्तुत्यो वा नविष्ठ: तम् (नु स्तुतौ)।

दयानन्द-भाष्य में इस मन्त्र के भावार्थ में लिखा है—ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध-

कीर्ति सत्पुरुषं सुशीलं शुभगुणरूपसमन्वितं प्रीतिमन्तं पतिं ग्रहीतुमिच्छेत्, तथैव ब्रह्मचार्यपि स्वसदृशीमेव ब्रह्मचारिणीं स्त्रियं गृह्णीयात्।

[२] (ऋजवे) सरल मार्ग के लिए (त्वा) आपको, (साधवे) साधु व्यवहार के लिए (त्वा) आपको, (सु-क्षित्यै) उत्तम निवास के लिए (त्वा) आपको [वरण करती हूँ]। (मखाय) गृहाश्रम-यज्ञ के लिए (त्वा) आपको, (मखस्य) गृहाश्रम-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर के लिए (त्वा) आपको [वरण करती हूँ]। (मखाय) धर्म-यज्ञ के लिए(त्वा) आपको, (मखस्य) धर्म-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर के लिए (त्वा) आपको [वरण करती हूँ]। (मखाय) सौहार्द-यज्ञ के लिए (त्वा) आपको, (मखस्य) सौहार्द-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर के लिए (त्वा) आपको [वरण करती हूँ]।

[३] (हृदे) सौहार्द के लिए (त्वा) आपको, (मनसे) मनन-चिन्तन के लिए (त्वा) आपको, (दिवे) विद्या-प्रकाश के लिए (त्वा) आपको, (सूर्याय) सूर्य-सदृश मानकर व्यवहार करने के लिए (त्वा) आपको [वरण करती हूँ]। (ऊर्ध्वः) सजग होकर, आप (अध्वरं) गृहाश्रम-यज्ञ को (दिवि) उच्चता तक [पहुँचायें] और (देवेषु धेहि) विद्वानों में प्रशंसित बनायें।

[४] हे विद्वन्! आप (उपयाम गृहीतः) शास्त्रों के नियमोपनियमों को ग्रहण किये हुऐ (असि) हैं, (आदित्येभ्यः)सूर्य-सदृश तेजस्वी गुणों के लिए (त्वा) आपको [वरण करती हूँ]। (उरु-गाय) हे बहुत-से शास्त्रों का अध्ययन करनेवाले (विष्णो) शुभगुण-कर्म-स्वभाव में व्याप्त विद्वन्, (एषः) यह गृहाश्रम (ते) आपका (सोमः) सौम्य गुणों की वृद्धि करनेवाला है, (तं) उसकी (रक्षस्व) रक्षा कीजिए। (त्वा) आपको, कोई भी काम, क्रोध आदि विघ्न (मा दभन्) हिंसित न कर सकें।

"गृहस्थधर्माय ब्रह्मचारिण्या कन्यया कुमारो ब्रह्मचारी स्वीकरणीय इत्युपदिश्यते। (उपयामगृहीतः) शास्त्रनियमोपनियमा गृहीता येन सः। (आदित्येभ्यः) कृताष्टचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्येभ्यः पुंभ्यः। (विष्णो) सर्वशुभगुणकर्मस्वभावव्याप्त आप्त (उरुगाय) उरूणि बहूनि शास्त्राणि गायति पठति तत्संबुद्धौ। (एषः) प्रत्यक्षो गृहाश्रमः। (सोमः) मृदुगुणवर्द्धकः। हे उरुगाय, त्वां काम-बाणा मा दभन् मा हिंसन्तु।"—द० भा०

[५] हे विद्वन्! आप (उपयाम-गृहीतः) विवाह के नियम से ग्रहण किये गये (असि) हैं। आप (सावित्रः)सकलजगत् के उत्पादक सविता परमेश्वर के उपासक (असि) हैं। आप (चनः धाः) अन्न आदि भोज्य पदार्थों को धारण करनेवाले (असि) हैं, (चनः) अन्न आदि भोज्य पदार्थ (मयि धेहि) मुझे प्राप्त कराइये। आप (भगाय) ऐश्वर्य के लिए (यज्ञं) गृहाश्रम-यज्ञ को (जिन्व) पूर्ण कीजिए, (यज्ञपतिं) गृहाश्रम-यज्ञ की रक्षक गार्हपत्य अग्नि को (जिन्व) तृप्त कीजिए। (त्वा) आपको (सवित्रे देवाय) सविता परमेश्वर की उपासना के लिए स्वीकार करती हूँ।

"(उपयामगृहीतः) उपयामेन विवाहनियमेन गृहीतः। (सावित्रः) सविता

सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरो देवता यस्य सः (चनोधाः) चनांसि अन्नानि दधातीति। चनः इत्यन्ननामसु पठितम् (निरु० ६।१६)।"—द० भा०।

[६] हे धर्मात्मन्, आप (उपयाम-गृहीतः) विवाह के लिए ग्रहण किये गये (असि) हैं। आप (सु-शर्मा) उत्कृष्ट घरों के स्वामी (असि) हैं, (सु-प्रतिष्ठानः) उच्च प्रतिष्ठावाले हैं। (बृहद्-उक्षाय) विशाल मेघ के समान सुख-समृद्धि की वर्षा करनेवाले आपको (नमः) नमन हो। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) सब दिव्य सुखों के आदान-प्रदान के लिए (त्वा) आपको वरण करती हूँ। (एषः) यह (ते) आपका (योनिः) घर है। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) सब विद्वानों के सत्कार के लिए (त्वा) आपको स्वीकार करती हूँ।

"(सुशर्मा) शोभनानि गृहाणि यस्य सः। शर्म इति गृहनामसु पठितम्, निघं० ३।४। (सुप्रतिष्ठानः) सुष्ठु प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा यस्य सः (बृहदुक्षाय) बृहद् वीर्यम् उक्षति सिञ्चति तस्मै। (देवेभ्यः) कमनीयदिव्यसुखेभ्यः। (योनिः) गृहम्। (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः॥

भावार्थ— यस्य गृहाश्रमम् अभीप्सोर्जनस्य सर्वर्तुसुख-संपादकं गृहं स्यात्, स्वयं च वीर्यवान्, तमेव स्त्री पतित्वेन गृह्णीयात्, तस्मै यथोचितसमये सुखं दद्यात्, स्वयं च दिव्यसुखम् आदद्यात्, तौ द्वौ विदुषां सेवनम् आचरेताम्।"

—द० भा०

[७] हे विद्वन्! आप (सत्रस्य) गृहाश्रम-यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्ध करनेवाले (असि) हैं। आपके द्वारा हम (ज्योतिः) ज्योति को (अगन्म) प्राप्त करें, (अमृताः) अमर (अभूम) हो जाएँ। (पृथिव्याः) पृथिवी से निम्न स्तर से (दिवं) द्युलोक को, सर्वोच्च स्तर को (अधि आरुहाम) चढ़ जाएँ, (देवान्) दिव्य गुणों को, (स्वः) आनन्द को (ज्योतिः) विज्ञान-प्रकाश को (अविदाम) प्राप्त कर लें।

[८] हे विद्वन्! आप (सहस्रस्य) सहस्र पदार्थों के (प्रमा) यथार्थ ज्ञाता (असि) हैं, आप (सहस्रस्य) सहस्र गुणों की (प्रतिमा) प्रतिमा (असि) हैं, आप (सहस्रस्य) सहस्र विषयों के सत्यासत्य-परीक्षा की (उन्मा) तराजू (असि) हैं, आप (साहस्रः) सहस्र समस्याओं को हल करने में निपुण (असि) हैं। (सहस्राय) सहस्र पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के लिए, सहस्र गुणों की प्राप्ति के लिए, सहस्र विषयों के सत्यासत्य की परीक्षा के लिए, सहस्र समस्याओं के हल के लिए (त्वा) आपको वरण करती हूँ।

[९] (अभि-आ-वर्तिन्) हे अभिमुख आनेवाले (अग्ने) विद्वन्, आप (मा अभि-नि-वर्तस्व) निरन्तर मेरे अभिमुख होते हुए वर्ताव कीजिए (आयुषा) आयु के साथ, (वर्चसा) तेज के साथ, (प्रजया) सन्तान के साथ, (धनेन) धन के साथ, (सन्या) दान-भावना के साथ, (मेधया) मेधा के साथ, (रय्या) विद्या-श्री के साथ, (पोषेण) पुष्टि के साथ।

(अग्ने) विद्वन्। (अभ्यावर्तिन्) आभिमुख्येन वर्तितुं शीलमस्य, तत्सम्बुद्धौ। (रय्या) विद्याश्रिया—द० भा०। सनिः इष्टलाभः दान-भावना वा (षण सम्भक्तौ, षणु दाने, इ प्रत्यय)।

[१०] (अग्ने) हे विद्वन्! (येन) जिस गुण से (सहस्रं) सहस्र भारों को (वहसि) आप वहन करते हैं, (येन) जिस गुण से (सर्व-वेदसम्) सब धनों को लाने का सामर्थ्य अथवा सर्ववेदोक्त कर्म (वहसि) आप धारण करते हैं, (तेन) उस गुण से (नः) हमारे (इमं यज्ञं) इस गृहाश्रम-रूप यज्ञ को (देवेषु) माता, पिता, आचार्य, अतिथि आदि विद्वानों में (स्वः गन्तवे) सुख प्राप्त कराने के लिए (नय) संचालित कीजिए।

"(सहस्रम्) असंख्यं गृहाश्रमव्यवहारम्।(अग्ने) विद्वन् विदुषि वा। (सर्ववेदसम्) सर्वैर्वेदैरुक्तं कर्म। भावार्थ—विवाह-प्रतिज्ञासु इयमपि प्रतिज्ञा कारयितव्या हे स्त्रीपुरुषौ! युवां यथा स्व-हिताय आचरतं तथास्माकं मातापित्राचार्यातिथीनां सुखायापि सततं प्रवर्त्तेथामिति।"—द० भा०

[११] हे विद्वन्! (आपतये) सर्वत्र व्याप्त होकर रक्षा करनेवाले प्राण के लिए, और (परि-पतये) चारों ओर प्रवृत्त होनेवाले मन के लिए (त्वा) आपको (गृह्णामि) ग्रहण करती हूँ। (तनू-नप्त्रे) शरीर को न गिरने देनेवाले आत्मा के लिए, (शाक्वराय) शक्ति-संचय के लिए, (शक्वने) शक्तिशाली (ओजिष्ठाय) अतिशय ओजस्वी सन्तान के लिए] ग्रहण करती हूँ]। आप (अनाधृष्टम् असि) अपराजित हैं, (अनाधृष्यं) अपराजेय हैं, आपके अन्दर (देवानाम्) दिव्यगुणी पूर्वजों का (ओजः) ओज है, (अनभिशस्ति) जो अनिन्द्य है, (अभिशस्तिपाः) निन्दा से (अञ्जसा) शीघ्र बचानेवाला है, (अनभिशस्तेन्यम्) अनिन्द्य स्थिति को प्राप्त करानेवाला है। मैं (सत्यं) सत्य गुण-कर्म-स्वभाववाले आपको (उपगेषं) प्राप्त हुई हूँ। (मा) मुझे (स्विते) सन्मार्ग में (धाः) स्थित कीजिए।

आ समन्तात् शरीरं व्याप्य पाति रक्षतीति आपतिः प्राणः। 'प्राणो वा आपतिः' (तै० सं० ६।२।२।२)। परि सर्वतः पतति प्रवर्तते इति परिपतिः मनः। 'मनो वै परिपतिः' (तै० सं० ६।२।२।३)। तनूं शरीरं न पातयतीति तनूनप्ता आत्मा। 'आत्मा च मे तनूश्च मे [यज्ञेन कल्पताम्]' (तै० सं० ४।७।१।२)। शाक्वराय शक्तिजननाय। शक्वने—शक्नोति वीर्यवान् भवतीति शक्वा शक्तिशाली सन्तानः। अनभिशस्तेन्यम्—यः अनभिशस्ते अनिन्दिते गुणकर्मस्वभावे नयति तम्।

कर्मकाण्डपरक व्याख्यानुसार घृत को स्रुवा में भरकर घृत के प्रति यह मन्त्र बोला जाता है। दयानन्द-भाष्य में, परमेश्वर-परक तथा विद्युदग्नि-परक व्याख्यान है। किन्तु पूर्वमन्त्र जैसे विद्वान्-परक भी व्याख्या किया गया है, वैसे ही यह मन्त्र भी विद्वान्-परक लिया जा सकता है।

[१२] (अग्ने) हे विद्वन्! आप (व्रत-पाः) व्रतों का पालन करनेवाले हैं,

(त्वे) आपके साहचर्य में, मैं भी (व्रत-पाः) व्रतों का पालन करनेवाली [बनूँ]। (या) जो (तव) आपका (तनूः) स्वरूप है (इयं सा) यह वह (मयि) मुझमें है, (या-उ) और जो (मम) मेरा (तनूः) स्वरूप है (एषा सा) यह वह (त्वयि) तुझमें है। (व्रतपते) हे व्रतपति विद्वन्! (सह) साथ-साथ (नौ) हम दोनों के (व्रतानि) व्रत [चलें]। (दीक्षापतिः) दीक्षापति परमेश्वर (मे) मेरी (दीक्षां) विवाह-दीक्षा को (अनुमन्यताम्) अनुमोदन करे (तपस्पतिः) तपों का अधिपति परमेश्वर (तपः) मेरे गृहाश्रम के तप का (अनु) अनुमोदन करे।

कर्मकाण्ड में आहवनीय अग्नि में समिधाधान करते हुए यह मन्त्र पढ़ा जाता है। दयानन्द-भाष्य में परमेश्वराग्नि तथा विद्युदग्नि के पक्ष में व्याख्यात हैं। हमने विद्वान् पति के पक्ष में व्याख्या की है।

[१३] हे धर्मात्मन्! (पृथुना) विशाल (पाजसा) बल से (शोशुचानः) देदीप्यमान आप (द्विषः) द्वेष-भावों को, (रक्षसः) राक्षसों को और (अमीवाः) रोगों को (वि बाधस्व) नष्ट कर दीजिए। (सु-शर्मणः) उत्कृष्ट घरवाले (बृहतः) महान् आपके (शर्मणि) सुखदायक घर में और (सु-हवस्य) शुभ आह्वानवाले (अग्नेः) अग्निवत् तेजस्वी आपकी (प्र-नीतौ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में (अहं) मैं (स्यां) रहूँ।

दयानन्द-भाष्य में भी पति-परक अर्थ है। वहाँ—"(अमीवाः) रोगों के समान प्राणियों को पीडा देनेहारी (रक्षसः) दुष्ट (द्विषः) शत्रुरूप व्यभिचारिणी को (बाधस्व) ताडना देवें"—यह अर्थ करते हुए यह भावार्थ दर्शाया है कि विवाह के समय पुरुष-स्त्री दोनों को व्यभिचार-त्याग की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

[१४] हे विद्वन्! (यः) जो आप (प्रति-काम्यः) अभीष्ट (वरः) वर हैं, वे आप (भगस्य) धन, धर्म, विद्या, कीर्ति आदि ऐश्वर्य की (नावं) नाव पर (आरोह) चढ़िए, (पूर्णां) जो सब सुख-साधनों से परिपूर्ण और (अनुपय-दस्यतीं) अक्षय है। (तया) उस नाव से (उप-प्र-तारय) मुझे भी भली-भाँति पार कीजिए।

[१५] (अग्निः) आग, विद्युत् सूर्य आदि रूपवाली अग्नि (प्राणान्) प्राणों को (सं दधाति) अपने साथ धारण किये है, (चन्द्रः) चन्द्रमा भी (प्राणेन) प्राण से (सं-हितः) संयुक्त है। इसी प्रकार (अहं) मैं (सर्वेण) सब (पाप्मना) पाप से (वि) पृथक् होकर, (यक्ष्मेण) रोग से (वि) पृथक् होकर (आयुषा) दीर्घायुष्य से, जीवन से (सम्) संगत होऊँ।

[१६] हमारे गृहाश्रम में (ब्रह्मणस्पतिः) वेदपति परमेश्वर और वेदज्ञ ब्राह्मण (प्र एतु) उत्तम प्रकार से आयें, (देवी) दिव्य (सूनृता) प्रिय-सत्यवाणी (प्र एतु) उत्तम प्रकार से आये। (देवाः) पुष्टि, वीरता, धार्मिक आदि दिव्यगुण (नः) हमारे (यज्ञम् अच्छ) गृहाश्रम-रूप यज्ञ में (नर्यं) नर-श्रेष्ठ, (पङ्क्ति-राधसं) मनुष्य-पंक्तियों की सेवक (वीरं) वीर सन्तान (नयन्तु) प्राप्त करायें। हे विद्वन्!

मैं (त्वा) आपको (मखाय) गृहाश्रम-यज्ञ के लिए [वरण करती हूँ], (त्वा) आपको (मखस्य) गृहाश्रम-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर के लिए [वरण करती हूँ], मैं (त्वा) आपको (मखाय) धर्मानुष्ठान-यज्ञ के लिए [वरण करती हूँ], (त्वा) आपको (मखस्य) धर्मानुष्ठान-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर के लिए [वरण करती हूँ]। मैं (त्वा) आपको (मखाय) तप एवं स्वाध्यायरूप यज्ञ के लिए [वरण करती हूँ], मैं (त्वा) (मखस्य) तप एवं स्वाध्यायरूप यज्ञ (शीर्ष्णे) सिर के लिए [वरण करती हूँ]।

[१७] हे विद्वन् ! आप (मखस्य) गृहाश्रम-यज्ञ के (शिरः) सिर (असि) हैं, (असि) हैं, (त्वा) आपको (मखाय) गृहाश्रम-यज्ञ के लिए, (त्वा) आपको (मखस्य) गृहाश्रम-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर रूप में [वरण करती हूँ]। आप (मखस्य) ब्रह्म-यज्ञ के (शिरः) सिर (असि) हैं, (त्वा) आपको (मखाय) ब्रह्म-यज्ञ के लिए (त्वा) आपको (मखस्य) ब्रह्म-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर रूप में [वरण करती हूँ]। आप (मखस्य) देव-यज्ञ के (शिरः) सिर (असि) हैं, (त्वा) आपको (मखाय) देव-यज्ञ के लिए, (त्वा) आपको (मखस्य) देव-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर रूप में [परण करती हूँ]। आपको (मखाय) पितृ-यज्ञ के लिए, (त्वा) आपको (मखस्य) पितृ-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर रूप में [वरण करती हूँ]। (त्वा) आपको (मखाय) भूत-यज्ञ के लिए, (त्वा) आपको (मखस्य) भूत-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर रूप में [वरण करती हूँ]। (त्वा) आपको (मखाय) अतिथि-यज्ञ के लिए, (त्वा) आपको (मखस्य) अतिथि-यज्ञ के (शीर्ष्णे) सिर रूप में [वरण करती हूँ]।

[१८] (नौ) हम दोनों की (अक्ष्यौ) आँखें (मधु-संकाशे) मधु से सिक्त हों, (नौ) हम दोनों का (अनीकं) साहचर्य (सम्-अञ्जनम्) स्नेह-सिक्त हो। हे सखे ! आप (मां) मुझे (हृदि) हृदय में (अन्तःकुणुष्व) अन्दर रख लें। (नौ) हम दोनों का (मनः) मन (इत्) निश्चय ही (सह) साथ (असति) रहे।

१०

धर्मपत्नी

[वर द्वारा पाणिग्रहण और वधू के प्रति उद्‌गार]

हे देवी ! आज मैं तुम्हारा पाणिग्रहण कर रहा हूँ, तुम्हारी माँग में सिन्दूर भर रहा हूँ, तुम मेरी चिरसंगिनी बनकर नवजीवन में पदार्पण कर रही हो। अग्नि की प्रदक्षिणा करके मैं और तुम आज दाम्पत्य-सूत्र में वद्ध हो रहे हैं। मैं पवित्र वेदमन्त्रों का उच्चारण करता हुआ तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूँ :

> [१]येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
> तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह
> प्रजया च धनेन च ।। अथर्व १४।१।४८

जिस हाथ से सूर्यरूप पति ने भूमि-रूपिणी पत्नी का दाहिना हाथ पकड़ा हुआ है, उसी हाथ से, वैसे ही शक्तिशाली हाथ से, मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। मेरे साथ रहती हुई तुम सन्तान और धन से कभी व्यथित नहीं होगी।

> [२]गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
> मया पत्या जरदष्टिर् यथासः।
> भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्
> मह्यं त्वादुर् गार्हपत्याय देवाः।। अथर्व १४।१।५०

मैं तुम्हारे और अपने सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, जिससे तुम मुझ पति के साथ रहती हुई दीर्घ जीवन को प्राप्त करो। सकल ऐश्वर्य से युक्त, न्यायकारी, सब जगत् का उत्पत्तिकर्ता, वहुत प्रकार से जगत् का धर्ता परमात्मा और सभा-मण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग गृहाश्रम-धर्म के अनुष्ठान के लिए तुमको मुझे दे रहे हैं।

> [३]भगस्ते हस्तम् अग्रभीत्, सविता हस्तम् अग्रभीत् ।
> पत्नी त्वम् असि धर्मणा, अहं गृहपतिस् तव ।। अथर्व १४।१।५१

हे देवी, ऐश्वर्यवान् वनकर मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है, धर्ममार्ग में प्रेरक वनकर मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है। तुम धर्म से मेरी पत्नी हो, मैं तुम्हारा गृहपति हूँ।

[4]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे—
अश्विनोर् बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे ऽ दित्यै रास्नासि ।। यजु ३८।१

मैं प्रेरक 'सविता' परमेश्वर से प्रेरित होता हुआ सूर्य-चन्द्र के सदृश समर्थ भुजाओं से और पोषक वायु के समान सबल हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ। तुम अखण्डित नीति पर चलने के लिए रस्सी के समान हो, जैसे आर-पार बँधी हुई रस्सी का सहारा लेकर नाव को दुस्तर नदी के पार पहुँचा देते हैं, वैसे ही तुम्हारा सहारा पाकर मैं भी कठिन नीति-मार्ग पर चल सकूँगा।

[5]या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे
या देवीरन्तौं अभितो ऽ ददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्तु—
आयुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।। अथर्व १४।१।४५

मेरे घर की जिन देवियों ने अपने हाथ से सूत काता है, ताना तना है, दोनों ओर किनारियाँ डाली हैं, वाना बुना है, वे देवियाँ तुम्हारे दीर्घायुष्य के लिए तुम्हें वस्त्र धारण कराती रहें। हे आयुष्मती, मेरे द्वारा लायी हुई इस साड़ी को एवं अन्य वस्त्रों को तुम पहनो।

[6]अहं वि ष्यामि मयि रूपम् अस्या
वेदद् इत् पश्यन् मनसः कुलायम्।
न स्तेयम् अद्मि मनसोदमुच्ये
स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ।। अथर्व १४।१।५७

हे देवी, तुम्हारे रूप को, तुम्हारी सद्गुण-सम्पत्ति को अच्छी तरह जानकर मैं अपने अन्दर धारण कर रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि मेरे मन के प्रेम-रूप घोंसले में तुम बैठी हो और तुम्हारे मन के प्रेम-रूप घोंसले में मैं स्थित हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी तुमसे चुराकर किसी वस्तु का भोग नहीं करूँगा, मन से भी कभी ऐसी बात नहीं सोचूंगा। पितृगृह में रहती हुई तुम अनेक बन्धनों से बँधी हुई थीं, तुम्हारे उन बन्धनों को मैं स्वयं खोलकर तुम्हें स्वतन्त्र कर रहा हूँ।

[7]सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः
सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन
सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ।। अथर्व १४।२।७०

मैं तुम्हें पृथिवी के दूध से, मणि-मुक्ता-हिरण्यादि से, भरपूर करता रहूँगा। मैं तुम्हें ओषधियों के रस से भरपूर करता रहूँगा। मैं तुम्हें प्रजा और धन से भरपूर करता रहूँगा। सर्वविध समृद्धि से भरपूर होती हुई तुम संपत्ति का दान करती रहना।

[८] अमोऽहम् अस्मि सा त्वं, सामाहम् अस्मि—ऋक् त्वं।
द्यौरहं पृथिवी त्वम्। ताविह संभवाव
प्रजाम् आ जनयावहै॥ अथर्व १४।२।७१

हे देवी! मैं 'अम' (वल) हूँ, तुम 'सा' (मधुरिमा) हो, इस प्रकार हम दोनों मिलकर 'साम' की सृष्टि करते हैं। मैं 'साम' हूँ, तुम 'ऋक्' हो, इस प्रकार हम दोनों ऋक् पर गाये जानेवाले सामगान की सृष्टि करते हैं। मैं 'द्यौ' (सूर्य) हूँ, तुम 'पृथिवी' हो। जैसे द्यौ और पृथिवी मिलकर विभिन्न प्रजाओं की उत्पत्ति करते हैं, वैसे ही हम दोनों प्रजा की उत्पत्ति करें।

[९] यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति
विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे
तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥ अथर्व ६।१२०।३

जहाँ सौहार्द-सम्पन्न, शुभकर्मों में रत गृही-जन शारीरिक रोगों से पृथक् रहकर, पैरों से अशक्त न होते हुए, अंगों से टेढ़े-मेढ़े न होते हुए आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, उस गृहाश्रम-रूप स्वर्ग में हम माता-पिता आदि वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्धजनों का और प्यारे पुत्रों का दर्शन करते रहें।

[१०] सम् अख्ये देव्या धिया
सं दक्षिणयोरुचक्षसा।
मा म आयुः प्र मोषीर् मो अहं तव
वीरं विदेय तव देवि संदृशि॥ यजु ४।२३

मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे साथ उच्च विचार हैं, तुम्हारे साथ विशाल दृष्टि-वाली परोपकार की भावना है। तुम मेरी आयु का अपहरण मत करो, मैं तुम्हारी आयु का अपहरण न करूँ, अपितु हम दोनों एक-दूसरे की सहायता करते हुए पवित्र और उन्नत जीवन व्यतीत करें। हे देवी! तुम्हारी प्रेममय दृष्टि को पाकर मैं वीर-भाव को और वीर सन्तान को प्राप्त करूँ।

[११] इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते—
अदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता तेऽघ्न्ये नामानि
देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥ यजु ८।४३

हे देवी! तुम 'इडा' हो, स्तवनीय हो; तुम 'रन्ता' हो, रमणीय हो; तुम 'हव्या' हो, आह्वान किये जाने योग्य हो; तुम 'काम्या' हो, चाहने योग्य हो; तुम 'चन्द्रा' हो, आह्लाददायिनी हो; तुम 'ज्योता' हो, सुशीलता आदि सद्गुणों से द्योतमान हो; तुम 'अदिति' हो, शत्रुओं एवं विघ्न-बाधाओं से खण्डित न होने-वाली हो; तुम 'सरस्वती' हो, विद्या-रस से परिपूर्ण हो; तुम 'मही' हो, पूजा-

योग्य हो; तुम 'विश्रुति' हो, विविध-शास्त्रों का श्रवण करनेवाली हो; तुम 'अघ्न्या' हो, हिंसा या तिरस्कार की अपात्र हो। ये सब तुम्हारे नाम तुम्हारे गुणों को सूचित करते हैं। तुम मुझे शुभ-कर्त्तव्य बतलाती रहो, जिससे हमारे अन्दर दिव्य-गुण एवं दिव्य-कर्म उदित हों।

[१२]लोकं पृण छिद्रं पृण, अथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिर, अस्मिन् योनावसीषदन्॥ यजु १२।५४

हे देवी, गृहाश्रम-लोक को पूर्ण बनाओ, छिद्र को भरो, दोषों और त्रुटियों को दूर करो और ध्रुव तारे के समान ध्रुव बनकर रहो। तुम्हारे पिता और भाई ने तथा वेदज्ञ पुरोहित ने तुम्हें इस पति-गृह में स्थान दिलाया है।

[१३]इषे राये रमस्व सहसे, द्युम्न ऊर्जे अपत्याय।
सम्राडसि स्वराडसि, सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्॥ यजु १३।३५

हे देवी, तुम ज्ञान-विज्ञान के लिए, धन के लिए, बल और साहस के लिए, पराक्रम के लिए, सन्तान के लिए पति-गृह में रमो। तुम सम्राज्ञी हो, तुम स्वकीय विद्या, बल आदि से देदीप्यमान हो। ऋक्-सामरूप तथा मन-वाणीरूप प्रवाह तुम्हारी रक्षा करें।

[१४]हृदे त्वा मनसे त्वा, दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वम् इमम् अध्वरं, दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥ यजु ६।२५

हे देवी! हृदय-सुख के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, सत्यासत्य के मनन के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, घर में विद्या, प्रेम, शान्ति आदि का प्रकाश लाने के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, सूर्य-जैसे गुणों के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ। शुभगुणों के प्रकाश में तुम इस गृहाश्रम-रूप उत्कृष्ट यज्ञ को रचाओ। विद्वानों के प्रति अपनी शुभ वाणियों का प्रयोग करो।

[१५]आयुर् मे पाहि प्राणं मे पाहि-
अपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि
चक्षुर् मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि
वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्व—
आत्मानं मे पाहि ज्योतिर् मे यच्छ॥ यजु १४।१७

हे देवी! तुम मेरी आयु की रक्षा करना, मेरे प्राण की रक्षा करना, मेरे अपान की रक्षा करना, मेरे व्यान की रक्षा करना, मेरी चक्षु की रक्षा करना, मेरे श्रोत्र की रक्षा करना, मेरी वाणी को सत्य और माधुर्य से सींचना, मेरे मन को तृप्त करना, मेरी आत्मा की रक्षा करना, मुझे ज्योति प्रदान करना।

[१६]यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु

पृथिव्याः स ँ् स्पृशस् पाहि ।
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि यजु ३७।११

हे देवी ! यम-नियमों के पालन के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, गृहाश्रम-यज्ञ को चलाने के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, सूर्य-जैसा तप करने के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ। प्रेरक सविता प्रभु तुम्हें मधुरता से संयुक्त करे। तुम पार्थिव देह के अत्यधिक स्पर्श से मुझे बचाना। तुम ज्वाला हो, ज्वाला के समान कल्मष को दग्ध करनेवाली हो, तुम पवित्रता की मूर्ति हो, तुम तपोमयी हो।

[17]अनाधृष्टा पुरस्ताद् अग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः।
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः।
सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर् मे दाः।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः।
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस् पाहि मनोरश्वासि।। यजु ३७।१२

हे देवी ! पूर्व दिशा के उदय-कालीन सूर्य (अग्नि) के आधिपत्य में रहती हुई अपराजित रहकर मुझे आयु प्रदान करो, अर्थात् जैसे प्राची का सूर्य रात्रि के अन्धकार से पराजित न होकर अपनी नव-ज्योति से आयुष्प्रद प्राण प्रदान करता है, वैसे ही तुम भी अन्तः-शत्रुओं और वाह्य-शत्रुओं से पराजित न होती हुई अपने अपूर्व तेज से मुझे जीवन प्रदान करो। दक्षिण दिशा के दक्षिणायन सूर्य (इन्द्र) के आधिपत्य में रहती हुई तुम पुत्र जनने की शक्ति से युक्त होकर मुझे प्रजा प्रदान करो, अर्थात् जैसे दक्षिणायन सूर्य विशेष प्रजनन-शक्ति से सम्पन्न होता है तथा वर्षा करके वृक्ष-वनस्पति आदि प्रजाओं को उत्पन्न करता है, वैसे ही तुम भी करो। पश्चिम दिशा के अस्तकालीन सूर्य (सविता) के आधिपत्य में रहती हुई उत्कृष्ट स्थितिवाली होकर मुझे चक्षु प्रदान करो, अर्थात् जैसे पश्चिम दिशा का अस्तोन्मुख सूर्य लालिमा-रूप अच्छी स्थिति में रहता हुआ आँख की ज्योति को बढ़ाता है, वैसे ही तुम भी उत्कृष्ट स्थिति में रहती हुई मुझे कर्त्तव्याकर्त्तव्य की आँख प्रदान करो। उत्तर दिशा के उत्तरायण सूर्य (धाता) के आधिपत्य में रहती हुई तुम वेदादि-शास्त्रों का श्रवण करनेवाली होकर मुझे ऐश्वर्य की पुंष्टि प्रदान करो, अर्थात् जैसे उत्तरायण सूर्य शास्त्र-विश्रुत होता हुआ पुष्टि प्रदान करता है, वैसे ही तुम भी शास्त्रों का श्रवण करके मुझे आध्यात्मिक, शारीरिक एवं भौतिक पुष्टि प्रदान करो। ऊर्ध्वा दिशा के मध्याह्नकालीन सूर्य (बृहस्पति) के आधिपत्य में रहती हुई विशेष रूप से धारण करनेवाली होकर मुझे ओज प्रदान करो, अर्थात् जैसे मध्याह्न का सूर्य धारक शक्ति से सम्पन्न होकर सबको ओज प्रदान करता है, वैसा ही तुम भी करो। तुम समस्त नाशक दुष्प्रवृत्तियों और दुष्क्रियाओं से मुझे बचाओ। हे देवी ! तुम मुझ मननशील को उन्नति की दिशा में ले जानेवाली

घोड़ी हो। तुम मेरे मन में व्याप्त हो।

[१८]शिवा भव पुरुषेभ्यो, गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय, शिवा न इहैधि ॥ अथर्व ३।२८।३

हे देवी! तुम हमारे परिवार के सब पुरुषों के लिए मंगलकारिणी होना, गौओं और अश्वों के लिए मंगलकारिणी होना, हमारे सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए मंगलकारिणी होना, हम सभी के लिए मंगलकारिणी होना।

[१९]वृंहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय
आसुरी माया स्वधया कृतासि।
जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यम्
अरिष्टा त्वम् उदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ यजु ११।६९

हे पृथिवी-तुल्य देवी! तुम शरीर, आत्मा और मनोबल से बढ़ो, मुझे भी बढ़ाओ, जिससे हमारा उत्तम अस्तित्व बना रहे। तुम अपनी धारण-शक्ति के कारण प्राणधारियों की बुद्धि बनी हुई हो। दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए तुम्हारे त्याग का सब अनुकरण करें। तुम इस गृहाश्रम-यज्ञ में विघ्नों से अक्षत होती हुई उद्यम करती रहो।

[२०]यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीते
अनुमते अनुमतं सुदानु।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे
रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ अथर्व ७।२०।४

हे उत्तम नीति पर चलनेवाली! अनुकूल चिन्तन करनेवाली देवी, तुम्हारा नाम और यश शुभ रूप से आह्वान करने योग्य है, सर्वाभिमत है, उत्कृष्ट देन देनेवाला है। उसके द्वारा हे सर्वगुणावृते! तुम हमारे गृहाश्रम-यज्ञ को पूर्ण करो। हे सौभाग्यवती, हमें उत्कृष्ट वीर सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो।

[२१]राकाम् अहं सुहवां सुष्टुती हुवे
शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्या ऽच्छिद्यमानया
ददातु वीरं शतदायम् उक्थ्यम् ॥ ऋग् २।३२।४

हे पूर्णिमा के समान उज्ज्वल गुणोंवाली! त्यागशील दान-परायणा देवी, तुम प्रेम से पुकारने योग्य हो, मधुर स्तुति के साथ मैं तुम्हें पुकारता हूँ। हे सौभाग्यवती! तुम मेरे प्रिय वचनों को सुनो और कर्त्तव्य-पालन के प्रति जागरूक रहो। न टूटनेवाली सुई से अर्थात् सुदृढ़ साधनों से तुम कर्म-रूप वस्त्रों को सियो। हे देवी, तुम सैंकड़ों का दान करनेवाले प्रशंसनीय वीर सन्तान को जन्म दो।

[२२]यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो
याभिर् ददासि दाशुषे वसूनि।

ताभिर् नो अद्य सुमना उपागहि
सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ऋग् २।३२।५

हे दीनशीला देवी ! तुम्हारी सुमतियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं, इसी कारण तुम प्रत्येक परोपकारी को अवश्य धनों का दान करती हो। उन सुमतियों के साथ हे सौभाग्यवती ! आज प्रसन्न मन से हमारे बीच आओ और सहस्रों पोषक ऐश्वर्यों का दान करो।

[२३]सिनीवालि पृथुष्टुके, या देवानाम् असि स्वसा।
जुषस्व हव्यम् आहुतं, प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥

अथर्व ७।४६।१

हे प्रेम-बन्धन में बँधी हुई, हे बलवती, हे बलकारिणी, हे प्रशस्त अन्न की स्वामिनी, हे वरणीय गुणोंवाली, हे विशाल स्तुति के योग्य, हे बड़े-बड़े केशोंवाली! तुम विद्वान् सदाचारी भाइयों की बहिन हो, तुम अग्निहोत्र की अग्नि में आहुति दिये हुए हव्य की सुगन्ध का सेवन करो। हे देवी, तुम मुझे प्रशस्त सन्तान प्रदान करो।

[२४]मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ यजु १४।२१

हे देवी ! तुम गृहाश्रम की शिरोमणि हो, रानी हो, मानसिक और शारीरिक दृढ़तावाली हो, पोषण करनेवाली हो, पृथिवी के तुल्य विशाल हृदयवाली हो। आयु के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, वर्चस्विता के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, कृषि के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, योग-क्षेम के लिए मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ।

[२५]यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वा-ऊर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ यजु १४।२२

हे देवी ! तुम यन्त्रवत् कार्य करनेवाली हो, रानी हो, नियन्त्रण में रहनेवाली हो, नियन्त्रण में रखनेवाली हो, दृढ़-निश्चयवाली हो, भूमि के तुल्य क्षमाशील हो। मैं इच्छासिद्धि के लिए तुम्हें स्वीकार करता हूँ, बल-पराक्रम के लिए तुम्हें स्वीकार करता हूँ, लक्ष्मी के लिए तुम्हें स्वीकार करता हूँ, पुष्टि के लिए तुम्हें स्वीकार करता हूँ।

हे देवी ! आज तुम्हारे और मेरे स्नेहमय दाम्पत्य-सूत्र में बद्ध होते समय हमें माता-पिताओं का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, सास-श्वसुरों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, भाई-बहिनों की दुलार-भरी शुभ-कामनाएँ प्राप्त हुई हैं, देवर-ननदों के प्यार-भरे अभिनन्दन प्राप्त हुए हैं। देव-मण्डप में उपस्थित माताओं और देव-पुरुषों के आशीष-प्रसूनों की वर्षा से हम पुलकित हैं, तरंगित हैं, धन्य हैं।

[२६]समञ्जन्तु विश्वे देवाः, समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता, समु देष्ट्री दधातु नौ॥ ऋग् १०।८५।४७

सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि सब प्रकाशमान पदार्थ तथा समाज के सब विद्वान् लोग हम दोनों के हृदयों को एक करें। जल आदि सब स्नेहमय पदार्थ तथा स्नेहमयी माताएँ हम दोनों के हृदयों को एक करें। आकाश-संचारी पवन तथा प्राणायामी वानप्रस्थाश्रमी जन हम दोनों के हृदयों को एक करें। धारण-पोषण-कर्ता अग्नि तथा धारक संन्यासीगण हम दोनों के हृदयों को एक करें। प्रतिक्षण उपदेश प्रदान करनेवाली जगन्माता तथा वेद-माता हम दोनों के हृदय एक करे।

[२७]मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर् नः सन्त्वोषधीः॥
मधु नक्तम् उतोषसो, मधुमत् पार्थिव ँ् रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥
मधुमान् नो वनस्पतिर्, मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर् गावो भवन्तु नः॥ यजु १३।२७–२९

हम सत्य आचरण करनेवालों के ऊपर वायुएँ मधु बरसायें, नदियाँ मधु बरसायें, ओषधियाँ मधु बरसायें। रात्रियाँ और उषाएँ हमारे लिए मधुमय हों, पार्थिव-लोक मधुमय हो, पालन-कर्ता द्युलोक मधुमय हो। वनस्पति हमारे लिए मधुमय हो, सूर्य मधुमय हो, गौएँ मधुमय हों। गृहाश्रम हमारे लिए पूर्णतः मधुमय बन जाए।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] (येन) जिस हाथ से (अग्निः) सूर्य-रूप अग्नि ने (अस्याः भूम्याः) इस भूमि के (दक्षिणं हस्तं) दाहिने हाथ को (जग्राह) पकड़ा हुआ है, (तेन) उसी हाथ से (ते) तेरे (हस्तं) हाथ को (गृह्णामि) मैं पकड़ता हूँ। तू (मया सह) मेरे साथ (प्रजया) सन्तान से (धनेन च) और धन से (मा व्यथिष्ठाः) व्यथित मत हो।

[२] (सौभगत्वाय) सौभाग्य के लिए (ते) तेरे (हस्तं) हाथ को (गृह्णामि) पकड़ता हूँ, (यथा) जिससे (मया पत्या) मुझ पति के साथ, तू (जरत्-अष्टिः) दीर्घ जीवनवाली (असः) होवे। (भगः) सकल ऐश्वर्य से युक्त, (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) सब जगत् के उत्पत्ति-कर्ता (पु-रंधिः) बहुत प्रकार से जगत् के धर्ता परमात्मा ने और (देवाः) विद्वान् लोगों ने (मह्यं) मेरे लिए (त्वा) तुझे (अदुः) दिया है।

[३] (भगः) मुझ ऐश्वर्यशाली ने (ते हस्तं) तेरे हाथ को (अग्रभीत्) पकड़ा है, (सविता) धर्म-मार्ग में प्रेरणा करनेवाले मैंने (हस्तं) तेरे हाथ को (अग्रभीत्) पकड़ा है। (त्वं) तू (धर्मणा) धर्म से (पत्नी) पत्नी है, (अहं) मैं (तव) तेरा

(गृहपति) गृह-पति हूँ।

[४] (देवस्य) दिव्यगुण-युक्त (सवितुः) प्रेरक परमेश्वर की (प्रसवे) प्रेरणा में रहकर (अश्विनोः) सूर्य-चन्द्र के सदृश (बाहुभ्यां) भुजाओं से, (पूष्णः) पोषक वायु के सदृश (हस्ताभ्यां) हाथों से, तुझे (आ ददे) ग्रहण करता हूँ। तू (अदित्यै) अखण्डित नीति पर चलने के लिए (रास्ना) रस्सी के तुल्य (असि) है।

कर्मकाण्ड के अनुसार यह मन्त्र बोलकर यज्ञ की गाय दुहने के लिए रस्सी को पकड़ता है। दयानन्द-भाष्य में पाणिग्रहणपरक अर्थ किया है।

[५] (याः) जिन्होंने (अकृन्तन्) सूत काता है, (अवयन्) वस्त्र बुना है, (याः च) और जिन्होंने (तत्निरे) ताना तना है, (याः देवीः) जिन देवियों ने (अभितः) दोनों ओर (अन्तान्) किनारियाँ (अददन्त) दी हैं,(ताः) वे देवियाँ (जरसे) दीर्घायुष्य के लिए (त्वा) तुझे (सं व्ययन्तु) वस्त्र धारण करायें। (आयुष्मति) हे आयुष्मती, (इदं वासः) इस वस्त्र को (परिधत्स्व) पहन।

[६] (मनसः) मन के (कुलायं) प्रेम-रूप घोंसले को (पश्यन्) देखता हुआ (वेदत् इत्) और अनुभव भी करता हुआ (अहं) मैं (अस्याः) इस नव-वधू के (रूपं) रूप को, सद्गुण-सम्पदा को (मयि वि ष्यामि) अपने अन्दर खोलता हूँ, धारण करता हूँ। मैं (स्तेयं) चोरी से (न अद्मि) नहीं खाऊँगा, (मनसा) मन से भी, इस कार्य से (उद्-अमुच्ये) छूट जाऊँगा। (स्वयं) स्वयं मैं इसके (वरुणस्य पाशान्) वरुण के पाशों को (श्रथ्नानः [अस्मि])शिथिल करता हूँ, खोलता हूँ।

विष्यामि—षो अन्तकर्माणि। वि पूर्वक खोलने अर्थ में। वेदत्—विद ज्ञाने, शतृ प्रत्यय।

[७] मैं (त्वा) तुझे (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) दूध से, अर्थात् पृथिवी से प्राप्त होनेवाली वस्तुओं से (सं नह्यामि) भलीभाँति बाँधता हूँ। (त्वा) तुझे (ओषधीनां) ओषधियों के (पयसा) रस से (सं नह्यामि) भलीभाँति बाँधता हूँ। (त्वा) तुझे (प्रजया) सन्तान से, और (धनेन) धन से (सं नह्यामि) भलीभाँति बाँधता हूँ। (सं नद्धा) उक्त वस्तुओं से भलीभाँति बँधी हुई (सा) वह तू (इमं वाजं) इस ऐश्वर्य को (आ सनुहि) चारों ओर दान कर।

नह्यामि—णह बन्धने। सनुहि—षणु दाने।

[८] (अहं) मैं (अमः) 'अम' (अस्मि) हूं, (त्वं) तू (सा) 'सा' है [सा+अम=साम]। (अहं) मैं (साम) 'साम' (अस्मि) हूँ, (त्वं) तू (ऋक्) ऋक् है। (अहं) मैं (द्यौः) सूर्य हूँ, (त्वं) तू (पृथिवी) पृथिवी है। (तौ) वे हम दोनों (सं भवाव) परस्पर मिलें, (प्रजां) सन्तान को (आ जनयावहै) उत्पन्न करें।

[९] (यत्र) जहाँ (सु-हार्दः) सौहार्द-सम्पन्न (सु-कृतः) शुभ कर्म करनेवाले लोग (स्वायाः) अपने (तन्वः) शरीर के (रोगं) रोग को (विहाय) छोड़कर (अ-श्रोणाः) पंगु न होते हुए, (अङ्गैः अ-ह्रुताः) अंगों से टेढ़े-मेढ़े न होते हुए

(मदन्ति) आनन्द लाभ करते हैं, **(तत्र)** उस गृहाश्रम-रूपी **(स्वर्गे)** स्वर्ग में, हम **(पितरौ)** माता-पिता को **(पुत्रान् च)** और पुत्रों को **(पश्येम)** देखें।

[१०] हे देवी, मैं तुझे **(देव्या धिया)** उच्च विचारोंसे **(सं)** समन्वित **(अख्ये)** देखा है, **(उरु-चक्षसा)** दीर्घ दृष्टिवाली **(दक्षिणया)** परोपकार-भावना से **(सं)** समन्वित [देखा है]। तू **(मे आयुः)** मेरी आयु को **(मा प्र मोषीः)** अपहरण मत कर, **(अहं)** मैं **(तव)** तेरी आयु को **(मो)** अपहरण न करूँ। **(देवि)**हे देवी, **(तव)** तेरी **(सं-दृशि)** प्रेममय दृष्टि में, मैं **(वीरं)** वीर सन्तान को **(विदेय)** प्राप्त करूँ।

कर्मकाण्ड अनुसार इस मन्त्र में यजमान-पत्नी सोमक्रयणी गौ से आशीर्वाद माँगती है। दयानन्द-भाष्य में वाणी और विद्युत् के पक्ष में अर्थ दिया है। हमने समाज-परक अर्थ करते हुए मन्त्र वर की ओर से वधू को कहा गया माना है।

[११] **(इडे)** हे स्तुति-योग्य, **(रन्ते)** हे रमणीय, **(हव्ये)** हे आह्वान किये जाने योग्य, **(काम्ये)** हे चाहने योग्य, **(चन्द्रे)** हे आह्लाददायिनी, **(ज्योते)** हे ज्योतिष्मती, **(अदिते)** हे अखण्डनीय, **(सरस्वति)** हे विदुषी, **(महि)** हे पूजायोग्य, **(विश्रुति)** हे शास्त्रों का श्रवण करनेवाली, **(अघ्न्ये)** हे हिंसा या तिरस्कार की अपात्र देवी, **(एता)** ये **(ते)** तेरे **(नामानि)** नाम हैं। **(देवेभ्यः)** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए, तू **(मा)** मुझे **(सु-कृतं)** शुभ कर्त्तव्य कर्म **(ब्रूतात्)** बतलाती रह।

कर्मकाण्ड के अनुसार यजमान गाय के दाहिने कान में इस मन्त्र को जपता है। इस विनियोग का अनुसरण करते हुए उव्वट तथा महीधर ने गाय के पक्ष में ही मन्त्रार्थ दिया है। दयानन्द-भाष्य में मन्त्र का देवता पत्नी लिखा है और तदनुसार ही अर्थ किया है—

"**(इडे)** स्तोतुमर्हे, **(रन्ते)** रमणीये, **(हव्ये)** स्वीकर्तुमर्हे, **(काम्ये)** कमनीये, **(चन्द्रे)** आह्लादकारिके, **(ज्योते)** सुशीलेन द्योतमाने, **(अदिते)** आत्मस्वरूपेण अविनाशिनि, **(सरस्वति)** प्रशस्तं सरो विज्ञानं विद्यते यस्याः तत्सम्बुद्धौ, **(महि)** पूज्यतमे, **(विश्रुति)** विविधाः श्रुतयः श्रवणानि तद्वति, **(एता)** एतानि **(ते)** तव **(अघ्न्ये)** हन्तुं तिरस्कर्तुम् अयोग्ये, **(नामानि)** गौणिक्य आख्याः, **(देवेभ्यः)** दिव्यगुणेभ्यो, दिव्यगुणयुक्तपतिभ्यः **(मा)** माम्, **(सुकृतम्)** सुष्ठु कर्त्तव्यं कर्म **(ब्रूतात्)** ब्रूहि।"—द० भा०।

[१२] हे देवी, **(लोकं)** गृहाश्रम-लोक को **(पृण)** पूर्ण बनाओ, **(छिद्रं)** छिद्र को, दोष को **(पृण)** भरो, दूर करो, **(अथो)** और **(त्वं)** तुम **(ध्रुवा)** ध्रुव होकर, लक्ष्य के प्रति केन्द्रित होकर **(सीद)** बैठो। **(इन्द्राग्नी)** तुम्हारे पिता और भाई ने, तथा **(बृहस्पतिः)** वेदज्ञ पुरोहित ने **(त्वा)** तुम्हें **(अस्मिन् योनौ)** इस घर में **(असीषदन्)** स्थान दिलाया है।

कर्मकाण्ड में लोकंपृणा इष्टका के प्रति यह मन्त्र है। दयानन्दभाष्य में कन्या को सम्बोधित माना है और भावार्थ में लिखा है कि कन्याएँ माता, पिता, आचार्य

से उत्तम शिक्षा प्राप्त करके समावर्तन के अनंतर स्वयंवर विवाह करके पुरुपार्थं से आनन्दित हों।

इन्द्राग्नी—पिता-भ्राता। (इन्द्रः) पिता, ऋग् ४।१७।१७

[१३] हे देवी, तुम (**इषे**) ज्ञान-विज्ञान के लिए,(**राये**) धन के लिए, (**सहसे**) वल और साहस के लिए, (**द्युम्ने**) कीर्ति के लिए, (**ऊर्जे**) पराक्रम के लिए, (**अपत्याय**) सन्तान के लिए, इस गृहाश्रम में (**रमस्व**) रमो। तू (**सम्राट् असि**) सम्राज्ञी है, (**स्वराट् असि**) स्वकीय विद्या, वल आदि से देदीप्यमान है, (**सारस्वतौ उत्सौ**) ऋक्-सामरूप और मन-वाणीरूप सारस्वत प्रवाह (**त्वा**) तेरी (**प्र-अवताम्**) प्रकृष्टतया रक्षा करते रहें।

कर्मकाण्ड में यह मन्त्र उखा को सम्बोधित माना है। दयानन्द यहाँ पति-पत्नी कैसे वर्तें इसका ग्रहण करते हैं।

सारस्वतौ उत्सौ—ऋक्सामे वै सारस्वतौ उत्सौ (तै० सं० १।४।४।६), मनो वै सरस्वान् वाक् सरस्वती, एतौ सारस्वतौ उत्सौ (श० ७।५।१।३१)।

[१४] हे देवी, (**हृदे**) हृदय-सुख के लिए (**त्वा**) तुझे [स्वीकार करता हूँ], (**मनसे**) सत्यासत्य के मनन के लिए (**त्वा**) तुझे [स्वीकार करता हूँ],(**दिवे**) विद्या, प्रेम, शान्ति आदि के प्रकाश के लिए (**त्वा**) तुझे [स्वीकार करता हूँ], (**सूर्याय**) सूर्य-सदृश गुण के लिए (**त्वा**) तुझे [स्वीकार करता हूँ]। (**दिवि**) शुभ गुणों के प्रकाश में (**इमं**) इस (**ऊर्ध्वं**) उत्कृष्ट (**अध्वरं**) गृहाश्रम-यज्ञ को [चलाओ]। (**देवेषु**) विद्वानों के प्रति (**होत्राः**) शुभ वाणियों का (**यच्छ**) प्रयोग कर।

कर्मकाण्ड में इसका विनियोग सोम को अभिषव-पाषाण पर रखने में किया गया है, तदनुसार उवट एवं महीधर ने यह मन्त्र सोम को सम्बोधित मानकर अर्थ किया है। दयानन्द ने मन्त्र का देवता तो सोम ही माना है, किन्तु मन्त्रार्थ ब्रह्मचारिणी कन्या को सम्बोधन मानकर किया है। सोम देवता को संगति लगाने के लिए 'सोम' परमेश्वर को साक्षी रखकर मंत्रोक्त बात कही जा रही है, यह समझना चाहिए।

(**होत्रा**)—वाक् (निघं० १।११)।

[१५] हे देवी, (**मे**) मेरी (**आयुः**) आयु की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मेरे (**प्राणं**) प्राण की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मेरे (**अपानं**) अपान की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मेरे (**व्यानं**) व्यान की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मेरी (**चक्षुः**) आँख की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मेरे (**श्रोत्रं**) कान की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मेरी (**वाचं**) वाणी को (**पिन्व**) सींचना, (**मे**) मेरे (**मनः**) मन को (**जिन्व**) तृप्त करना, (**मे**) मेरी (**आत्मानं**) आत्मा की (**पाहि**) रक्षा करना, (**मे**) मुझे (**ज्योतिः**) ज्योति (**यच्छ**) प्रदान करना।

कर्मकांड में इस प्रामभृत् इष्टकाओं के उपधान में इसका विनियोग है, तदनु-

सार उव्वट एवं महीधर ने इष्टका को संबोधन मानकर अर्थ किया है। दयानन्द ने मन्त्र का देवता ऋतुओं को माना है तथा संबोधित पुरुष द्वारा स्त्री को तथा स्त्री द्वारा पुरुष को किया है। हमने यहाँ स्त्री को संबोधन माना है। विभिन्न ऋतुओं में हे देवी, तू मेरी आयु आदि की रक्षा करती रहना, यह अभिप्राय है।

[१६] हे देवी, (**यमाय**) यम-नियमों के लिए (**त्वा**) तुझे [ग्रहण करता हूँ], (**मखाय**) गृहाश्रम-यज्ञ के लिए(**त्वा**) तुझे [ग्रहण करता हूँ], (**सूर्यस्य तपसे**) सूर्य-ताप के सदृश तप के लिए (**त्वा**) तुझे [ग्रहण करता हूँ]। (**सविता देवः**) प्रेरक परमात्म-देव (**त्वा**) तुझे (**मध्वा**) माधुर्य से (**अनक्तु**) संयुक्त करे, चमकाये। (**पृथिव्याः**)पार्थिव देह के (**संस्पृशः**) अत्यधिक स्पर्श से (**पाहि**) मुझे बचाना। तू (**अर्चिः असि**) ज्वाला है, ज्वाला के समान कल्मष को दग्ध करनेवाली है, (**शोचिः असि**) पवित्रता की मूर्ति है, (**तपः असि**) तपोमयी है।

[१७] हे देवी, (**पुरस्तात्**) पूर्व दिशा के (**अग्नेः**) सूर्याग्नि के (**आधिपत्ये**) आधिपत्य में [रहकर] (**अनाधृष्टा**) अपराजित होती हुई तू (**मे**) मुझे (**आयुः**) जीवन (**दाः**) प्रदान कर। (**दक्षिणतः**) दक्षिण दिशा के (**इन्द्रस्य**) दक्षिणायन सूर्य के (**आधिपत्ये**) आधिपत्य में [रहकर] (**पुत्रवती**) पुत्र-जनन-शक्ति से युक्त होती हुई (**मे**) मुझे (**प्रजां**) सन्तान (**दाः**) प्रदान कर। (**पश्चात्**) पश्चिम दिशा के (**सवितुः देवस्य**) अस्तकालीन सूर्य के (**आधिपत्ये**) आधिपत्य में [रहकर] (**सु-षदा**) उत्कृष्ट स्थितिवाली होती हुई (**मे**) मुझे (**चक्षुः**) आँख (**दाः**) प्रदान कर। (**उत्तरतः**) उत्तर दिशा में (**धातुः**) उत्तरायण सूर्य के (**आधिपत्ये**) आधिपत्य में [रहकर] (**आश्रुतिः**) शास्त्र श्रवण करनेवाली होती हुई (**मे**) मुझे (**रायः पोषं**) ऐश्वर्य की पुष्टि (**दाः**) प्रदान कर। (**उपरिष्टात्**) ऊर्ध्वा दिशा के (**बृहस्पतेः**) मध्याह्नकालीन सूर्य के(**आधिपत्ये**) आधिपत्य में [रहकर](**विधृतिः**) विशेष धारक शक्तिवाली होती हुई (**मे**) मुझे (**ओजः**) ओज (**दाः**) प्रदान कर। (**विश्वाभ्यः**) समस्त (**नाष्ट्राभ्यः**) नाशक दुष्प्रवृत्तियों एवं दुष्क्रियाओं से (**मा**) मुझे (**पाहि**) बचाओ। हे देवी, तू (**मनोः**) [मुझ] मननशील की (**अश्वा**) उन्नति की ओर ले जानेवाली घोड़ी (**असि**) है। अथवा, (**मनोः**) मन की (**अश्वा**) व्यापिका (**असि**) है।

सविता वेद में प्रातःकालीन तथा सायंकालीन दोनों ही सूर्यों का नाम है—**उत रात्रीम् उभयतः परीयसे** (ऋग् ५।८१।४)।

(**मनोः**) अन्तःकरणस्य (**अश्वा**) व्यापिका।—द० भा०

[१८] हे देवी, (**पुरुषेभ्यः**) पुरुषों के लिए (**शिवा भव**) मंगलकारिणी होना, (**गोभ्यः**) गौओं के लिए, और (**अश्वेभ्यः**) अश्वों के लिए (**शिवा**) मंगलकारिणी होना। (**अस्मै**) इस (**सर्वस्मै**) सारे (**क्षेत्राय**) क्षेत्र के लिए (**शिवा**) मंगलकारिणी [होना]। (**इह**) इस गृहाश्रम में (**नः**) हम सबके लिए (**शिवा**) मंगलकारिणी

(एधि) होना।

[१६] (पृथिवि देवि) हे पृथिवी के तुल्य देवी, तुम (स्वस्तये) उत्तम अस्तित्व के लिए दृंहस्व) बढ़ो, मुझे भी बढ़ाओ। तुम (स्वधया) अपनी धारण-शक्ति से (आसुरी) असुरों की, प्राणधारियों की (माया) प्रज्ञा (कृता असि) बन गयी हो। (देवेभ्यः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (इदं हव्यं) यह तुम्हारा त्याग (जुष्टम् अस्तु) सेवनीय हो, अनुकरणीय हो। (अ-रिष्टा) अहिंसित-अक्षत होती हुई (त्वं) तुम (अस्मिन् यज्ञे) इस गृहाश्रम-यज्ञ में (उद्-इहि) उद्यम करती रहो।

दृंहस्व—दृहि वृद्धौ। (स्वस्तये)—अस्तिरभिपूजितः स्वस्ति (निरु० ३।२२)। सु+अस्ति=स्वस्ति। (माया) प्रज्ञा (निघं० ३।६)। आसुरी-असु— राः असुमन्तः प्राणवन्तः, असुराणामियम् आसुरी। अ-रिष्टा—अहिंसिता (रिषहिंसायाम्)।

[२०] (सु-प्र-नीते) हे उत्तम नीतिवाली, (अनु-मते) अनुकूल चिन्तनवाली देवी, (यत्) जो (ते नाम) तेरा नाम (सुहवं) शुभ आह्वान के योग्य, (अनुमतं) सबसे अनुमत और (सु-दानु) उत्कृष्ट देन देनेवाला है, (तेन) उसके द्वारा (विश्ववारे) हे सर्वगुणावृते तू (नः यज्ञं) हमारे गृहाश्रम-यज्ञ को (पिपृहि) पूर्ण कर। (सुभगे) हे सौभाग्यवती, तू (नः) हमें (सु-वीरं) उत्कृष्ट सन्तान से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान कर।

[२१] (अहं) मैं (सुस्तुती) मधुर स्तुति के साथ (सुहवां) प्रेम से पुकारने योग्य (राकां) पूर्णिमा के समान उज्ज्वल गुणोंवाली दान-परायणा पत्नी को (हुवे) पुकारता हूँ। (सुभगा) [वह] सौभाग्यवती देवी (नः) हमें, हमारे वचनों को (शृणोतु) सुने, (त्मना) स्वयं (बोधतु) जागरूक रहे। (अच्छिद्यमानया सूच्या) न टूटनेवाली सुई से अर्थात् सुदृढ़ साधनों से (अपः) कर्म को, कर्म-रूप वस्त्र को (सीव्यतु) सिले, (शत-दायं) सैंकड़ों का दान करनेवाली (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (वीरं) वीर सन्तान (ददातु) प्रदान करे।

अनुमतिः राका इति देवपत्न्यौ इति नैरुक्ताः, पौर्णमास्यौ इति याज्ञिकाः। 'या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिः या उत्तरा सा राका' इति विज्ञायते। अनुमतिः अनुमननात्। राका रातेः दानकर्मणः।...ददातु वीरं शतप्रदम्, उक्थ्यं वक्तव्य-प्रशंसम्। निरु० ११।२७।२८।

'राकां पूर्णप्रकाशयुक्तेन चन्द्रेण युक्तां रात्रीम् इव वर्तमानां स्त्रियम्'—द० भा०। राति ददातीति राका (रा दाने)।

[२२] (राके) हे पूर्णिमा के समान उज्ज्वल, दानशीला देवी, (याः) जो (ते) तुम्हारी (सु-मतयः) सुमतियां (सु-पेशसः) सुरूपवती हैं, (याभिः) जिनके कारण, [तुम] (दाशुषे) दानी को, परोपकारी को (वसूनि) धन (ददासि) दान करती हो, (ताभिः) उन सुमतियों के साथ (सु-भगे) हे सौभाग्यवती (अद्य) आज (सु-मनाः) शुभ, प्रसन्न मनवाली होकर (सहस्र-पोषं) सहस्रों पोषक ऐश्वर्यों को (रराणा)

दान करती हुई (**नः उप आ गहि**) हमारे समीप आओ।

सु-पेशसः—शोभनानि पेशांसि रूपाणि यासां ताः। (**पेशस्**—रूप (निघं० ३।७)

[२३] (**सिनी-वालि**) हे प्रेम-बन्धन में बद्ध, बलवती, बलदायिनी, प्रशस्त अन्नों की स्वामिनी, वरणीय गुणोंवाली, (**पृथु-स्तुके**) हे विशाल स्तुति के योग्य, बड़े-बड़े केशोंवाली देवी, (**या**) जो (**देवानां**) विद्वान्, सदाचारी भाइयों की (**स्वसा**) बहिन है, वह तू (**आ-हुतं**) आहुति दिये हुए (**हव्यं**) हव्य को, हवि की सुगन्ध को (**जुषस्व**) सेवन कर। (**देवि**) हे देवी, (**नः**) मुझे (**प्रजां**) प्रशस्त सन्तान (**दिदिड्ढि**) प्रदान कर।

सिनीवाली—सिनम् अन्नं भवति, सिनाति भूतानि, वालं पर्व वृणोतेः, तस्मिन् अन्नवती, वालिनी वा···। **पृथुष्टुके** पृथुजघने, स्तुकः स्त्यायतेः संघातः पृथुकेशस्तुके, पृथुस्तुते वा।' (निरु० ११।२९)। **सिनीवाली**—सिनी प्रेमबद्धा चासौ बलकारिणी च (द० भा०, यजु ३४।१०)। **दिदिड्ढि**)—दिग देहि, अत्र दिश [अतिसर्जने] धातोः 'बहुलं छन्दसि' इति शपः श्लुः।

—द० भा०, यजु ३४।१०

[२४] हे देवी! तू (**मूर्द्धा असि**) शिरोमणि है, (**राट्**) रानी है, (**ध्रुवा असि**) दृढ़ है, (**धरुणा**) पोषण करनेवाली है, (**धर्त्री असि**) धारण करनेवाली है, (**धरणी**)पृथिवी के तुल्य विशाल हृदयवाली है। मैं (**आयुषे त्वा**)आयु के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ,(**वर्चसे त्वा**) वर्चस्विता के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ, (**कृष्यै त्वा**) कृषि के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ, (**क्षेमाय त्वा**) योग-क्षेम के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ।

कर्मकाण्ड में मन्त्र इष्टका को सम्बोधित है। दयानन्द ने विदुषी देवता माना है, तथा विदुषी को पत्नी-रूप से ग्रहण-परक अर्थ किया है।

[२५] हे देवी! तू (**यन्त्री**) यन्त्रवत् कार्य करनेवाली है, (**राट्**) रानी है, (**यन्त्री असि**) नियन्त्रण में रहनेवाली है, (**यमनी**) नियन्त्रण में रखनेवाली है, (**ध्रुवा असि**)दृढ़-निश्चयवाली है, (**धरित्री**) भूमि के तुल्य क्षमाशीला है। मैं (**इषे त्वा**) इच्छासिद्धि के लिए तुझे [स्वीकार करता हूँ], (**ऊर्जे त्वा**) बल-पराक्रम के लिए तुझे [स्वीकार करता हूँ], (**रय्यै त्वा**) लक्ष्मी के लिए तुझे [स्वीकार करता हूँ], (**पोषाय त्वा**) पुष्टि के लिए तुझे [स्वीकार करता हूँ]।

यह मन्त्र भी कर्मकाण्ड में इष्टका को सम्बोधित है। दयानन्द ने विदुषी देवता माना है।

[२६] (**विश्वे देवाः**) सब सूर्य, चन्द्रादि प्रकाशमान पदार्थ तथा सब विद्वान् लोग (**नौ**) हम दोनों के (**हृदयानि**) हृदयों को (**सम् अञ्जन्तु**) प्रीतियुक्त करें, (**आपः**) जल तथा स्नेहमयी माताएँ (**सम्**) प्रीतियुक्त करें। (**मातरिश्वा**) वायु

तथा प्राणायामी वानप्रस्थजन (सं) प्रीतियुक्त करें, (धाता) धारण-पोषण-कर्ता अग्नि तथा धारक संन्यासीगण (सं) प्रीतियुक्त करें, (उ) और (देष्ट्री) उपदेशदात्री जगन्माता तथा वेदमाता (सं) प्रीतियुक्त करें।

[२७] (ऋतायते) सत्याचरण के इच्छुक के लिए (वाताः) वायुएँ (मधु क्षरन्ति) मधु बरसायें, (सिन्धवः) नदियाँ (मधु क्षरन्ति) मधु बरसायें। (नः) हमारे लिए (ओषधीः) ओषधियाँ (माध्वीः) मधु बरसाने वाली (सन्तु) हों॥ (नक्तं) रात्रि (उत) और (उषसः) उषाएँ (मधु) मधुमय हों, (पार्थिवं रजः) पार्थिव लोक (मधुमत्) मधुमय हो, (पिता द्यौः) पालक द्युलोक (नः) हमारे लिए (मधु अस्तु) मधुमय हो॥ (वनस्पतिः) वनस्पति (नः) हमारे लिए (मधुमान्) मधुमय हो, (सूर्यः) सूर्य (मधुमान् अस्तु) मधुमय हो। (गावः) गौएँ (नः) हमारे लिए (माध्वी) मधुमय (भवन्तु) हों॥

अन्नपूर्णा

हे देवी, मैंने गृहाश्रम-धर्म के लिए तुम्हें स्वीकार किया है। गृहाश्रम समृद्धि का द्वार है, लक्ष्मी का सदन है, सम्पदा का आगार है, श्री का मन्दिर है। तुम अन्नपूर्णा बनकर इस गृहाश्रम में प्रवेश करो।

[1]उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥ अथर्व ७।६०।५

हम अपने घरों में दूध-घी के लिए गौओं और बकरियों को पुकारते हैं, ऊन के लिए भेड़ों को पुकारते हैं और घरों में रसीले-रसीले अन्नों का भण्डार भरते हैं।

[2]उद् उत्सं शतधारं सहस्रधारम् अक्षितम्।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारम् अक्षितम्॥ अथर्व ३।२४।४

जैसे बादल का भण्डार क्षीण नहीं होता और वह सैकड़ों-सहस्रों धारों में बरसता है, वैसे ही हमारे धान्य के कोठे कभी क्षीण न हों और सहस्रों धारों से हमें सींचते रहें।

[3]इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ शाले-
अश्वावती गोमती सूनृतावती।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती-
उच्छ्रयस्व महते सौभगाय॥ अथर्व ३।१२।२

हे मेरे गृहाश्रम की शाला, तू स्थिर होकर खड़ी रह। तू उत्कृष्ट कोटि के अश्वों से परिपूर्ण, उत्कृष्ट कोटि की गौओं से परिपूर्ण, गृह-सदस्यों की मधुर, प्यारी, सत्य वाणी से परिपूर्ण, उत्कृष्ट कोटि के अन्नों से परिपूर्ण, घी और दूध से परिपूर्ण होती हुई हमारे महान् सौभाग्य के लिए गगनचुम्बी बनकर खड़ी रह।

[4]धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः प्रतिधान्या।
आ त्वा वत्सो गमेद् आ कुमारः
आ धेनवः सायम् आस्पन्दमानाः॥ अथर्व ३।१२।३

हे मेरे गृहाश्रम की शाला, तू समस्त भोग्य सामग्री को धारण करनेवाली और विशाल खम्भोंवाली हो, प्रभूत वस्त्र-आच्छादन आदि से युक्त तथा बड़ी

छतवाली हो, पवित्र धान्य से परिपूर्ण हो। तुझमें शिशुओं की किलकारियाँ सुनायी दें, तुझमें कुमार विचरण करें। सायंकाल उछलती-कूदती गौएँ तेरे अन्दर प्रवेश किया करें।

[५]एमां कुमारस् तरुण आ वत्सो जगता सह।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः॥ अथर्व ३।१२।७

इस हमारी गृहाश्रम की शाला में कुमार आयें, युवक आयें, जगत् को अपने अन्दर समेटे शिशु आयें। लबालब भरे हुए दूध और घी के घड़े रखे हों, दही के मटके भरे हों।

[६]पूर्णं नारि प्रभर कुम्भम् एतं
घृतस्य धाराम् अमृतेन सं भृताम्।
इमां पातॄन् अमृतेना समङ्ग्धि-
इष्टापूर्तम् अभिरक्षात्येनाम्॥ अथर्व ३।१२।८

हे गृहिणी, इस घड़े को पूरी तरह भर लो, अमृत से भरपूर घी की धार बहाओ। इन पीनेवाले गृह-सदस्यों और अतिथियों को अमृत से तृप्त करो। यज्ञ और परोपकार के कार्य गृहाश्रम की इस शाला की रक्षा करें।

[७]आ जिघ्र कलशं महि-आ त्वा विशन्त्विन्दवः।
पुनरुर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्व-
उरुधारा पयस्वती पुनर्माऽऽविशताद् रयिः॥ यजु० ८।४२

हे महिमामयी देवी, कलश को सूँघो, सूँघकर उसके स्वच्छ होने की परीक्षा करो। द्रव पदार्थ दूध, घी, शहद, फलों के रस आदि तुम्हें कलश में भरने के लिए प्राप्त हों। एक वार दान और भोग में व्यय करके पुनः तुम अन्न से भरपूर हो जाओ। पयस्वती गाय के समान दूध से परिपूर्ण तुम सहस्रधार बनकर हमें और अतिथियों को दूध का पान कराओ। व्यय हो जाने पर पुनः-पुनः हमें धन-सम्पदा एवं दूध-घी आदि प्राप्त होते रहें और पुनः पुनः तुम उन्हें बाँटती रहो।

[८]ऋतव स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः।
घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुधा
अक्षीयमाणाः॥ यजु १७।३

हे घर में रहनेवाली देवियो, तुम ऋतु हो, ऋतुओं के सदृश नियम से चलनेवाली हो। तुम सत्याचरण से बढ़नेवाली हो। तुम ऋतुओं में स्थित होनेवाली अर्थात् विभिन्न ऋतुओं के अनुसार भोजन, वस्त्र आदि का प्रबन्ध करनेवाली हो। तुम सत्य को बढ़ानेवाली हो। तुम घी बहानेवाली हो, मधु बहानेवाली हो, विविध खान-पान आदि की वस्तुओं से शोभित हो। तुम कामधेनु हो, तुम्हारे पास अन्न, दूध, घृत आदि ऐश्वर्य भरे रहते हैं, जो कभी समाप्त नहीं होते। उनसे तुम परिजनों और अभ्यागतों को तृप्त करती रहो।

[९]इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव।
पशून् यमिनि पोषय ॥ अथर्व ३।२८।४

इस गृहाश्रम में हमें पुष्टि प्राप्त हो, इस गृहाश्रम में रस प्राप्त हो। इस गृहाश्रम में हे देवी, तू दूध-घी आदि सहस्रों पोषक पदार्थों का दान कर। हे यम-नियमों का पालन करनेवाली गृहिणी, जिन गाय आदि पशुओं से पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं उन पशुओं का तू पोषण कर।

[१०]सं सिञ्चामि गवां क्षीरं, सम् आज्येन बलं रसम्।
सं सिक्ता अस्माकं वीराः, ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥
अथर्व २।२६।४

मैं गौओं का दूध शरीरों में सींचता हूँ। गो-घृत से शरीर में बल और रस का संचार करता हूँ। हमारी वीर सन्तानें भी गो-दुग्ध और गो-घृत से सींची जाती हैं। मुझ गो-पालक के पास गौएँ स्थिर रूप से बनी रहती हैं।

[११]घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास् त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमानाः
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः
समन्ताः ॥ अथर्व ४।३४।६

हे गृहिणी, इस गृहाश्रम-रूप स्वर्ग-लोक में तुझे ऐसी धाराएँ प्राप्त हों जिनमें घृत के सरोवर हों, मधु के तट हों, ओषधि-रसों का जल हो, जो दूध और मठे से भरी हों। वे मधुरता के साथ तुझे सींचती रहें। किनारों तक भरी हुई कमल-फूलों से अलंकृत सरसियाँ तेरे लिए उपस्थित हों।

[१२]ऊर्क् च मे सूनृता च मे, पयश्च मे रसश्च मे,
घृतं च मे मधु च मे, सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे,
कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे, जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे,
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ यजु १८।९

गृहाश्रम-रूप यज्ञ से हमें अन्न प्राप्त हो, सत्य-मधुर वाणी प्राप्त हो, रस प्राप्त हो, घृत प्राप्त हो, मधु प्राप्त हो, सहभोज प्राप्त हो, सहपान प्राप्त हो, खेती प्राप्त हो, वर्षा प्राप्त हो, विजय प्राप्त हो, बाधाओं का उद्भेदन प्राप्त हो।

[१३]व्रीहयश्च मे यवाश्च मे, माषाश्च मे तिलाश्च मे,
मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे, प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे,
श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे, गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे,
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ यजु १८।१२

गृहाश्रम-रूप यज्ञ से हमारे घर में धान भर जाएँ, जौ भर जाएँ, उड़द भर

जाएँ, तिल भर जाएँ; मूँग भर जाएँ, चने भर जाएँ; प्रियंगु चावल भर जाएँ, किनकी चावल भर जाएँ, सामक चावल भर जाएँ, जंगल में स्वतः उत्पन्न धान भर जाएँ, मसूर भर जाएँ।

[१६]उषस् तम् अश्यां यशसं सुवीरं
दासप्रवर्गं रयिम् अश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि
वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम्॥ ऋग् १।९२।८

हे उषा के समान जागरूक सौभाग्यवती देवी, ऐश्वर्य के लिए प्रेरित हुई तू सत्कर्म से अर्जित यश द्वारा जगमगानेवाली है। तेरे सहयोग से मैं उस ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकूँ जो कीर्ति का हेतु बने, जो श्रेष्ठ वीर सन्तान से युक्त हो, जो सेवक-जनों से युक्त हो, जो दस्यु लोगों का वर्जन कर सके और जो सुशिक्षित अश्वों से युक्त हो तथा हमारे इन्द्रिय-रूप अश्वों को जगाकर उत्कृष्ट दिशा में प्रवृत्त करने-वाला हो।

हे देवी, तू अन्नपूर्णा बन। अन्न, धन, दूध, घी, दही से भरपूर होकर गृह-वासियों का पोषण कर, विद्वान् अतिथि-जनों का पोषण कर, दीन-दुःखियों का पोषण कर। घरों में दीनता-दरिद्रता वरसती हो, यह वैदिक आदर्श नहीं है। वैदिक आदर्श यह है कि घर में लक्ष्मी वरसे—**वयं स्याम पतयो रयीणाम्** (ऋग् १०।१२१।१०)। उस लक्ष्मी से तू लक्ष्मीवती बन और सकल परिवार को उस लक्ष्मी से सिक्त कर।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] **(इह)** यहाँ **(गावः)** गौएँ **(उप-हूताः)** उप-निमन्त्रित हैं, **(अजा-अवयः)** बकरियाँ और भेड़ें **(उप-हूताः)** उप-निमन्त्रित हैं, **(अथो)** और **(नः)** हमारे **(गृहेषु)** घरों में **(अन्नस्य)** अन्न का **(कीलालः)** रस **(उप-हूतः)** उप-निमन्त्रित है।

[२] **(उत् उत्सं)** ऊपर आकाश में विद्यमान बादलरूपी स्रोत **(शत-धारं)** सैंकड़ों धारों में वरसनेवाला है, **(सहस्र-धारं)** सहस्रों धारों से सींचनेवाला है, **(अक्षितं)** अक्षय है। **(एवा)** इसी प्रकार **(अस्माकं)** हमारा **(इदं)** यह **(धान्यं)** धान्य **(सहस्र-धारं)** सहस्रों धारों से हमें सींचनेवाला हो, **(अक्षितम्)** अक्षय हो।

[३] **(शाले)** हे हवेली, तू **(अश्वावती)** उत्कृष्ट जाति के घोड़ों से परिपूर्ण, **(गोमती)** उत्कृष्ट जाति की गौओं से परिपूर्ण और **(सूनृतावती)** मधुर-सत्य वाणी से परिपूर्ण होती हुई **(इह एव)** यहाँ ही **(प्रति-तिष्ठ)** प्रतिष्ठित रह। **(ऊर्जस्वती)** उत्कृष्ट अन्नों से परिपूर्ण, **(घृतवती)** उत्कृष्ट घी से परिपूर्ण तथा **(पयस्वती)** उत्कृष्ट दूध से परिपूर्ण होती हुई **(महते सौभगाय)** हमारे महान् सौभाग्य के लिए **(उत्-श्रयस्व)** उन्नत होकर खड़ी रह।

[४] (शाले) हे हवेली, तू (धरुणी) विपुल भोग्य सामग्री को धारण करने-वाली, विशाल खम्भोंवाली (बृहत्-छन्दाः) प्रभूत वस्त्र-आच्छादनवाली, बड़ी छतवाली, तथा (पूति-धान्या) पवित्र धान्योंवाली (असि) है। (त्वा) तुझमें (वत्सः) शिशु (आ गमेत्) आये, (कुमारः) कुमार (आ गमेत्) आये। (सायं) सायंकाल (आस्पन्दमानाः) उछलती-कूदती हुई (धेनवः) दुधारू गौएँ (आ) आयें।

[५] (इमां) इस हवेली में (कुमारः) कुमार और (तरुणः) युवक (आ) आये। (जगता सह) जगत् के साथ (वत्सः) शिशु (आ) आये। (इमां) इसमें (परिस्रुतः) परिस्रुत होने वाले दूध और घी का (कुम्भः) घड़ा (आ) आये। ये सब (दध्नः) दही के (कलशैः) मटकों के साथ (आ अगुः) आयें।

[६] (नारि) हे नारी, (एतं) इस (कुम्भं) घड़े को (पूर्णं) पूरा (प्र भर) भर लो। (अमृतेन) अमृत से (सं-भृतां) भरपूर (घृतस्य धारां) घी की धार को [वहाओ]। (इमान् पातॄन्) इन पीनेवालों को (अमृतेन) अमृतमय दूध, दही, घी से (सम्-अङ्ग्धि) पेट-भर छकाओ। (एनां) इस हवेली को (इष्टं-आपूर्तं) यज्ञ और परोपकार-कार्य (अभि-रक्षाति) अभिरक्षित करते रहें।

[७] (महि) हे महिमामयी देवी, तू (कलशं) कलसे को (आ-जिघ्र) चारों ओर से सूँघ [सूँघकर स्वच्छता की परीक्षा कर]। कलश में भरने के लिए (त्वा) तुझे (इन्दवः) द्रव पदार्थ दूध, घी, मठा, शहद, फलों के रस आदि (आ विशन्तु) प्राप्त हों। एक बार समाप्त हो जाने पर (पुनः) फिर (ऊर्जा) अन्न के साथ (नि वर्तस्व) अतिशय रूप से विद्यमान हो। (सा) वह (उरु-धारा पयस्वती) प्रचुर धारोंवाली पयस्विनी गाय के समान प्रचुर धाराओं में दूध बहानेवाली तू (नः) हमें और हमारे अतिथियों को (सहस्रं धुक्ष्व) सहस्र धारों में दुग्ध-पान करा। (पुनः) फिर-फिर (मा) मुझे (रयिः) धन-सम्पदा (आ विशतात्) प्राप्त होती रहे।

[८] हे देवियो, तुम (ऋतवःस्थ) ऋतु हो, ऋतुओं के सदृश नियम-परायणा हो, (ऋत-वृधः) सत्य से बढ़नेवाली हो, (ऋतु-स्थाःस्थ) ऋतुओं के अनुसार स्थित होनेवाली हो, (ऋत-वृधः) सत्य को बढ़ानेवाली हो। (घृत-श्चुतः) घी बहानेवाली, (मधुश्च्युतः) मधु बहानेवाली, (वि-राजः नाम) विविध वस्तुओं से शोभित, (कामदुघाः) कामधेनु-रूप और (अक्षीयमाणाः) क्षीण न होनेवाली हो।

[९] (इह) इस गृहाश्रम में (पुष्टिः) पुष्टि प्राप्त हो। (इह) इस गृहाश्रम में (रसः) रस प्राप्त हो। हे देवी, (इह) इस गृहाश्रम में तू (सहस्र-सा-तमा) सहस्रों पदार्थों का अधिकाधिक दान करनेवाली (भव) हो। (यमिनि) हे यम-नियम-परायणा गृहिणी, (पशून्) गाय आदि पशुओं को (पोषय) हृष्टपुष्ट कर।

[१०] मैं (गवां) गौओं का (क्षीरं) दूध (सं सिञ्चामि) अच्छी तरह सींचता हूँ, (आज्येन) घृत से (बलं) बल, और (रसं) रस (सं सिञ्चामि) अच्छी तरह सींचता हूँ। (अस्माकं) हमारी (वीराः) वीर सन्तानें (सं सिक्ताः) दूध, घी, बल

और रस से सींची जाती हैं। **(मयि गोपतौ)** मुझ गो-पालक के पास **(गावः)** गौएँ **(ध्रुवाः)** स्थिर रूप से रहती हैं।

[११] **(घृत-ह्रदाः)** घी के सरोवर वाली, **(मधु-कूलाः)** मधु के तटोंवाली, **(सुरा-उदकाः)** ओषधि-रस-रूप जलवाली, **(क्षीरेण)** दूध से **(उदकेन दध्ना)** और जल-मिश्रित दही अर्थात् मठे से **(पूर्णाः)** भरी हुई **(एताः)** ये **(सर्वाः)** सब **(धाराः)** धाराएँ **(स्वर्गे लोके)** गृहाश्रम-रूप स्वर्ग-लोक में **(मधुमत् पिन्वमानाः)** मधुरता के साथ सींचती हुई **(त्वा)** तुझे **(उप यन्तु)** प्राप्त हों। **(सम्-अन्ताः)** किनारों तक भरी हुई **(पुष्करिणीः)** कमल-फूलों से अलंकृत सरसियां **(त्वा उप-तिष्ठन्तु)** तेरे समीप उपस्थित रहें।

सुरोदकाः—सुरा ओषधिरास एव उदकं जलं यासु ताः। 'अपां च वा एष ओषधीनां च रसो यत् सुरा' श० ब्रा० १२।८।१।४।

[१२] **(यज्ञेन)** गृहाश्रम-रूप यज्ञ से **(ऊर्क् च मे)** मेरे लिए अन्न, **(सूनृता च मे)** और मेरे लिए सत्य-प्रिय वाणी, **(पयः च मे)** और मेरे लिए दूध, **(रसः च मे)** और मेरे लिए रस **(घृतं च मे)** और मेरे लिए घृत, **(मधु च मे)** और मेरे लिए मधु, **(सग्धिः च मे)** और मेरे लिए सह-भोज, **(सपीतिः च मे)** और मेरे लिए सह-पान, **(कृषिः च मे)** और मेरे लिए खेती, **(वृष्टिः च मे)** और मेरे लिए वर्षा, **(जैत्रं च मे)** और मेरे लिए विजय, **(औद्भिद्यं च मे)** और मेरे लिए बाधाओं का उद्भेदन **(कल्पन्ताम्)** भरपूर प्राप्त हों।

[१३] **(यज्ञेन)** गृहाश्रम-रूप यज्ञ से **(व्रीहयः च मे)** मेरे लिए धान, **(यवाः च मे)** और मेरे लिए जौ, **(माषाः च मे)** और मेरे लिए उड़द, **(तिलाः च मे)** और मेरे लिए तिल, **(मुद्गाः च मे)** और मेरे लिए मूंग, **(खल्वाः च मे)** और मेरे लिए चने, **(प्रियङ्गवः च मे)** और लिए प्रियंगु चावल, **(अणवः च मे)** और मेरे लिए किनकी चावल, **(श्यामाकाः च मे)** और मेरे लिए सामक चावल, **(नीवाराः च मे)**, और मेरे लिए जंगल में उत्पन्न धान, **(गोधूमाः च मे)** और मेरे लिए गेहूँ, **(मसूराः च मे)** और मेरे लिए मसूर **(कल्पन्ताम्)** भरपूर हों।

[१४] **(उषः)** हे उषा के समान जागरूक **(सुभगे)** सौभाग्यवती देवी, [तेरे सहयोग से मैं] **(तम्)** उस **(यशसं)** यश प्राप्त करानेवाले, **(सु-वीरं)** श्रेष्ठ वीर सन्तान से युक्त **(दास-प्र-वर्गं)** सेवक-जनों से युक्त और दस्यु लोगों का प्रकृष्टतया वर्जन करानेवाले, **(अश्व-बुध्यं)** सुशिक्षित घोड़ों से युक्त तथा इन्द्रिय-रूप अश्वों को जगानेवाले **(बृहन्तं)** विशाल **(रयिं)** ऐश्वर्य को **(अश्यां)** प्राप्त करूँ, **(या)** जो तू **(वाज-प्रसूता)** ऐश्वर्य के लिए प्रेरित हुई **(सु-दंससा)** सत्कर्म से अर्जित **(यशसा)** यश से **(विभासि)** विशेष रूप से जगमगाती है।

'**(दासप्रवर्गम्)** दासानां सेवकानां प्रवर्गाः समूहा यस्मिंस्तम्—द० भा०; **(अश्वबुध्यम्)** अश्वा बुध्यन्ते सुशिक्ष्यन्ते येन तम्'—द० भा०।

१२

सद्गृहिणी और सम्राज्ञी

[वृद्धजनों का वधू को आशीष व आदेश]

हे कुमारी, आज तुम सुयोग्य, सुन्दर वर द्वारा पाणिग्रहण किये जाने के लिए उद्यत होकर समयोचित शृंगार करके माता, पिता एवं अन्य सम्बन्धियों के साथ विवाह-मण्डप में आयी हो। इस मंगलमय पावन अवसर पर हमारा हृदय गद्गद हो रहा है, अन्तस्तल से आशीर्वाद की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं।

[1]देवस् त्वा सवितोद्वपतु
सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या।
अव्ययमाना पृथिव्याम्
आशा दिश आ पृण॥ यजु ११।६३

सूर्य के समान तेजस्वी, दिव्य गुण-कर्म-स्वभाववाला, प्रशस्त हाथोंवाला, प्रशस्त अंगुलियोंवाला, प्रशस्त भुजाओंवाला वर अपने सामर्थ्य से तुम्हारा पाणिग्रहण करे। पतिगृह की भूमि पर किसी भी दृष्टि से व्यथित न होती हुई तुम पति की आशाओं को पूर्ण करना, दिशाओं को यश से परिपूर्ण करना।

तुम्हारे माता-पिता कन्या-दान करते हुए तुम्हारा हाथ वर के हाथ में सौंपते हुए कह रहे हैं:

[2]उत्थाय बृहती भव, उदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम्।
मित्रैतां त उखां, परिददाम्यभित्या
एषा मा भेदि॥ यजु ११।६४

हे पुत्री, तू उठकर खड़ी हो, भावी जीवन में भी सदा स्थिरता के साथ खड़ी होना। हे मैत्रीपूर्ण हृदयवाले वर, इस परिणीयमान कन्या को हम तुम्हें सौंपते हैं। ध्यान रखना, इसका मन टूटे नहीं। विघ्न-बाधाएँ कभी इसे छिन्न-भिन्न न कर सकें।

[3]आयोष् ट्वा सदने सादयामि-
अवतश् छायायाँ समुद्रस्य हृदये।
रश्मीवतीं भास्वतीम् आ या द्यां भासि-
आ पृथिवीम् आ-उर्वन्तरिक्षम्॥ यजु १५।६३

हे पुत्री, हम आयुष्मान् वर के हाथ में तुझे सौंपते हैं, रक्षा में समर्थ वर की छत्रछाया में तुझे बैठाते हैं, समुद्र के समान अगाध गुणोंवाले वर के हृदय में तुझे

आसीन करते हैं। तू ज्ञान-किरणों से देदीप्यमान है, तू सद्‌गुणों से भासमान है। तू अपने तथा अन्यों के आत्मा-रूप द्यु-लोक को चमकानेवाली है, तू देह-यष्टि-रूप-पृथिवी को चमकानेवाली है, तू हृदय-रूप अंतरिक्ष को चमकानेवाली है।

हे वधू, तुम आज पतिगृह जा रही हो। अब तक तुम पितृगृह से जुड़ी हुई थीं, अब पतिगृह से जुड़ रही हो।

[४]अर्यमणं यजामहे, सुबन्धुं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात्, प्रेतो मुञ्चामि नामुतः॥

अथर्व १४।१।१७

तुम्हारे हित-चिन्तक हम लोग न्यायकारी परमेश्वर की पूजा करते हैं, जो उत्तम बन्धु है और पति प्राप्त करानेवाला है। जैसे पका हुआ बदरीफल वृक्ष-शाखा के वृन्त से छूटकर अलग हो जाता है, ऐसे ही परिपक्व अर्थात् पूर्ण यौवन को प्राप्त तुम्हें हम पितृगृह के बन्धन से मुक्त कर रहे हैं, किन्तु पतिगृह के बन्धन से कभी मुक्त नहीं करेंगे।

[५]आशासाना सौमनसं, प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा, सं नह्यस्वामृताय कम्॥

अथर्व १४।१।४२

हे वधू, पतिगृह में तुम सौहार्द, उत्कृष्ट सन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्य की कामना करती हुई पति की अनुगामिनी रहकर सदा घर में अमृत बरसाने के लिए कटिबद्ध रहना।

[६]ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं
ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य
शिवा स्योना पतिलोके विराज॥ अथर्व १४।१।६४

हे पुत्री, कार्यारम्भ से पूर्व ब्रह्म को स्मरण करना, कार्यारम्भ के पश्चात् ब्रह्म को स्मरण करना। मध्य में ब्रह्म को स्मरण करना, अन्त में ब्रह्म को स्मरण करना, सब समय ब्रह्म को स्मरण रखना। समस्त आधि-व्याधियों से रहित गृहाश्रम की देवपुरी में पहुँचकर पतिलोक में मंगलकारिणी एवं सुखदायिनी बनकर शोभित होना।

[७]अदेवृघ्नी-अपतिघ्नी-इहैधि
शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर् देवकामा
स्योनेमम् अग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥ अथर्व १४।२।१८

पतिगृह में निवास करती हुई तुम कभी अपने देवरों को कष्ट मत पहुँचाना, पति को कष्ट मत पहुँचाना, घर के पशुओं के लिए सुखकर होना, सदा सुनियन्त्रित

तथा वर्चस्विनी बनना। प्रजनन-सामर्थ्यवाली होती हुई वीरप्रसवा बनना, परमेश्वर की पूजा करना, विद्वानों का सत्कार करना, सुखदायिनी बनकर सदा गार्हपत्य अग्नि की सेवा करना।

[८]आरोह चर्म-उपसीद-अग्निम्
एष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै
सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस् त एषः।। अथर्व १४।२।२४

मृगछाला पर बैठकर परमात्माग्नि एवं यज्ञाग्नि की उपासना करना, क्योंकि यह अग्नि-देव सब काम-क्रोध आदि राक्षसों एवं रोग-राक्षसों का हनन करने में समर्थ है। अपने पति के लिए श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करना, ऐसा यत्न करना कि तुम्हारा पुत्र अतिशय ज्येष्ठ गुणों से सम्पन्न हो।

[९]सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां
सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान्।। अथर्व १४।२।२६

तुम सुमंगलमयी, गृह-जनों का कष्ट से उद्धार करनेवाली, पति के लिए अतिशय सुखदायिनी, सास-श्वसुर को शान्ति देनेवाली होकर पतिगृह में प्रवेश करो।

[१०]स्योना भव श्वशुरेभ्यः, स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे, स्योना पुष्टायैषां भव।।
अथर्व १४।२।२७

तुम श्वसुर-जनों को सुख देना, पति को सुख देना, परिवार के अन्य जनों को सुख देना, पतिगृह की सारी ही प्रजा को सुख देना और इन सबकी यथायोग्य सेवा एवं पुष्टि करती रहना।

[११]प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु।। अथर्व १४।२।७५

हे वधू, तुम पतिगृह जाओ और वहाँ गृहपत्नी बनकर रहो। सविता प्रभु तुम्हारी आयु लम्बी करे। सुबोधमयी, तुम सदा जागरूक रहती हुई स्वयं को तथा अन्य परिजनों को सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कराने के लिए सतर्क रहना।

[१२]चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि
यज्ञियासि-अदितिरसि-उभयतः शीर्ष्णी।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस् त्वा पदि बध्नीतां
पूषाध्वनस् पातु—इन्द्रायाध्यक्षाय।। यजु ४।१९

हे वधू, तुम चेतनामयी हो, चिन्तनशीला हो, बुद्धिमती हो, त्यागमयी हो, क्षत्रिया हो, यज्ञ की अधिकारिणी हो, अखण्डनीया हो, अभ्युदय-निःश्रेयस दोनों ओर सिर रखनेवाली हो। तुम सत्कर्मों में आगे बढ़नेवाली और शत्रु के प्रति आक्रमण करनेवाली बनो। तुम्हारा पति मित्र बनकर तुम्हें पैर से बाँधे अर्थात् अनुचित स्थान और अनुचित कार्य में कदम रखने से रोके। तुम्हारा पति पुष्टि-कर्ता बनकर अनुचित मार्ग से तुम्हारी रक्षा करे। गृहाश्रम के अध्यक्ष वीर एवं ऐश्वर्यवान् पति के प्रति हम तुम्हें सौंपते हैं।

[13]वस्वी-असि-अदितिरसि
आदित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि।
बृहस्पतिष् ट्वा सुम्ने रम्णातु
रुद्रो वसुभिराचके ॥ यजु ४।२१

हे वधू, तुम सद्गुणों एवं सज्जनों को बसानेवाली हो, तुम अखण्डनीया हो, तुम अखण्डनीय माता की पुत्री हो, तुम पापों एवं पापियों के लिए रौद्ररूपा हो, पुण्यों एवं पुण्यकर्ताओं के लिए आह्लादप्रदा हो। विद्वान् तुम्हारा पति तुम्हें सुख में रमण कराये, दुःख-विदारक तुम्हारा पति तुम्हें ऐश्वर्यों से पूर्ण करे।

[14]ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्
आयतने प्रजया पशुभिर् भूयात्।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्
इन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया॥ यजु ५।२८

हे वधू, तुम स्थिर हो, गृहाश्रम-यज्ञ का यजमान तुम्हारा पति भी इस घर में सन्तान और पशुओं से स्थिर होवे। तुम्हारे द्वारा आकाश और भूमि घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से परिपूर्ण हों। तुम अपने ऐश्वर्यवान् पति की छत हो, छत के समान विपत्तियों से रक्षा करनेवाली हो। तुम सब जनों की छाया हो, छाया के समान शीतलता प्रदान करनेवाली हो।

[15]विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय-
उदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष् ट्वाऽभिपातु मह्या स्वस्त्या
छर्दिषा शन्तमेन तया देवतया-
अङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ यजु १३।१९

हे वधू, हम तुमसे आशा करते हैं कि जैसे तुम अपने तथा अन्य गृही जनों के शारीरिक प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि को स्वस्थ रखोगी, वैसे ही पारिवारिक प्राण अर्थात् सद्गुणों के ग्रहण की शक्ति को, पारिवारिक अपान अर्थात् दुर्गुणों के निःसारण की शक्ति को, पारिवारिक व्यान अर्थात् चेष्टाओं की शक्ति को और पारिवारिक उदान अर्थात् ऊर्ध्वगति की शक्ति को भी विकसित करोगी। तुम

अपनी एवं परिवार की प्रतिष्ठा का और अपने एवं परिवार के चरित्र का भी ध्यान रखोगी। अग्निवत् तेजस्वी तुम्हारा पति महान् योग-क्षेम एवं अधिकाधिक सुखदायक घर देकर तुम्हारी रक्षा करे। उस देवतास्वरूप पति के साथ तुम क्रिया-शील व्यक्तियों के समान संकल्प एवं कर्म में ध्रुव होकर गृहाश्रम में स्थित रहना।

[१६]परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस् पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर् यच्छ।
सूर्यस् तेऽधिपतिस् तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ।। यजु १५।५८

हे वधू, तुम ज्योतिष्मती हो, उच्च स्थितिवाला तुम्हारा पति द्युलोक के समान उच्च घर में तुम्हें स्थान देवे। तुम धर्मानुकूल बातों को ग्रहण करने के लिए, दोषों को दूर करने के लिए तथा सबके चेष्टावान् बनने के लिए सम्पूर्ण ज्योति प्रदान करो। सूर्य के समान विद्या आदि से प्रकाशमान पुरुष तुम्हारा पति है। देवता-स्वरूप उस पति के साथ तुम शरीर में प्राण के समान गृहाश्रम में स्थिर होकर रहो।

[१७]यथा सिन्धुर् नदीनां, साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि, पत्युरस्तं परेत्य।। अथर्व १४।१।४३

हे वधू, जैसे वर्षक बादल नदियों को साम्राज्य दे देता है, वैसे ही तुम्हारा वर्षक पति तुम्हें घर का साम्राज्य सौंप दे। तुम पति के घर जाकर सम्राज्ञी बनकर रहो।

[१८]सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु, सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि, सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः।। अथर्व १४।१।४४

तुम श्वशुरों की दृष्टि में महारानी बनो, देवरों की दृष्टि में महारानी बनो, ननद की दृष्टि में महारानी बनो, सास की दृष्टि में महारानी बनो।

हे पुत्री, यही हमारा आशीर्वाद है, यही हमारी शुभ-कामना है, यही हमारी शिक्षा है, यही हमारा उपदेश है।

।। ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु ।।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[१] हे पुत्री, (सु-पाणिः) प्रशस्त हाथोंवाला, (सु-अङ्गुरिः) प्रशस्त अंगुलियों वाला, (सु-बाहुः) प्रशस्त भुजाओंवाला, (देवः) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाववाला (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी वर (शक्त्या) सामर्थ्य से (त्वा उद्-वपतु) तुझे पाणिग्रहण के लिए उठाये। (पृथिव्यां) पतिगृह की भूमि पर (अ-व्यथमाना) व्यथित न होती हुई तू (आशाः) आशाओं को (आ पृण) पूर्ण कर, (दिशः) दिशाओं को (आ पृण) यश से परिपूर्ण कर।

यह मन्त्र कर्मकाण्ड में उखा (हांडी) को सम्बोधित किया जाता है। दयानन्द-भाष्य में स्त्री को सम्बोधित है।

[२] हे पुत्री, हे कन्या, तू **(उत्थाय)** उठकर **(बृहती भव)** लम्बाकार हो, **(उ)** और भावी जीवन में भी **(त्वं)** तू **(ध्रुवो)** स्थिर होकर **(उत् तिष्ठ)** खड़ी रहना। **(मित्र)** हे मित्रवर, **(एतां)** इस **(उखां)** प्राप्तव्य कन्या को **(अ-भित्यै)** न तोड़ने के लिए, व्यथित न करने के लिए, अपितु उचित सम्मान के लिए **(ते)** तुझे **(परिददामि)** सौंपता हूँ / सौंपती हूँ। **(एषा)** यह **(मा भेदि)** छिन्न-भिन्न न हो।

कर्मकाण्ड में मन्त्र का पूर्वार्द्ध उखा को तथा उत्तरार्द्ध मित्र देवता को सम्बोधित किया जाता है। दयानन्द क्रमशः कन्या तथा वर को सम्बोधित मानते हैं।

"उत्थाय आलस्यं विहाय बृहती महापुरुषार्थयुक्ता भव। **(उखाम्)** प्राप्तव्यां कन्याम् [उख गतौ]। हे विदुषि कन्ये, त्वं ध्रुवा बृहती भव विवाहाय उत्तिष्ठ, उत्थाय एतं पतिं स्वीकुरु।" द० भा०। अभित्यै—अभेदनाय **(मही०)**, भय-राहित्याय (द० भा०)।

[३] **(रश्मीवतीं)** जो ज्ञान-रश्मियोंवाली है, **(भास्वतीं)** सद्गुणों से भासमान है, **(या)** जो **(द्याम्)** आत्मा-रूप द्युलोक को **(आ भासि)** आभासित करती है, **(पृथिवीं)** देह-रूप पृथिवी को **(आ भासि)** आभासित करती है, **(उरु अन्तरिक्षं)** हृदयरूप विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को **(आ भासि)** आभासित करती है, ऐसी **(त्वा)** तुझे **(आयोः)** आयुष्मान् वर के **(सदने)** घर में, **(अवतः)** रक्षक वर की **(छायायां)** छत्रछाया में, **(समुद्रस्य)** समुद्र के समान अगाध गुणोंवाले वर के **(हृदये)** हृदय में **(सादयामि)** स्थित करता हूँ / स्थित करती हूँ।

दयानन्द-भाष्य के अनुसार इस मन्त्र का देवता 'विदुषी' है।

[४] **(सु-बन्धु)** उत्तम बन्धु, **(पति-वेदनं)** पति प्राप्त करानेवाले **(अर्यमणं)** श्रेष्ठों का मान करनेवाले न्यायकारी परमेश्वर की **(यजामहे)** हम पूजा करते हैं। **(बन्धनात्)** वृन्त से **(उर्वारुकम् इव)** बदरीफल के समान, हे वधू, तुम्हें मैं **(इतः)** यहाँ से, इस पितृगृह से **(प्र मुञ्चामि)** छुड़ाता हूँ / छुड़ाती हूँ **(अमुतः)** उस पति-गृह से **(न)** नहीं।

अर्यमा—'योऽर्यान् मन्यते स न्यायाधीशः' यजु ३६।९। योऽर्यान् श्रेष्ठान् मनुष्यान् मिमीते मन्यते (ऋग् २।२७।५)। —द० भा०।

[५] हे वधू, तू **(सौमनसं)** सौहार्द **(प्रजां)** सन्तान **(सौभाग्यं)** सौभाग्य, तथा **(रयिं)** ऐश्वर्य को **(आशासाना)** चाहती हुई **(पत्युः)** पति की **(अनु-व्रता)** अनुगामिनी **(भूत्वा)** होकर **(कं)** सुखपूर्वक **(अमृताय)** अमृत बरसाने के लिए **(सं नह्यस्व)** सन्नद्ध रहना।

[६] हे वधू, **(अपरं)** कार्यारम्भ के पश्चात् **(ब्रह्म युज्यतां)** ब्रह्म का ध्यान करना, **(पूर्वं)** कार्यारम्भ के पूर्व **(ब्रह्म)** ब्रह्म का ध्यान करना, **(अन्ततः)** कार्य के अन्त में और **(मध्यतः)** मध्य में **(ब्रह्म)** ब्रह्म का ध्यान करना, **(सर्वतः)** सब ओर **(ब्रह्म)** ब्रह्म को स्मरण रखना। **(अना-व्याधां)** व्याधियों से रहित **(देवपुरां)**

गृहाश्रम की देवपुरी को (प्र पद्य) प्राप्त होकर (पति-लोके) पति-गृह में (शिवा) मंगलकारिणी, तथा (स्योना) सुखदायिनी होकर (विराज) विराजमान रहना।

[७] हे वधू, तुम (इह) इस पतिगृह में (अ-देवृ-घ्नी) देवरों को कष्ट न देनेवाली (अ-पति-घ्नी) पति को कष्ट न देनेवाली, (पशुभ्यः शिवा) पशुओं को सुख देनेवाली, (सु-यमा) सुनियन्त्रित, तथा (सु-वर्चाः) उत्कृष्ट वर्चस्वितावाली (एधि) होना। (प्रजावती) प्रजनन-सामर्थ्यवाली, (वीर-सूः) वीर-सन्तानों को जन्म देनेवाली, (देव-कामा) परमात्मादेव की उपासिका, तथा (स्योना) सुखदायिनी होकर (इमं) इस (गार्हपत्यम् अग्निं) गार्हपत्य अग्नि की (सपर्य) सेवा करना।

[८] हे वधू, तुम (चर्म) मृग-चर्म पर (आरोह) बैठना, (अग्निं) यज्ञाग्नि के (उपसीद) समीप स्थित होना, अग्निहोत्र करना, क्योंकि (एष देवः) यह दीप्तिमान् अग्नि (सर्वा रक्षांसि) सब काम-क्रोधादि-रूप एवं रोग-रूप राक्षसों को (हन्ति) विनष्ट करता है। (इह) इस गृहाश्रम में (अस्मै पत्ये) इस पति के लिए (प्रजां) श्रेष्ठ सन्तान को (जनय) उत्पन्न करना। (ते) तुम्हारा (एषः पुत्रः) यह उत्पन्न पुत्र (सु-ज्यैष्ठ्यः) अतिशय ज्येष्ठ गुणों से सम्पन्न (भवत्) हो।

[९] हे वधू, तुम (सु-मङ्गली) सुमंगलमयी, (गृहाणां प्रतरणी) गृह-जनों को कष्ट से तरानेवाली, (पत्ये सुशेवा) पति के लिए उत्कृष्ट सुख देनेवाली, (श्वशुराय शम्भूः) श्वसुर के लिए शान्ति-दायिनी, (श्वश्र्वै स्योना) सास के लिए उल्लास-दायिनी होकर (इमान् गृहान्) इन गृह-वासियों के मध्य (प्र विश) प्रवेश करो।

[१०] हे वधू, तुम (श्वसुरेभ्यः) श्वसुर-जनों के लिए (स्योना) आनन्द-दायिनी (भव) होना। (पत्ये) पति के लिए तथा (गृहेभ्यः) अन्य गृह-वासियों के लिए (स्योना) आनन्द-दायिनी होना। विवाह में उपस्थित (अस्यै सर्वस्यै) इस सारी (विशे) प्रजा-मंडली के लिए (स्योना) आनन्द-दायिनी होना। (स्योना) आनन्द-दायिनी होती हुई (एषां) इन सबकी (पुष्टाय) पुष्टि के लिए (भव) होना।

[११] हे वधू, (सु-बुधा) सुबोधमयी तथा (बुध्यमाना) जागरूक रहती हुई तुम, अपने तथा अन्यों के (शत-शारदाय) सौ वर्षोंवाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिए (प्र बुध्यस्व) सतर्क रहना। तुम (गृहान्) पतिगृह के लोगों के बीच (यच्छ) जाओ, (यथा) जिससे (गृह-पत्नी) गृहपत्नी (असः) होवो। (सविता) सविता परमेश्वर (ते आयुः) तुम्हारी आयु (दीर्घं) लम्बी (कृणोतु) करे।

[१२] हे वधू, तुम (चित् असि) चेतनामयी हो, (मना असि) चिन्तनशीला हो, (धीः असि) बुद्धिमती हो, (दक्षिणा असि) त्यागमयी हो, (क्षत्रिया असि) क्षत्रिया हो, (यज्ञिया असि) यज्ञ की अधिकारिणी हो, (अदितिः असि) अखण्डनीया हो, (उभयतः शीर्ष्णी) अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ओर सिर रखनेवाली हो। (सा) वह तुम (नः) हमारे लिए (सु-प्राची) शुभ कर्मों में आगे बढ़नेवाली और

(**सु-प्रतीची**) शत्रु के प्रति भली-भाँति आक्रमण करनेवाली (**एधि**) होवो। (**मित्रः**) मित्र-रूप तुम्हारा पति (**त्वा**) तुम्हें (**पदि बध्नीतां**) पैर से बाँधे अर्थात् अनुचित स्थान और अनुचित कार्य में पैर रखने से रोके। (**पूषा**) पोषक पति, तुम्हें (**अध्वनः**) कुमार्ग से (**पातु**) बचाये। (**अध्यक्षाय**) गृहाश्रम के अध्यक्ष (**इन्द्राय**) वीर एवं ऐश्वर्यशाली पति के लिए तुम्हें हम सौंपते हैं।

इस तथा आगे उद्धृत मन्त्र (४।२१) दोनों में कर्मकाण्ड के अनुसार सोम-क्रयणी में वाग्-रूपा गौ का अध्यारोप करके उसकी स्तुति की गयी है। दयानन्द-भाष्य में ये मन्त्र वाणी तथा विद्युत् के पक्ष में व्याख्यात किये गये हैं। हमने नारी-परक अर्थ-योजना प्रदर्शित की है।

[१३] हे वधू, तुम (**वस्वी असि**) वसानेवाली हो, (**अदितिः असि**) अखण्डनीया हो, (**आदित्या असि**) अखण्डनीया माता की पुत्री हो, (**रुद्रा असि**) रौद्र-रूपा हो, (**चन्द्रा असि**) आह्लादप्रदा हो। (**बृहस्पतिः**) विद्वान् तुम्हारा पति (**त्वा**) तुम्हें (**सुम्ने**) सुख में (**रम्णातु**) रमण कराये। (**रुद्रः**) दुःख-विदारक तुम्हारा पति (**वसुभिः**) ऐश्वर्यों के साथ (**आ चक्रे**) तुम्हारी कामना करे, तुमसे प्रीति करे।

आदित्या—अदितेः पुत्री। **चन्द्रा**—आह्लादयित्री, चदि आह्लादे। **बृहस्पतिः**—बृहत्या वेदवाचः पालयिता (द० भा०, ऋग् १।१९०।२), बृहतां वेदानाम् अध्यापनोपदेशाभ्यां पालयिता (द० भा०, ऋग् १।१९०।८)। **रुद्रः**—रोदयति अन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः स्तोता, रुद्र इति स्तोतृनामसु पठितम्, निघं० ३।१६ (द० भा०, यजु ३।५७), रुतः सत्योपदेशान् राति ददाति (द० भा०, ऋग् १।११४।३), यो रुद् रोगं द्रावयति (द० भा०, ऋग् ६।४९।१०)। **आ चक्रे**—समन्तात् कामितवान् कामयतां वा। आचके इति कान्तिकर्मसु पठितम्, निघं० २।६ (द० भा०, यजु ४।२१)।

[१४] हे वधू, तू (**ध्रुवा असि**) स्थिर है, (**अयं यजमानः**) यह गृहाश्रम-यज्ञ का यजमान तुम्हारा पति भी (**प्रजया**) सन्तान से और (**पशुभिः**) गाय आदि पशुओं से (**अस्मिन् आयतने**) इस घर में (**ध्रुवः**) स्थिर (**भूयात्**) हो। (**द्यावा-पृथिवी**) आकाश और भूमि (**घृतेन**) घृत से (**पूर्येथाम्**) परिपूर्ण हों। तू (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यवान् पति की (**छदिः**) छत, छत के समान विपत्ति-निवारिणी (**असि**) है, (**विश्व-जनस्य**) सब जनों की (**छाया**) छाया है, छाया के समान शीतलता-प्रदायिनी है।

कर्मकाण्ड में यह मन्त्र औदुम्बरी शाखा को लक्ष्य करके पढ़ा जाता है, अन्तिम भाग तृण-निर्मित कट को कहा जाता है। दयानन्द-भाष्य में यजमान-पत्नी को सम्बोधित किया गया है।

[१५] हे वधू, तू (**विश्वस्मै**) सब (**प्राणाय**) प्राण के लिए, (**अपानाय**) अपान के लिए, (**व्यानाय**) व्यान के लिए, (**उदानाय**) उदान के लिए, (**प्रतिष्ठायै**)

प्रतिष्ठा के लिए, **(चरित्राय)** चरित्र के लिए यत्नशील रहना। **(अग्निः)** अग्निवत् तेजस्वी तेरा पति **(मह्या स्वस्त्या)** महान् योग क्षेम से, तथा **(शन्तमेन छर्दिषा)** अधिकाधिक सुखदायक घर द्वारा **(त्वा)** तुझे **(अभिपातु)** चारों ओर रक्षित करे। **(तया)** उस **(देवतया)** देवता-स्वरूप पति के साथ तू **(अङ्गिरस्वत्)** क्रियाशील व्यक्तियों के समान **(ध्रुवा)** स्थिर होकर **(सीद)** स्थित रहना।

कर्मकाण्ड में यह मन्त्र स्वाभाविक-छिद्र-युक्त पाषाणमयी इष्टका **(स्वयम् आतृण्णा)** को कहा जा रहा है। दयानन्द-भाष्य में स्त्री-परक व्याख्या है।

अङ्गिरस्वत्—अङ्गिरसः क्रियाशीला ऋषिजनाः तद्वत्। अगि गतौ। **छर्दिः**—गृहम् (निघं० ३।४)।

[१६] हे वधू, **(ज्योतिष्मतीं त्वा)** तुझ ज्योतिष्मती को **(परमेष्ठी)** उच्च स्थितिवाला पति **(दिव्यः पृष्ठे)** द्युलोक के समान उच्च घर के पृष्ठ पर **(सादयतु)** स्थित करे। **(विश्वस्मै)** सब **(प्राणाय)** प्राण के लिए—धर्मानुकूल बातों के ग्रहण के लिए **(अपानाय)** अपान के लिए—दोषों को दूर करने के लिए, **(व्यानाय)** व्यान के लिए—चेष्टावान् बनने-बनाने के लिए तू **(विश्वं ज्योतिः)** सम्पूर्ण ज्योति को, ज्ञान-प्रकाश को **(यच्छ)** प्रदान कर। **(सूर्यः)** सूर्य के समान विद्या, सद्गुण आदि से प्रकाशमान पुरुष **(ते पतिः)** तेरा पति है। **(तया)** उस **(देवतया)** देवता-स्वरूप पति के साथ **(अङ्गिरस्वत्)** शरीर में प्राण के समान **(ध्रुवा)** स्थिर होकर **(सीद)** गृहाश्रम में अवस्थित हो।

कर्मकाण्ड में यह मन्त्र इष्टका को कहा गया है। दयानन्दभाष्य में इसका देवता 'विदुषी' लिखा है, तथा नारी-परक व्याख्या की है।

परमेष्ठी—परमे उच्चे पदे तिष्ठतीति। "**ज्योतिष्मतीम्**—प्रशस्तानि ज्योतींषि ज्ञानानि विद्यन्तेऽस्यां ताम्। **सूर्यः**—सूर्य इव वर्तमानः। **तया**—पत्याख्यया, **देवतया**—दिव्यगुणयुक्तया।"—द० भा०। **अंगिरस्वत्**—प्राणवत् (द० भा०, यजु० १५।५७)। 'प्राणो वा अङ्गिराः' (श० ब्रा० ६।१।२।२८)।

[१७] हे वधू, **(यथा)** जैसे **(वृषा)** वर्षक **(सिन्धुः)** बादल **(नदीनां)** नदियों के **(साम्राज्यं)** साम्राज्य को **(सुषुवे)** उत्पन्न करता है, **(एवा)** इसी प्रकार **(पत्युः)** पति के **(अस्तं)** घर **(परेत्य)** जाकर **(त्वं)** तू **(सम्राज्ञी)** महारानी **(एधि)** हो।

वर्षा से पूर्व नदियों में पानी कम होता है, वर्षा होने पर वे मानो सम्राज्ञी बन जाती हैं। इस प्रकार वर्षक बादल ही उन्हें सम्राज्ञी का पद देता है, ऐसे ही वर्षक पति पत्नी को सम्राज्ञी का पद दे।

[१८] हे वधू, तू **(श्वशुरेषु)** श्वशुरों की दृष्टि में **(सम्राज्ञी)** महारानी **(एधि)** हो, **(उत)** और **(देवृषु)** देवरों की दृष्टि में **(सम्राज्ञी)** महारानी हो। **(ननान्दुः)** ननद की दृष्टि में **(सम्राज्ञी)** महारानी **(एधि)** हो, **(उत)** और **(श्वश्र्वाः)** सास की दृष्टि में **(सम्राज्ञी)** महारानी हो।

१३

आशीर्भाजन वधू-वर

[वधू-वर दोनों को आशीष व उपदेश]

हे वधू-वर, आज आप दोनों पवित्र यज्ञ-वेदि पर बैठ, वैवाहिक अग्नि को साक्षी रखकर, परस्पर कर्तव्य-बोधक प्रतिज्ञाएँ करके दाम्पत्य-सूत्र में बँधकर सब उपस्थित विद्वान् और विदुषियों के समक्ष आशीर्वाद और उपदेश लेने के लिए उद्यत हो। विश्वास रखो, हमारे हार्दिक आशीष तुम्हारे साथ हैं। तुम दोनों स्वयं विद्वान् हो, फिर भी आवश्यकता पड़ने पर तुम्हारा मार्ग-दर्शन करने के लिए हम सदा तत्पर रहेंगे। इस मधुर वेला में पवित्र वेदवाणी का संदेश सुनो, पवित्र वेदवाणी का आशीष ग्रहण करो :

[1]इहैव स्तं मा वि यौष्टं, विश्वम् आयुर् व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर् नप्तृभिर् मोदमानौ स्वस्तकौ॥

अथर्व १४।१।२२

जिस दाम्पत्य स्नेह में आबद्ध रहने की प्रतिज्ञा तुमने की है, उसमें आबद्ध रहना, कभी क्षणिक आवेश में आकर एक-दूसरे को त्याग मत देना। सुन्दर घर में रहते हुए, पुत्र-पौत्रों के साथ हँसते-खेलते प्रमुदित रहते हुए तुम दोनों पूर्ण आयु प्राप्त करना।

[2]युवं भगं सं भरतं समृद्धम्
ऋतं वदन्तौ-ऋतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिम् अस्यै रोचय
चारु संभलो वदतु वाचम् एताम्॥ अथर्व १४।१।३१

तुम दोनों व्यवहारों में सदा सत्य बोलते हुए भरपूर ऐश्वर्य कमाना। सकल ब्रह्माण्ड के अधिपति परमेश्वर आप दोनों को गृहाश्रम में ऐसी प्रेरणा करें कि पत्नी पति में रुचि लेती रहे और पति भी पत्नी से सुन्दर, मधुर वाणी में वार्तालाप करे।

[3]सा मन्दसाना मनसा शिवेन
रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम्।
सुगं तीर्थं सुप्राणं शुभस्पती
स्थाणुं पथिष्ठाम अप दुर्मतिं हतम्॥ अथर्व १४।२।६

हे वधू, तुम शिव मन से पति को आनन्दित करती हुई सर्वात्मना वीर संतान व संपदा को प्राप्त कराना। तुम दोनों के लिए गृहाश्रम-रूप तीर्थ सुख से विहार करने योग्य तथा स्वादु रसों का पान करानेवाला सिद्ध हो। हे शुभ के अधिपति वधू-वर, आप दोनों पथ में स्थित रुकावट को और दुर्मति को सदा दूर करते रहना।

[४]स्योनाद् योनेरधि बुध्यमानौ,
हसामुदौ महसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ,
तराथो जीवावुषसो विभाती ॥ अथर्व १४।२।४३

आप दोनों सुखमय घर में सदा जागरूक रहते हुए, हास्य-मोद मनाते हुए उत्सव रचाकर आनन्द-लाभ करते रहो। श्रेष्ठ गौओं, श्रेष्ठ पुत्रों और श्रेष्ठ घरों के स्वामी तथा सदा जीवित-जागृत रहते हुए आप दोनों जगमगाती उषाओं को व्यतीत करो।

[५]इहेमाविन्द्र सं नुद, चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ, विश्वम् आयुर् व्यश्नुतम् ॥
अथर्व १४।२।६४

हे परमात्मन्, इन दोनों वधू-वर को आप सदा शुभ प्रेरणा करते रहें। ये दोनों चकवा-चकवी के समान एक-दूसरे से प्रेम करें। सुन्दर घर में रहते हुए ये दोनों संतानों-सहित पूर्ण आयु प्राप्त करें।

[६]अभि वर्धतां पयसा, अभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्रवर्चसा, इमौ स्ताम् अनुपक्षितौ ॥
अथर्व ६।७८।२

ये दोनों वधू-वर दूध से बढ़ें, राष्ट्र-भावना से बढ़ें। सहस्र तेजों को देनेवाला ऐश्वर्य इनके पास सदा बना रहे, कभी समाप्त न हो।

[७]त्वष्टा जायाम् अजनयत्, त्वष्टास्यै त्वां पतिम्।
त्वष्टा सहस्रम् आयूंषि, दीर्घम् आयुः कृणोतु वाम् ॥
अथर्व ६।७८।३

जगत् के रचयिता परमात्मा ने इस पत्नी को उत्पन्न किया है, उसी ने इस पत्नी के लिए तुम पति को उत्पन्न किया है। जगत्-पिता परमात्मा सबको सहस्र जन्म देता है, वही आप दोनों की आयु को दीर्घ करे।

[८]अश्विना यज्वरीरिषो, द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ ऋग् १।३।१

हे वधू-वर, तुम दोनों शुभ कर्मों के अधिपति बनो, तुम्हारे हाथ दान को बहाते रहें। तुम्हारे अन्नादि भोज्य-पदार्थ परोपकार में लगनेवाले हों। तुम अतिथियों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं भोजन करो।

[९]अश्विना पुरुदंससा, नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः॥ ऋग् १।३।२

हे वधू-वर, तुम दोनों अत्यधिक कर्मनिष्ठ, बुद्धिमान् और नेता बनकर अप्रतिहत गतिवाली बुद्धि से वेद की तथा विद्वानों की वाणियों का सेवन करते रहना।

[१०]आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं
भुवत् ते कुत्सः सख्ये निकामः।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा
वि वां चिकित्सद् ऋतचिद्ध नारी॥ ऋग् ४।१६।१०

हे वर, तुम पारस्परिक अविश्वास, संदेह, छल आदि दस्युओं को विनष्ट कर देनेवाले मन के साथ अपने घर जाओ। वह निश्छल मन तुम दोनों पति-पत्नी की मित्रता स्थिर रहने में सफल हो। तुम दोनों समान गुण-कर्म-स्वभाववाले होकर अपने घर में रहो। वहाँ यदि तुम दोनों में कभी पारस्परिक असंतोष पैदा हो भी जाए तो घर की वृद्धा नारी उसकी यथायोग्य चिकित्सा कर दे।

[११]अस्मिन् यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युम् अश्विना युवं गृणन्तम् उपभूषथो
माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ऋग् ५।७५।८

हे शुभ कर्मों के पालनकर्ता, किसी के द्वारा हिंसा न किये जा सकनेवाले वधू-वर, इस गृहाश्रम-यज्ञ का पालन करते हुए तुम दोनों जिन्हें रक्षा और सहायता की आवश्यकता है ऐसे वेदपाठी स्तोतृ-जनों के पास पहुँचकर उन्हें धनादि से अलंकृत करते रहो। हे मधुर स्वभाववाले वधू-वर, हमारे इस उपदेश को सुनकर हृदय में धारण कर लो।

[१२]मा भेर् मा संविक्था ऊर्ज्जं धत्स्व
धिषणे वीड्वी सती वीडयेथाम् ऊर्ज्जं दधाथाम्।
पाप्मा हतो न सोमः॥ यजु ६।३५

हे वधू, हे वर, गृहाश्रम का पालन करते हुए भयभीत मत होना, सन्मार्ग से विचलित मत होना, बल और पराक्रम को धारण करना। हे पृथिवी और सूर्य के समान गुणोंवाले वधू-वर, तुम दोनों बलवान् होकर वीरता के कर्म करना, प्राणशक्ति और शौर्य धारण करना। पाप और अपराध को नष्ट करना, शान्ति और सौम्यता को नहीं।

[१३]मही द्यौः पृथिवी च नः, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः॥ यजु ८।३२

द्यु-लोक के समान तेजस्वी वर और पृथिवी के समान क्षमादि-गुणमयी वधू दोनों मिलकर इस गृहाश्रम-रूप यज्ञ को चलाओ। धारण-पोषणादि-गुणयुक्त व्यवहारों से हम सबको भी प्रसन्नता प्रदान करो।

[१४]समित्[१५] संकल्पेथा, सं प्रियौ रोचिष्णू।
सुमनस्यमानौ। इषम् ऊर्जम् अभि संवसानौ।। यजु १२।५७

वधू-वर, आप दोनों परस्पर मिलकर चलना, मिलकर संकल्प लेना। शरीर से तेजस्वी, प्रिय-दर्शन, वस्त्रालंकार आदि से शोभायमान और सुप्रसन्न मनवाले बनो। अन्न और रस से आच्छादित रहो।

[१५]सं वां मनांसि सं व्रता, सम् उ चित्तान्याकरम्।
अग्ने पुरीष्य-अधिपा भव त्वं नः
इषम् ऊर्जं यजमानाय धेहि।। यजु १२।५८

हे वधू-वर, आप दोनों के मनों को हम एक करते हैं, व्रतों और कर्मों को एक करते हैं, चित्तों को एक करते हैं। हे पालनकर्ता परमात्मन्, आप इनके रक्षक हों तथा गृहाश्रम-यज्ञ के यजमान इन वधू-वर को अन्न, रस, प्राण-बल और पराक्रम प्रदान करें।

[१६]अन्वारभेथाम् अनु संचरेथाम्
एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद् वां पक्वं परिविष्टम् अग्नौ
तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम्।। अथर्व ६।१२२।३

इस गृहाश्रम-लोक में श्रद्धा के साथ ही प्रवेश किया जाता है, अतः तुम दोनों भी श्रद्धा के साथ इसे आरम्भ करो। श्रद्धा को हृदय में धारण करके ही गृहाश्रम के सब व्यवहार करो। गृहाश्रम में तुम स्वयं को पकाने के लिए आये हो। जो तुम्हारा भाग गृहाश्रम की अग्नि में पड़कर परिपक्व होता चले, उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहो।

हे नव-दम्पती, तुमपर परमात्मा की असीम कृपा हो, तुम्हारा गृहाश्रम-प्रवेश सुखमय हो, सुखद हो, समाज के लिए कल्याणकारी हो। तुम राष्ट्र को धार्मिक, वीर सन्तान प्रदान करो, तुम समाज और राष्ट्र के ऐश्वर्य तथा उत्कर्ष में योगदान करते रहो—प्रजां कृण्वाथाम् इह पुष्यतं रयिम् (अथर्व १४।२।३७)। सविता प्रभु तुम दोनों को दीर्घायु करे—दीर्घं वाम् आयुः सविता कृणोतु (१४।२।३९)।

मन्त्रार्थ, टिप्पणी

[1] हे वधू-वर, आप दोनों (इह एव) इस प्रेम-बन्धन में ही (स्तम्) रहो, (मा वियौष्टम्) एक-दूसरे का परित्याग मत करो। (पुत्रैः) पुत्रों के साथ, और (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) खेलते हुए, (मोदमानौ) मुदित रहते हुए (सु-अस्तकौ) उत्तम घरवाले आप दोनों (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु को (व्यश्नुतम्) प्राप्त करो।

[२] **(युवं)** तुम दोनों **(ऋतोद्येषु)** सत्य के व्यवहारों में **(ऋतं)** सत्य **(वदन्तौ)** बोलते हुए **(समृद्धं)** समृद्ध **(भगं)** ऐश्वर्य **(सं भरतं)** भली-भाँति संग्रह करो। **(ब्रह्मणस्पते)** हे ब्रह्माण्ड के अधिपति परमात्मन्, आप **(अस्यै)** इस पत्नी को **(पतिं)** प्रति **(रोचय)** रुचवाइये। पति **(संभलः)** प्रेमपूर्ण भाषणवाला होकर **(एतां)** इससे **(चारु)** सुन्दर प्रकार से **(वाचं)** वाणी **(वदतु)** बोले।

[३] हे वधू, **(सा)** वह तू **(शिवेन मनसा)** शिव मन से पति को **(मन्दसाना)** आनन्दित करती हुई **(वचस्यं)** प्रशंसनीय **(सर्व-वीरं)** सर्वात्मना वीर **(रयिं)** पुत्र-संपदा **(धेहि)** प्रदान कर। आप दोनों का **(तीर्थं)** गृहाश्रम-रूप तीर्थ **(सुगं)** सुख से विहार करने योग्य, तथा **(सु-प्रयाणं)** स्वादु रसों का पान करानेवाला होवे। **(शुभस्पति)** हे शुभ के अधिपति वधू-वर, आप दोनों **(पथिष्ठां)** मार्ग में स्थित **(स्थाणुं)** रुकावट-रूप थड़े को, तथा **(दुर्मतिं)** दुर्मति को **(अप हतं)** दूर कर दो।

[४] हे वधू-वर, आप दोनों **(स्योनात्)** सुखमय **(योनेः अधि)** घर में **(बुध्यमानौ)** उद्‌बुद्ध रहते हुए, **(हसामुदौ)** हास्य-प्रमोद करते हुए, **(महसा)** उत्सव से **(मोदमानौ)** आनन्दित होते हुए **(सु-गू)** श्रेष्ठ गौओंवाले, **(सु-पुत्रौ)** श्रेष्ठ पुत्रोंवाले, **(सु गृहौ)** श्रेष्ठ घरवाले होकर **(विभातीः)** जगमगाती हुई **(उषसः)** उषाओं को **(तराथः)** पार करते रहो।

[५] **(इन्द्र)** हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन्, आप **(इह)** यहाँ, गृहाश्रम में **(इमौ)** इन दोनों को **(सं नुद)** शुभ प्रेरणा कीजिए। **(दम्पती)** ये दोनों पति-पत्नी **(चक्रवाका इव)** चकवा-चकवी के समान [प्रेम में आबद्ध हों]। **(सु-अस्तकौ)** श्रेष्ठ घर-वाले **(एनौ)** ये दोनों **(विश्वम् आयुः)** पूर्ण आयु **(वि अश्नुताम्)** प्राप्त करें।

[६] ये दोनों पति-पत्नी **(पयसा)** दूध से **(अभि वर्धतां)** बढ़ें, **(राष्ट्रेण)** राष्ट्र-भावना से **(अभि वर्धतां)** बढ़ें। **(इमौ)** ये दोनों **(सहस्र-वर्चसा)** सहस्र तेजों को देनेवाले **(रय्या)** ऐश्वर्य से **(अनुपक्षितौ)** अक्षीण **(स्ताम्)** होवें।

[७] **(त्वष्टा)** जगद्-रचयिता परमेश्वर ने **(जायाम्)** पत्नी को **(अजनयत्)** उत्पन्न किया है, **(त्वष्टा)** जगद्-रचयिता परमेश्वर ने **(अस्यै)** इसके लिए **(त्वां-पतिम्)** तुझ पति को **(अजनयत्)** उत्पन्न किया है। **(त्वष्टा)** जगद्-रचयिता परमेश्वर **(सहस्रम् आयूंषि)** सहस्र जन्म [देता है]। वह **(वां)** तुम दोनों की **(आयुः)** आयु को **(दीर्घं)** लम्बा **(कृणोतु)** करे।

[८] **(द्रवत्-पाणी)** बहते हुए हाथोंवाले, **(शुभः-पती)** शुभ के अधिपति **(पुरु-भुजा)** बहुत भोजन करानेवाले **(अश्विना)** हे पति-पत्नी, [तुम दोनों] **(यज्वरीः)** यज्ञशेष-रूप अर्थात् परोपकार में लगाने के बाद बचे हुए **(इषः)** भोज्य पदार्थों को **(चनस्यतम्)** खाओ।

स्वामी दयानन्द ने 'अश्विनौ' का एक अर्थ पति-पत्नी भी किया है, तदनुसार

यह अर्थ-योजना है। प्रस्तुत मन्त्र के दयानन्द-भाष्य में अश्विनौ की व्याख्या जल-अग्नि-परक है।

[६] **(पुरु-दंससा)** बहुत कर्मनिष्ठ, **(नरा)** नेता, **(धिष्ण्या)** बुद्धिमान् **(अश्विना)** हे पति-पत्नी, [आप दोनों], **(शवीरया धिया)** अप्रतिहत गतिवाली बुद्धि से **(गिरः)** [वेदों तथा विद्वानों की] वाणियों को **(वनतं)** सेवन करते रहो।

पुरुदंससा नरा धिष्ण्या अश्विना=पुरुदंससौ नरौ धिष्ण्यौ अश्विनौ। पुरु-दंससा—पुरूणि बहूनि दंसांसि कर्माणि ययोः तौ (पुरु बहु, निघं० ३।१, दंसस् कर्म, निघं० २।१)। वनतम्—वन संभक्तौ।

[१०] हे वर, तुम **(दस्युघ्ना मनसा)** दस्युओं को मारनेवाले मन के साथ **(अस्तं)** घर **(याहि)** जाओ। **(ते)** तेरा **(कुत्सः)** वज्र के समान दस्युओं को नष्ट करनेवाला वह मन **(सख्ये)** [तुम दोनों वर-वधू की] मित्रता में **(निकामः)** पूर्ण-मनोरथ **(भुवत्)** होवे। **(स-रूपा)** समान गुण-कर्म-स्वभाववाले [तुम दोनों] **(स्वे-योनौ)** अपने घर में **(निषदतम्)** रहो। **(ऋतचित्)** सत्य ज्ञान और सत्य कर्म का संग्रह करनेवाली **(नारी)** नारी **(वां)** तुम दोनों की **(वि चिकित्सत्)** विशेष रूप से चिकित्सा करे।

सरूपा-सरूपौ। योनि—गृह (निघं० ३।१२)। ऋतचित्—ऋतं सत्यं ज्ञानं कर्म वा चिनोति संगृह्णातीति (चिञ् चयने)।

इस मन्त्र पर दयानन्द-भाष्य का भावार्थ इस प्रकार है—"हे पुरुष! त्वं निन्दितां स्त्रियं त्यक्त्वा समानरूपां दोषघ्नीं प्राप्नुहि। द्वौ मिलित्वा प्रीत्या स्वे गृहे निषीदतम्।"

[११] **(शुभस्पती)** हे शुभ कर्मों के अधिपति **(अदाभ्या)** हिंसित न किये जा सकनेवाले **(अश्विना)** पति-पत्नी, **(युवं)** तुम दोनों **(अस्मिन् यज्ञे)** इस गृहाश्रम-यज्ञ में **(अवस्युं)** रक्षा के इच्छुक **(गृणन्तं)** वेदपाठी स्तोता को **(उप भूषथः)** पास जाकर धनादि से अलंकृत करो। **(माध्वी)** हे मधुर स्वभाववाले पति-पत्नी, [तुम दोनों] **(मम)** मेरे **(हवं)** उपदेश को **(श्रुतं)** सुनो।

(अस्मिन्) गृहाश्रमे। (अश्विना) ब्रह्मचर्येण प्राप्तविद्यौ स्त्री-पुरुषौ।—द. भा.

[१२] हे वर, हे वधू, तू **(मा भेः)** भयभीत मत हो, **(मा संविक्थाः)** विचलित मत हो, **(ऊर्जं)** बल और पराक्रम को **(धत्स्व)** धारण कर। **(धिषणे)** हे द्यावापृथिवी के समान गुणोंवाले वर-वधू, [तुम दोनों] **(वीड्वी सती)** बलवान् होते हुए **(वीडयेथां)** वीरता के कर्म करो, **(ऊर्जं)** बल और प्राण को **(दधाथां)** धारण करो। **(पाप्मा)** पाप **(हतः)** नष्ट हो, **(न सोमः)** शान्ति नहीं।

संविक्थाः—सम्, ओविजी भयसंचलनयोः। धिषणे—द्यावा-पृथिवी (निघं० ३।३०)। वीडु—बल (निघं० २।६)। दयानन्द-भाष्य के अनुसार इस मंत्र में इस बात का उपदेश दिया गया है कि स्त्री-पुरुष आपस में कैसे बर्तें। भावार्थ

में लिखा है कि स्त्री-पुरुषों को ऐसा व्यवहार करना चाहिए, जिससे आपस के भय और उद्वेग नष्ट हों, आत्मा का दृढ उत्साह, प्रीति, गृहाश्रम-व्यवहार की सिद्धि और ऐश्वर्य बढ़े। दोष और दुःखों को दूर कर चन्द्रमा के समान एक-दूसरे को आह्लाद देनेवाले हों।

[१३] (नः) हमारे (मही) महिमाशाली (द्यौः) सूर्यलोक के समान गुणों वाला पति (पृथिवी च) और भूमि के समान गुणोंवाली पत्नी (इमं यज्ञं) इस गृहाश्रम-यज्ञ को (मिमिक्षतां) सींचें। (भरीमभिः) धारण-पोषण के व्यवहारों से (नः) हमें (पिपृतां) पूर्णता प्रदान करें।

दयानन्द-भाष्य के अनुसार इस मन्त्र का देवता 'दम्पती' है। "(मही) महती पूज्या (द्यौः) दिव्या पुरुषाकृतिः (पृथिवी) विस्तृतशीला क्षमा-धारणादिशक्तिमयी [स्त्री]। (यज्ञम्) विद्वत्पूज्यं गृहाश्रमम्। (मिमिक्षताम्) सुखैः सेक्तुमिच्छताम् [मिह सेचने]। (भरीमभिः) धारणपोषणादिगुणयुक्तैः व्यवहारैः।"—द० भा०

[१४] हे वर-वधू, आप दोनों (सम् इतम्) साथ मिलकर चलो, (सं कल्पेथाम्) मिलकर संकल्प लो। (प्रियौ) प्रिय (रोचिष्णू) तेजस्वी, प्रिय-दर्शन और [वस्त्रालंकार आदि से] शोभायमान, (सु-मनस्यमानौ) प्रसन्न मनवाले और (इषम्) इष्ट सुख और विज्ञान को, तथा (ऊर्जम्) अन्न, रस, बल, प्राण को (अभि सं वसानौ) चारों ओर धारण करनेवाले [बनो]।

दयानन्द-भाष्य के अनुसार इस मन्त्र में बताया गया है कि विवाह करके स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे वर्तें। "(रोचिष्णू) विषयासक्तिविरहत्वेन देदीप्यमानौ। (सं वसानौ) सम्यक् सुवस्त्रालंकारेण आच्छादितौ।" द० भा०। भावार्थ में लिखा है कि यदि स्त्री-पुरुष सर्वथा विरोध को छोड़कर एक-दूसरे का प्रिय करने में संलग्न होकर विद्या और विचार से युक्त होकर, श्रेष्ठ वस्त्रों से अलंकृत होकर प्रयत्न करें, तो कल्याण और आरोग्य बढ़ेंगे।

(इषम्)विज्ञानं धनं वा [द. भा., ऋग्७।८।७], इष्टं सुखम्(द; भा.१।१८४।६)। इषु इच्छायाम्। ऊर्क् अन्नं च रसं च (निरु० ६।४१)। उर्ज बलप्राणनयोः।

[१५] हे वर-वधू, (वाम्) आप दोनों के (मनांसि) मनों को, हम (सं) एक करते हैं, (व्रता) व्रतों को, कर्मों को (सं) एक करते हैं, (उ) और (चित्तानि) चित्तों को (सम् अकरम्) एक करते हैं। (पुरीष्य अग्ने) हे पालन-कर्ता परमात्मन्, (त्वं) आप इनके (अधिपाः) रक्षक (भव) हों। (नः) हमारे (यजमानाय) गृहाश्रम के यजमान इस वर के लिए (इषम्) अन्न, धन, विज्ञान, सुख और (ऊर्जम्) शरीर तथा आत्मा का बल (धेहि) प्रदान कीजिए।

"(पुरीष्य)पुरीषेषु पालकेषु व्यवहारेषु भवः, तत्सम्बुद्धौ। इषम् अन्नादिकम्। (ऊर्जम्) शरीरात्मबलम्।—द० भा०" दयानन्द-भाष्य में स्त्री-पुरुषों को सम्बोधन किया है। अर्थ भिन्न है।

[१६] (दम्पती) हे नव-विवाहित पति-पत्नी, (एतं लोकम्) इस गृहाश्रम को (श्रद्दधानाः) श्रद्धा रखते हुए ही (सचन्ते) प्राप्त होते हैं। (अनु) उसी श्रद्धा के अनुसरण करते हुए [तुम भी] (आ रभेथाम्) गृहाश्रम का आरम्भ करो। (अनु) उसी श्रद्धा का अनुसरण करते हुए (सं चरेथाम्) संचार और व्यवहार करो। तुम दोनों का (यत्) जो भाग (अग्नौ) गृहाश्रम की अग्नि में (परि-विष्टम्) पड़कर (पक्वं) परिपक्व हो गया है (तस्य) उसकी (गुप्तये) रक्षा के लिए (सं श्रयेथाम्) तत्पर रहो।

नारी का शील

अधः पश्यस्व मोपरि, संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्, स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥

हे स्त्री, नीचे दृष्टि रख, ऊपर नहीं; पैरों को संश्लिष्ट रखकर चल। ऐसा वेश पहन कि अंग उघड़े न रहें। तू यज्ञ की ब्रह्मा है। ऋग् ८।३३।१९

नारी-महिमा

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जिस देश और समाज में नारियों की पूजा होती हैं, वहाँ देवता रमते हैं। जहाँ इनका सम्मान नहीं होता, वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

—मनुस्मृति ३।५६

मातृ-स्तुति

आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा
नैरुच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी।
एकस्यापि न गर्भभारभरणक्लेशस्य यस्याः क्षमो
दातुं निष्कृतिमुन्नतोऽपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः॥

प्रसव के समय असह्य शूलवेदना होती है, खाने-पीने में रुचि न रहने से शरीर सूख जाता है और प्रसव के बाद सौर में मल-मूत्रवाली शय्या पर सोना पड़ता है, इन कष्टों को जाने भी दें तो भी गर्भभार को वहन करने में जो महान् क्लेश होता है अकेले उसी एक का बदला चुकाने में भी पुत्र असमर्थ है, चाहे वह कितना ही उन्नत क्यों न हो गया हो। उस माता को मेरा नमस्कार है!

—शंकराचार्य

सूक्तियाँ

उपाध्यायाद् दशाचार्यः, आचार्याणां शतं पिता।
पितुर्दशशतं माता, गौरवेणातिरिच्यते॥

उपाध्याय से दस गुणा आचार्य का, आचार्य से सौ गुणा पिता का और पिता से हजार गुणा माता का गौरव अधिक होता है।

—वसिष्ठ धर्मसूत्र १३।४८

अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः।

गृहस्थ विना पत्नी के यज्ञ का अधिकारी नहीं होता।

—शतपथ ब्राह्मण ३।३।३।१

पुरुषो ह जायां वित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते।

पुरुष पत्नी पाकर स्वयं को अधिक पूर्ण मानता है।

—ऐतरेय आरण्यक १।३।५

पतिर्हि देवता नार्याः, पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्, भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

पति ही नारी का देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गुरु है। इसलिए प्राण देकर भी विशेष रूप से पति का प्रिय करना चाहिए।

—वाल्मीकि०, उत्तर० ४८।१७-१८

अर्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य, भार्या मूलं तरिष्यतः॥

भार्या मनुष्य का अर्धांश है, भार्या सर्वश्रेष्ठ सखा है। भार्या धर्म, अर्थ, काम के त्रिवर्ग का मूल है, भार्या तरने का साधन है।

—महाभारत १।७४।४१

स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए पत्नी पूजनीय है।

—दयानन्द (स० प्र०, समु० ११)

मन्त्रानुक्रमणिका

श्लोकाद्यनुक्रमणिका

प्रयुक्त मन्त्रांशों की

अनुक्रमणिका

□